卐 सर्वेश्वर श्रीसीतारामाभ्यां नमः 卐

ॐ श्रीमते यतीन्द्राय रामानन्दाचार्याय नमोनमः

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन

卐 जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्यप्रणीता 卐

श्रीवैष्णवसन्यासमीमांसा

ॐ रामं सर्वेश्वरं ब्रह्म सीतां तच्छक्तिरूपिणीम् ।
नत्वा सन्यासमीमांसां कुर्वे वैष्णवतुष्टये ॥१॥
गुरुं रामप्रपन्नार्यं नत्वा रामेश्वरो यतिः ।
समयानाकलय्याथ कालग्रस्तं तनोम्यहम् ॥२॥

संन्यासत्यागयोः स्वरूपतत्त्वबुभुत्सया सर्वोपनिषत् सारभूतायां भगवद्

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्याय नमोनमः

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्यप्रणीत

प्रकाश

करि प्रणाम रघुपति चरण सीतापद चितलाय ।
भाषा सन्यासमीमांसा करउँ गुरुपद नाय ॥

लोक वन्द्य जगन्नायक सर्वेश्वर परब्रह्म स्वरूप भगवान् श्रीरामजी एवं ब्रह्म शक्ति स्वरूपिणी श्रीरामवल्लभा जगदम्बा श्रीसीताजी को प्रणाम करके श्रीवैष्णवों के परम सन्तोष हेतु इस सन्यासमीमांसा नामक ग्रन्थ की रचना करता हूँ ॥१॥

परम दयालु गुरुवर जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामप्रपन्नाचार्यजी महाराज को सप्रश्रय वन्दना करके श्रीवैष्णव त्रिदण्डी सन्यासी मैं रामेश्वरानन्दाचार्य श्रीसम्प्रदाय परम्परा सम्बद्ध सिद्धान्तों एवं ग्रन्थों का आकलन कर, जो प्राचीनकाल में किन्हीं कारणों से ग्रन्थ छिन्न-भिन्न होकर समय का ग्रास वनकर विलुप्त जैसा हो गया था, उनका संग्रह कर इस श्रीवैष्णव सन्यासमीमांसा के रूपमें विस्तार करता हूँ ॥२॥

संन्यास एवं त्याग की क्या परिभाषा है इस स्वरूप तत्व को जानने की इच्छा से समस्त उपनिषदों का सारतत्व स्वरूप भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय में परम सत्य तत्त्व को जानने का इच्छुक परम भक्त अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णजी को पूछे

गीतायामष्टादशाध्याये अर्जुनो भगवन्तं श्रीकृष्णं पप्रच्छ, पूर्वाध्यायेषु "सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखंवशी । संन्यासयोगयुक्तात्मा...। त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः । सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरुयतात्मवान्" इत्यादिभिः क्वचित् कर्मसंन्यासः । अन्यत्र फलमात्रत्यागेन कर्मानुष्ठानमुपदिष्टम् । परमकारुणिको भगवान् श्रीकृष्णः सर्वज्ञः सन्नित्थं परस्परविरुद्धं कथमुपदिशेदिति कर्मसन्यासस्याविरोधहेतुजिज्ञासुरर्जुनः प्राह-

संन्यासस्य महावाहो तत्वमिच्छामि वेदितुम् ।
त्यागस्य च हृषीकेश ? पृथक् केशिनिषुदनः ? ॥

ततः संन्यासस्य त्यागस्य च स्वरूपं विविच्य बोधयितुं श्रीभगवानाह-

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः ।
सर्वकर्मफलंत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥३॥

(प्रश्न किये) । अठारहवाँ अध्याय से पूर्व के अध्यायों में "नित्य नैमित्तिक काम्य कर्मों को मनसे परित्याग कर जितेन्द्रिय ज्ञिज्ञासु सुख पूर्वक स्थित रहते हैं । संन्यास योग से सम्पन्न हैं आत्मा जिसकी । कर्म फल के प्रति आशक्ति को परित्यागकर सर्वकाल में परम संतुष्ट आश्रय से विहीन होकर सभी प्रकार के कर्मों के फलों को परित्यागकर तत्पश्चात् नियतेन्द्रिय होकर कर्तव्य कर्म करो" इत्यादि वचनों के द्वारा कहीं पर कर्म संन्यास तो कहीं अन्य स्थान पर कर्म फल का परित्याग के साथ कर्म का अनुष्ठान करने का उपदेश किया गया है । समस्त प्राणी मात्र पर परम करुणा करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णजी समस्त पदार्थों को तात्विक रूपसे जाननेवाले भगवान् श्रीकृष्णजी सर्वज्ञ होते हुये भी इसप्रकार परस्पर विपरीत वस्तुओं को किस तरह उपदेश करेंगे यह विचार कर कर्म सन्यास का अविरोध के कारण को जानने का इच्छुक अर्जुन भगवान् से निवेदन करते हैं हे महावाहु ? भगवान् सन्यास तत्त्व जानने की इच्छा करता हूँ । हे हृषीकेश ? त्याग का रहस्य तत्त्व को जानना चाहता हूँ हे केशी नामक दैत्य का संहार करनेवाले श्रीकृष्णजी इन दोनों तत्त्वों को भेद पूर्वक जानना चाहता हूं अतः आप भेद पूर्वक मुझे समझावें ।

तत्पश्चात् संन्यास और त्याग का स्वरूप तत्त्व विवेचन कर समझाने के लिये भगवान् श्रीकृष्णजी कहते हैं- फलाभिलाषा पूर्वक किये जाने योग्य कर्मों का परित्याग

नित्यनैमित्तिककाम्यभेदेन कर्मणः त्रैविध्यम् । यस्याकरणे प्रत्यवायः तत् नित्यं कर्म । यथा अहरहः सन्ध्यामुपासीत । यस्य करणे पुण्यलाभ करणाभावे च प्रत्यवायस्तन्नैमित्तिकं कर्म यथा-राहूपरागे स्नायात् । जातस्य पुत्रस्य दशमे द्वादशे वाऽहनि नाम कुर्यात् पिता यस्याकरणे न प्रत्यवायः करणे च फललाभस्तत् काम्यम् कर्म, यथा स्वर्गकामोऽग्निष्टोमेन यजेत । वृष्टिकामः कारीरीमिष्टिं निर्वपेत् । इत्थं नित्यनैमित्तिककर्मणः कर्तव्यता करना संन्यास कहा जाता है ऐसा विद्वान् लोग जानते हैं। सभी प्रकार के कर्मों के फलका परित्याग करना ही विद्वान् लोग त्याग कहते हैं। इसप्रकार काम्य कर्म का त्याग संन्यास कहा जाता है। यानी सभी कर्मों का फलत्याग त्याग कहा जाता है कर्म का त्याग त्याग नहीं ॥३॥

शास्त्रों में नित्य कर्म नैमित्तिक कर्म और काम्य कर्म भेद से कर्म का तीन प्रकार कहा गया है। जिस कर्म के न करने से पाप होता है, करने से कोई विशेष फल नहीं मिलता है उसे नित्य कर्म कहते हैं। जैसे दिन प्रतिदिन सन्ध्योपासना करनी चाहिये। जिस कर्म के करने से पुण्य होता है। एवं नहीं करने से प्रत्यवाय होता है। उसे नैमित्तिक कर्म कहते हैं। जैसे सूर्य अथवा चन्द्र ग्रहण होने पर स्नान करना चाहिये। उत्पन्न हुए पुत्र के दशवें अथवा वारहवें दिन पुत्र का नामकरण करना चाहिये। जिसके नहीं करने पर कोई पाप नहीं होता है, तथा करने पर उन उन फलों की प्राप्ति होती है उसे काम्य कर्म कहते हैं। जैसे स्वर्ग प्राप्ति की कामना से अग्निष्टोम याग करे तथा वर्षा की कामना से कारीरी इष्टि करें इस तरह नित्य नैमित्तिक कर्मों की आवश्यक कर्तव्यता प्रतिपादित होती है। और काम्य कर्म केवल फल के उद्देश्य से ही विधान किया जाता है। इसलिये संन्यासियों के हेतु काम्य कर्म का सर्वतोभावेन परित्याग का विधान किया गया है। अतः संन्यासियों के द्वारा काम्य कर्म का सर्वतोभावेन परित्याग करना चाहिये। इसप्रकार के संन्यास का कौन व्यक्ति अधिकारी है। उस संन्यास ग्रहण करने का क्या विधान है। संन्यास एवं संन्यासी का सम्बन्ध क्या है। उसके प्रकार कितने हैं। संन्यास ग्रहण करने का प्रयोजन क्या है। वह संन्यास विधान वैदिक है अथवा अवैदिक है। क्योंकि भारतीय सनातन धर्म में धर्म शास्त्रीय नियम है "वेदप्रणिहितो धर्मः-अधर्मस्तद् विपर्ययः" वेद के द्वारा

प्रतिपादिता, काम्यस्य च फलार्थमेव विधानम् । तस्मात् सन्यासिभिः काम्यकर्मणः परित्यागः सर्वथा विधेयः । तस्यैवं विधस्य संन्यासस्य कः अधिकारी को विधिः, कः सम्बन्धः । किं प्रयोजनम् । संन्यासविधेः वैदिकत्वमवैदिकत्वं वेति विविधा प्रश्नाः समुत्पद्यन्ते ॥४॥

'कर्मणां त्यागस्तु सन्यासः' इति न मनोरमम् । यतोहि–

नहि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशं कर्म सर्वैः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥
नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥
कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः ।
एवं त्वयिनान्यथेतोऽस्ति न कर्मलिप्यते नरे ।

इति ईशावास्यादिवचनात् कर्मलोपासम्भवात् । "विद्या सम्पत्तये फलाशक्तिकर्तृत्वाभिमानराहित्येन नित्यनैमित्तिककर्माणि मुमुक्षुणा यावज्जीवमनुष्ठेयान्येव विद्याङ्गकर्मणस्त्यागस्य विद्यासिद्धिविरोधित्वात्" इत्यानन्दभाष्यकारचरणोक्तेः ।

जिसका विधान किया गया है उसे धर्म कहते हैं । वेद विपरीत अधर्म कहा जाता है । अतः वेद विहित अथवा वेदानुमोदित धर्म ही वस्तुतः धर्म है । अतएव संन्यास विधान का वैदिकत्व होना अनिवार्य है । इसतरह संन्यास के विषय में विविध प्रकार के प्रश्न समुदित होते हैं । अतः क्रमेण प्रस्तुत विषयों का यथा सम्भव विवेचन करते हैं ॥४॥

समस्त कर्मों का त्याग करना ही सन्यास कहा जाता है यह कहना समुचित नहीं है । कोई भी प्राणि क्षण मात्र भी कभी भी विना कर्म किये नहीं रह सकता है । प्रकृति जात गुणों के द्वारा चाहे अनचाहे सभी से कर्म कराया ही जाता है । वेदशास्त्र द्वारा निर्धारित कर्मों का परित्याग करना तो समुचित अथवा युक्तिसंगत नहीं है । मोहवश नियत कर्मों का परित्याग शास्त्रों में तामसिक त्याग कहा जाता है । अतः शास्त्र विहित कर्म करना ही चाहिये । ईशावास्य उपनिषद में भी कहा है कि–इस संसार में मानव मात्र के लिये समुचित है कि काम्य कर्म वर्जित कर्मों का सम्पादन

'वेद सन्यासिकानां तु कर्मयोगं निबोधत' इति मनुः ।

नहि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ।

यस्तु कर्मफलत्यागी सत्यागीत्यभिधीयते ॥

इतिगीतोक्त्तेश्च सर्वैः प्राणिभिः कर्माणि करणीयान्येव । तत्र शास्त्र विहितानि कर्मणि सर्वैरेव करणीयानि। निषिद्धानि कर्माणि तु मुमुक्षुभिरन्यैर्वा न करणीयानि । तेषां प्रत्यवायजनकत्वात् । तस्य निरुक्तस्य संन्यासिनः चत्वारोभेदाः प्रतिपादिताः । तद्यथा भिक्षुकोपनिषदि । अथ भिक्षूणां मोक्षार्थिनां कुटीचकबहूदकहंसपरहंसाश्चेति चत्वारः ॥५॥

करते हुये ही सौ वर्षों तक जीवन जीने की अभिलाषा करनी चाहिये । निष्काम कर्म करता हुआ मानव में कर्म का लेप नहीं होता है । अर्थात् नित्य नैमित्तिक कर्म करनेवाला व्यक्ति कर्मासक्त नहीं कहा जाता है । अतः कर्म का त्याग वेद-विपरीत आचरण है । अतः इन वचनों के आधार पर कर्म लोप सम्भव नहीं है भगवान् मनु का भी वचन है-वैदिक सन्यासियों के लिये तो कर्मयोग है यह जानना चाहिये । गीता में भगवान् श्रीकृष्णजी का भी वचन है-देहधारी प्राणियों के लिये पूर्ण रूपसे कर्मों का परित्याग करना शक्य नहीं ही है । जो प्राणी कर्म फल की इच्छा का परित्याग पूर्वक कर्म करता है वह कर्म फलका परित्याग करने के कारण वस्तुतः त्यागी (संन्यासी) कहा जाता है । अतः शिखा यज्ञोपवीत आदि का परित्याग तथा तत्सम्बद्ध कर्मों का परित्याग वेद विरुद्ध है । इसलिये सभी मानवों को कर्म करना ही चाहिये । उनमें भी शास्त्र विहित कर्म सभी को करना ही चाहिये । शास्त्रों द्वारा निषिद्ध कर्मों को तो मोक्ष की अभिलाषा रंखनेवाले पुरुष अथवा अन्य मानवों को भी नहीं करना चाहिये । क्योंकि निषिद्ध कर्मों के प्रत्यवाय जनक होने के कारण। उस पूर्व प्रतिपादित संन्यास का चार प्रकार कहा गया है। वह जैसे कि भिक्षुकोपनिषत् में-उन मोक्ष की कामना रखनेवाले संन्यासियों का कुटीचक बहूदक हंस तथा परमहंस भेद से चार प्रकार है ॥५॥

卐 卐

卐 तदत्र-श्रीवशिष्ठसंहितास्थम् 卐

आश्रमधर्मनिरूपणम्

श्रीभरद्वाजउवाच

नमस्ते ब्रह्मविच्छ्रेष्ठ ? नमस्ते ब्रह्मसूनवे ।
वर्णधर्माः श्रुतास्तत्त्वः श्रीवैष्णवोपकारकाः ॥१॥

न चानाश्रमिणा भाव्यं नरेण हितमिच्छता ।
अनाश्रामी यतश्चात्र नरः कृच्छ्रेण शुद्ध्यति ॥२॥

वैष्णवाश्रमधर्मातच्छ्रोतुमिच्छामि सम्प्रति ।
महर्षे?त्वं समर्थोऽसि कृपया व्रूहि तान् प्रभो ? ॥३॥

त्वत्तोऽधिको न कोप्यऽस्ति धर्मतत्त्वाभिधायकः ।
ततश्चाश्रमधर्मांश्च श्रोतुं यातस्त्वदन्तिकम् ॥४॥

महर्षि श्रीवशिष्ठजी से ब्राह्मण त्रक्षिय वैश्य एवं शूद्र इन चारों वर्णों के धर्मादि सभी व्यवस्थाओं को सुनने के वाद आश्रम धर्म जानने की इच्छा से ब्रह्मर्षि श्रीवशिष्ठजी से पुनः श्रीभरद्वाजजी प्रार्थना करते हैं-ब्रह्म तत्व जाननेवालों में श्रेष्ठ हे वशिष्ठजी आपको मैं वन्दना करता हूँ। हे ब्रह्माजी के पुत्र ? आपको वार वार नमन करता हूँ। महर्षि प्रवर ? आपसे मैं श्रीवैष्णवों के परम उपकारक वर्ण धर्मों को सुन लिया हूं। अव अनुग्रह कर आश्रम धर्मों का उपदेश करें ॥१॥ क्योंकि-

अपना हित चाहनेवाले मनुष्यों को अनाश्रयी होकर नहीं रहना चाहिये, यदि कोई भी आश्रम धर्म स्वीकार किये विना रहे तो वह पापी होता है। अतः कृच्छ्रचान्द्रायण व्रत करने पर ही उस पाप से वह शुद्ध हो जाता है ॥२॥ इसलिये-हे महर्षि इस समय में मैं आपसे श्रीवैष्णवों के आश्रम धर्म के विषय में उपदेश सुनने की इच्छा रखता हूं। इन धर्मों के उपदेश में आप समर्थ हैं अतः प्रभो ? मेरे उपर कृपाकर उन आश्रमधर्मों का उपदेश करें ॥३॥

मुनीश्वर ? आपके शिवाय धर्म तत्वका उपदेश करनेवाला कोई भी नहीं है। इसलिये आश्रमधर्मों की सुनने की इच्छा से आपके पास आया हूं। अतः श्रीवैष्णवाश्रम भेद उपभेद आदिका उपदेश दें ॥४॥

श्रीवशिष्ठ उवाच

भरद्वाज ! महाभाग ! क्षितौ धन्यस्त्वमेव हि ।
ईदृशी धर्मजिज्ञासा जातासे हृदये यतः ॥५॥
जिज्ञास्यं तेऽभिधास्यामः सावधानमनाः श्रृणु ।
शास्त्रमेव मतं प्राज्ञैर्धर्मतत्त्वप्रकाशकम् ॥६॥
चत्वार आश्रमास्तत्र वैष्णवानां महात्मनाम् ।
संन्यासो वानप्रस्थश्च गार्हस्थ्यं ब्रह्मचर्यकम् ॥७॥
भुञ्जानः सात्विकं भक्ष्यं विद्यार्थी गुरुसेवकः ।
ब्रह्मचारी द्विजस्तिष्ठेद् द्वादशाब्दं गुरोर्गृहे ॥८॥
अष्टमैथुनवर्ज्यात्म ब्रह्मचर्यव्रतेरतः ।
स्नात्वा सन्ध्यादिकं कृत्वा देवाभ्यर्चनकारकः ॥९॥

श्रीभरद्वाजजी की आश्रमधर्म विषयक प्रार्थना सुनकर श्रीवशिष्ठजी कहते हैं- महाभाग्यशाली भरद्वाजजी ? इस पृथिवी में आप ही धन्य हैं क्योंकि आपके हृदय में ही अति उत्तम ऐसे आश्रमधर्मों को जानने की इच्छा जगी॥५॥

हे भरद्वाजजी ? आपसे जिज्ञासित आश्रमधर्म का वर्णन करता हूं सावधान मन यानी एकाग्रचित्त से सुनें। किसी भी आश्रमधर्म के प्रकाशक-बोधक एक मात्र शास्त्र है-ऐसा प्राज्ञ मननशील महर्षियों ने निश्चित किया है ॥६॥

मननशील श्रीवैष्णव महात्माओं के लिये शास्त्रकारों ने ब्रह्मचर्य गृहस्थ वानप्रस्थ एवं संन्यास इसप्रकार चार आश्रम नियत किये हैं ॥७॥

जो द्विज सात्विक भोजन करता हुआ गुरु की सेवा पूर्वक विद्याध्ययन करते हुये वारह वर्ष तक गुरुकूल में निवास करता है वह ब्रह्मचारी कहलाता है ॥८॥

वह ब्रह्मचर्य व्रत में रत होकर आठ प्रकार के मैथुनों से रहित होकर यानी "स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् । संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रिया निर्वृत्तिरेव च। एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः । विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम्" ॥ अर्थात् स्मरण करना कीर्तन गान करना रमत कराना तथा देखना एकान्त में वातें करना मनमें संकल्प करना उद्योग करना और साक्षात् क्रिया का संपादन करना ये मैथुन के आठ अंग हैं। ऐसा महर्षियों ने कहा है। इसी के ठीक विपरीत को आठ प्रकार

नम्रः शिखोपवीति च मेखलादण्डधारकः ।
होता स्वाध्यायकर्तासन् वसेद्धि गुरुसन्निधौ ॥१०॥

गायत्रादिविभेदैश्च चतुर्धा ब्रह्मचारिणः ।
स्थाता रात्रित्रयं यावल्लवणाभक्षकश्च यः ॥११॥

गायत्रीजपकर्ता स गायत्रः समुदीरितः ।
आवेदाध्ययनं ब्राह्मो ब्रह्मचर्यस्य पालकः ॥१२॥

वर्षं यावत् तथाभूतः प्राजापत्यः प्रकीर्तितः ।
आजीवनं तथाभूतो नैष्ठिको हि गुरोः कूले ॥१३॥

आयुषश्चाचतुर्थांशं ब्रह्मचारी भवेद् द्विजः ।
आयुषश्चाद्वितीयार्धं कृतदारो गृहीभवेत् ॥१४॥

वार्त्ताकादिविभेदैश्च गृहस्थाः षड्विधाः स्मृताः ।
सन्ध्या पञ्चमहायज्ञातिथ्यादिकर्मकारकाः ॥१५॥

का ब्रह्मचर्यपना है। उसमें निरत रहकर स्नान शौच सन्ध्यादि कर्मों का सम्पादनकर देवता की पूजापाठ स्तुति करनेवाला ब्रह्मचारी होता है ॥९॥

शिखा तथा यज्ञोपवीत धारण करने के साथ मेखला एवं दण्डका धारक नम्र और नियत रूपसे हवन एवं स्वाध्याय वेदादि शास्त्रों का अध्ययन करते हुये गुरुकूल में निवासी हो वह ब्रह्मचारी कहाता है ॥१०॥

गायत्र ब्राह्म प्राजापत्य तथा नैष्ठिक भेद से चार प्रकार के ब्रह्मचारी होते हैं। तीन रात्रि तक ब्रह्मचर्य का पालनकर लवण का त्यागकर गायत्री जप करते हुए जो रहता है वह गायत्र कहलाता है। वेदाध्ययन के समाप्ति पर्यन्त जो ब्रह्मचर्य का पालन करता है वह ब्राह्म-ब्रह्मचारी कहलाता है ॥११-१२॥

एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालक प्राजापत्य ब्रह्मचारी कहा गया है। आजीवन ब्रह्मचर्य पालन पूर्वक गुरुकूल में निवास करनेवाला नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहा गया है ॥१३॥

द्विज को आयुष्य के चौथे भाग तक ब्रह्मचारी के रूपमें रहना चाहिए। अनन्तर द्वितीय भाग प्रारम्भ होने पर शास्त्र अनुकूल विवाह करके गृहस्थ हो जाए ॥१४॥

वार्ताक शालीन यायावर घोर सन्यासी उञ्छवृत्ति एवं अयाचित के भेदों से छः

वार्ताकः कथ्यते तत्र धार्मिकः संविचक्षणैः ।
कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यैर्जीवति यो गृहीनरः ॥१६॥
दानप्रतिग्रहाभ्यां च यजनात् याजनात् तथा ।
पठनात् पाठनाच्चाथ शालीनो जीवति द्विजः ॥१७॥
याचित्वा सद्गृहस्थेभ्यो जीवन् यायावरो मतः ।
घोरसंन्यासिको भिक्षातश्चैकं निर्वहेद् दिनम् ॥१८॥
उञ्छवृत्तिर्जनः प्रोक्तः क्षेत्रोञ्छितान्नभक्षणात् ।
अयाचितो द्विजो यो हि दैवात् प्राप्तेन जीवति ॥१९॥
आयुषश्च द्वितीयाऽर्धेऽवशिष्टे वानप्रस्थता ।
वैखानसादिभेदैश्च वानप्रस्थाश्चतुर्विधाः ॥२०॥

प्रकार के गृहस्थ कहे गये हैं ये सभी सन्ध्यावन्दन हवन तर्पण देव-पूजा गोग्रास स्वाध्याय आदि पञ्च महायज्ञों और अतिथियों का सत्कार करनेवाले होते हैं ॥१५॥

उन छः प्रकार के गृहस्थों में से जो धार्मिक गृहस्थनर कृषि खेती गोपालन वाणिज्य-व्यापार आदि से जीवन निर्वाह करता है उसे शास्त्र मर्यादा ज्ञाताओं से वार्त्ताक कहा गया है ॥१६॥

जो द्विज दान देना दान लेना यज्ञ करना तथा यज्ञ कराना और पढना तथा पढाना आदि कर्मों से जीवन निर्वाह करता है वह शालीन कहलाता है ॥१७॥

सद्गृहस्थों के यहाँ से अपने उपयोग के अनुसार भीक्षा लेकर जीवन निर्वाह करनेवाला द्विज यायावर माना जाता है । जो केवल दिन में एक समय ही भिक्षा के सदन्न के सेवन से जीवन निर्वाह करता है वह घोर संन्यासि कहलाता है ॥१८॥

कृषकों के अनाज के काटकर लेजाने के वाद खेतों में रहे हुये कणों को एकत्रित कर उसी से अपने जीवन निर्वाह करनेवाले द्विज को उञ्छवृत्ति वाला कहते हैं । जो दैवगत्या अनायास प्राप्त वस्तुओं से निर्वाह करता है वह द्विज अयाचित वृत्तिक कहलाता है ॥१९॥

मनुष्य के आयु के द्वितीयार्ध यानी एकावन वर्ष से पचहत्तर वर्ष तकका शेष भाग वानप्रस्थ कहलाता है । वह वानप्रस्थ वैखानस औदुम्वर वालखिल्य एवं फेनपा भेदों से चार प्रकार का कहा गया है ॥२०॥

वैखानसास्तु नीवाराद्यैरग्निहोत्रकारकाः ।
　　औदुम्वरास्तु जीवन्ति फलैश्चोदुम्बरादिभिः ॥२१॥

बालखिल्यामतास्ते ये जटावल्कलधारिणः ।
　　अर्जितमष्टभिर्मासैरन्नमश्नन्ति पावसे ॥२२॥

जीवन्ति फेनपाश्चाथ शुष्कैः पर्णैः फलैस्तथा ।
　　तुरीयश्चाश्रमः प्रोक्तः प्राज्ञैः संन्यासनामकः ॥२३॥

चतुर्थांऽशेऽवशिष्टेतु प्रव्रज्याऽभिहिताऽऽयुषः ।
　　यदा वोत्कटवैराग्यं प्रव्रज्येयं श्रुतौ तदा ॥२४॥

सन्यासिनो द्विधाज्ञेया वैष्णवा इतरे तथा ।
　　वैष्णवाश्च द्विधा तत्रादण्डिनश्च त्रिदण्डिनः ॥२५॥

नीवारादि हविष्यान्नों से अग्निहोत्र करनेवाले वानप्रस्थ वैखानस कहे जाते हैं। एवं जो उदुम्वर फलादि से ही जीवन निर्वाह करते हैं वे औदुम्वर कहे जाते हैं ॥२१॥

आठ महिनों में अर्जित सात्विक अनाजों को पावस वर्षा के चार महिनों में यथाविधि भगवदाराधना पूर्वक सेवन करनेवाले जटा वल्कल एवं वस्त्रों को धारण करनेवाले तपस्या परायण जो है वे वालखिल्य कहलाते हैं ॥२२॥

जो शुष्क–सूखे पत्ते तथा कन्द फल–मूल आदि से जीवन निर्वाह करते हैं वे फेनप वानप्रस्थ कहे जाते हैं । चौथा आश्रम संन्यास इस नामसे प्राज्ञ लोगों ने निरूपण किया है ॥२३॥

आयु के चतुर्थांश भाग शेष रहने पर प्रव्रज्या संन्यास ग्रहण करलेना चाहिए ऐसा शास्त्रीय विधान है । "यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत्" इस श्रुति के विधानानुसार जिस दिन उत्कट वैराग्न हो जाय उसी दिन संन्यास ग्रहण करलेने में कोई दोष नहीं यानी ब्रह्मचर्याश्रम से गृहस्थ बनें अनन्तर वानप्रस्थ वनकर ही संन्यासाश्रम में प्रवेश करें यह कोई अत्यावश्यक नियम नहीं उत्कट प्रवल वैराग्य होने पर ब्रह्मचर्याश्रम से सीधे संन्यासाश्रम या गृहस्थाश्रम से भी वानप्रस्थ हुये विना ही संन्यासाश्रम में प्रवेश करसकते हैं इसमें शास्त्र मर्यादा का भंग नहीं है ॥२४॥

संन्यासी दो प्रकार के होते हैं एक वैष्णव संन्यासी तथा दूसरा शैव संन्यासी वैष्णव संन्यासी भी दो प्रकार के होते हैं। एक अदण्डी यानी विना दण्ड के दूसरे त्रिदण्डी ॥२५॥

कौपीनधारकाः कण्ठे तुलसीधारिणस्तथा ।
शिखायज्ञोपवीतोर्ध्वपुण्ड्राणां धारकाः समे ॥२६॥
उपास्तिपञ्चकाभिज्ञाश्चार्थपञ्चककोविदाः ।
रहस्यत्रयवेत्तारश्चाकारत्रयसंयुताः ॥२७॥
विरक्ताः सात्विकाधीरावेदान्तवेदिनस्तथा ।
गुरौ ब्रह्मणि मन्त्रे च धर्मे श्रद्धालवोऽपि च ॥२८॥
ब्रह्मचर्यपराश्चाथ सत्याहिंसा परायणाः ।
परोपकारकर्तारः पञ्चसंस्कारसंस्कृताः ॥२९॥

विना दण्ड के हो या त्रिदण्डी सभी वैष्णव संन्यासी कण्ठ में तुलसी माला-कण्ठी कौपीन को धारण करनेवाले होते हैं एवं दोनों ही प्रकार के संन्यासी शिखा यज्ञोपवीत तथा ऊर्ध्वपुण्ड्र को धारण करनेवाले होते हैं यानी वैष्णव संन्यासी में शिखा यज्ञोपवीत का त्याग नहीं होता है। उन्हें कौपीन तुलसी की कण्ठी शिखा सूत्र एवं ऊर्ध्वपुण्ड्रों का नियमित रूपसे धारण करना शास्त्र विधानतः अति आवश्यक है। इन सवों के त्याग से आरूढ पतित हो जाता है जिसका प्रायश्चित् नहीं है ॥२६॥

दोनों प्रकार के वैष्णव संन्यासी पाँच प्रकार यानी अभिगमन, उपादान अर्चन स्वाध्याय एवं ध्यान रूप उपासना को जानने वाले तथा अर्थपञ्चक-प्राप्य, प्रापक उपाय फल एवं विरोधी तत्वों को अच्छी प्रकार से जानने वाले और रहस्यत्रय यानी मन्त्रराज षडक्षर श्रीराममन्त्र, महामन्त्ररत्न (द्वय मन्त्र) तथा चरम मन्त्र इन तीन रहस्यों को जाननेवाले एवं आकार त्रय यानी अनन्य शरणत्व, अनन्य भोग्यत्व तथा अनन्य शेषत्व के स्वरूप को यथार्थ रूपसे जाननेवाले होते हैं ॥२७॥

उक्त दोनों संन्यासी विरक्त होते हैं। सात्विक धीर एवं वेदान्त तत्वों को जाननेवाले होते हैं। और गुरु-मन्त्र दाता गुरुदेव तथा सभी पूर्वाचार्य ब्रह्म-परब्रह्म श्रीरामजी तथा मन्त्र-श्रीराम सम्बन्धी मन्त्र एवं धर्म-सनातन श्रीवैष्णव धर्म में परम श्रद्धा रखनेवाले होते हैं ॥२८॥

ये लोग ब्रह्मचर्य व्रत पालन में तत्पर एवं सत्य और अहिंसा परायण होते हैं। तथा परोपकार करने में सदा तत्पर रहते हैं एवं पञ्चसंस्कारों श्रीरामयुध-धनुर्वाण, तप्तमुद्रा, या शीतल मुद्रा से चिह्नित होना, ऊर्ध्वपुण्ड्र, भगवद्दास्य परक नाम, तुलसी माला-कण्ठी तथा श्रीराम महामन्त्रराज की दीक्षा से संस्कृत होते हैं ॥२९॥

श्रीसीतारामभक्ताश्च श्रीसीतारामकीर्त्तकाः ।
सीतारामप्रपन्नाश्च श्रीसीतारामचिन्तकाः ॥३०॥
श्रीसीतारामदासाश्च सीतारामपरायणाः ।
सीतारामस्वरूपज्ञाः श्रीसीतारामपूजकाः ॥३१॥
पञ्चकेशधराश्चाद्याः शिखिनो वा जटाधराः ।
काषायाम्बरश्वेतादिहरिन्नीलं विनाम्बराः ॥३२॥

ये दोनों प्रकार के संन्यासी श्रीसीतारामजी के भक्त एवं श्रीसीताराम नाम का सदा कीर्तन तथा जप करनेवाले और श्रीसीतारामजी के ही प्रपन्न शरणागत होते हैं एवं श्रीसीतारामजी के ही चिन्तक होते हैं ॥३०॥

ये दोनों प्रकार के वैष्णव सन्यासी श्रीसीताराम परायण तथा श्रीसीतारामजी के ही दास-शेष-भोग्य होते हैं। एवं श्रीसीतारामजी के स्वरूप तत्त्व को जाननेवाले और श्रीसीतारामजी की युगल दिव्य श्रीविग्रह की ही पूजा आराधना करनेवाले होते हैं अन्यों के नहीं ॥३१॥

अदण्डी तथा त्रिदण्डी दो प्रकार के वैष्णव संन्यासी में से पहले अदण्डी संन्यासी भद्र रूप शिखावाले या पञ्चकेश धारण करनेवाले अथवा जटा धारण करनेवाले होते हैं। तथा शास्त्र विहित काषाय वस्त्र को धारण करनेवाले होते हैं। इनमें से कितने ही हरे और नीले कपडों को छोड श्वेत पीत वस्त्रों के धारक भी होते हैं। अर्थात् संन्यासाश्रम सेवी श्रीवैष्णव के लिये काषाय वस्त्र का ही विधान है। अन्य श्वेतादि का नहीं, श्वेतादि वस्त्र धारण प्रमाद एवं शास्त्र मर्यादा विरुद्ध है। हरे, नीले, श्वेत तथा पीत आदि वस्त्र धारण करना प्रमाद तथा निषिद्ध है। शास्त्रकारों ने विरक्त श्रीवैष्णवों के वस्त्र एवं आचार के विषय में स्पष्ट निर्देश किया है श्रीवाल्मीकि संहिता कहती है-

काषायं ब्रह्मसूत्रं च त्रिदण्डं धारयन्यतिः ।
पुनानः स्वोपदेशेन लोकांश्च विचरेद् भुवि ॥
काषायवासाः सततं ध्यान योगपरायणः ।
ग्रामान्ते वृक्षभूले वा वसेद् देवालयेऽपि वा ॥
मञ्चकं शुक्लवस्त्रं च स्त्रीकथा लौक्यमेव च ।
दिवास्वापं च यानं च यतीनां पातकानिषट् ॥

कथाकीर्तनस्वाध्यायहोमार्चादिविधायकाः ।
आलस्यरहिता धातुकाष्ठादिपात्रधारकाः ॥३३॥
स्नानसन्ध्यादिकर्तारो मन्त्रराजस्य जापकाः ।
केचित्तु भस्मनासार्धमूर्ध्वपुण्ड्रजटाधराः ॥३४॥
राममन्त्रतपोभ्यां च रामाराधनतत्पराः ।
सहदण्डत्रयेणान्त्या काषायाम्वरधारकाः ॥३५॥

अर्थात् विरक्त वैष्णव काषाय (भगवा) वस्त्र यज्ञोपवीत त्रिदण्ड धारणकर ध्यान योग परायण होकर ग्राम से बाहर वृक्ष के नीचे या देवालय में निवास करें एवं सदा सदुपदेश परायण रहे। विरक्त श्रीवैष्णवों को चारपाई पर सोना शुक्ल वस्त्र धारण करना स्त्री की कथा चंचलता दिनमें सोना बैलगाडी पर सवारी नहीं करना ये सव पातक जनक हैं। तथैव पद्मपुराण के आदि खण्ड में लिखा है–

"मुण्डीशिखीवाथ भवेत् त्रिदण्डीनिष्परिग्रहः ।
काषायवासाः सततं ध्यानयोगपरायणः ॥
यज्ञोपवीती शान्तात्मा कुशपाणिः समाहितः ।
धौतकाषायवसनो भस्माच्छन्नतनूरूहः ॥"

अर्थात् विरक्त श्रीवैष्णव संन्यासी काषाय वस्त्र त्रिदण्ड धारण करे भद्र या पञ्चकेश रखे सदा ध्यान एवं सदुपदेश परायण हो, उसे यज्ञोपवीत कण्ठी तिलक आदि सदा धारण करना चाहिये। एवं निकृष्ट भस्म का उपयोग न करता हुआ समाहित मनसा भगवत्परायण होकर समय यापन करे। यह संक्षिप्त स्वरूप हैं विस्तृत अन्यत्र देखें ॥३२॥

अदण्डी वैष्णव संन्यासी सर्वथा आलस्य से रहित होकर श्रीरामकथा कीर्तन, स्वाध्याय, हवन, पूजा, स्तुति, पाठ आदि करनेवाले एवं धातु लकडी या बाँस के पात्रों का धारण करनेवाले होते हैं ॥३३॥

ये स्नान-शौच-सन्ध्या-वन्दन एवं मन्त्रराज के जप करनेवाले होते हैं उनमें से कितने ही ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक और जटा के साथ यज्ञ समुद्भव विशुद्ध भस्म धारण करनेवाले भी होते हैं ॥३४॥

विना त्रिदण्ड के श्रीवैष्णव संन्यासी श्रीराममन्त्र का जप अनुष्ठान और तपश्चर्या के द्वारा श्रीरामजी की आराधना में सदा तत्पर रहते हैं।

सीतारामौ स्मरन्तश्च काष्ठादिपात्रशालिनः ।
भ्रमन्तः पुण्यतीर्थेषु सर्वथा दम्भवर्जिताः ॥३६॥
ईशं धर्मं न निन्दन्ति स्त्रिया सार्धं वसन्ति न ।
न वित्तलोलुपा भूत्वा गच्छन्ति धनिनोऽन्तिकम् ॥३७॥
यतयः सेवनानार्हा गृहस्थवेषधारकाः ।
सेव्या विरक्तशीलास्ते विरक्तवेषशालिनः ॥३८॥
संन्यासिनो गृहस्थत्वेन त्वारूढतपनं भवेत् ।
आरूढपतितस्याऽत्र प्राश्चित्तं न विद्यते ॥३९॥

पूर्व वर्णित भेदानुसार अन्त्य यानी दूसरे दण्डी वैष्णव संन्यासी जो हैं वे त्रिदण्ड के साथ काषाय वस्त्र को धारण करते हैं अर्थात् त्रिदण्डी को श्वेतादि वस्त्र धारण सर्वथा निषेध है ॥३५॥

त्रिदण्डी श्रीवंष्णव संन्यासी अलावुपात्र, काष्ठपात्र, बाँस का पात्र एवं मृन्मय पात्र को धारण करनेवाले होते हैं। यानी धातु पात्रका उपयोग निषिद्ध है। अलावुपात्र का तात्पर्य लता समुद्भूत पात्र से हैं अतः दरीयायीलता का फल नारियली चिप्पी एवं पृथिवी लता का फल तुमडी दोनों ही समान रूप से ग्राह्य हैं मनु का भी ऐसा ही विधान है-

अलाबुदारूपात्रं च मृन्मयं वैणवं तथा ।
एतानि यति पात्राणि मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥६-५४॥

श्रीसीतारामजी का अखण्ड स्मरण करते हुये सर्वथा दम्भ से रहित होकर सभी पुण्यतिर्थों में एवं गावों गावों में घूमते हुये सद्धर्म का प्रचार करते हैं ॥३६॥

श्रीवैष्णव संन्यासी ईश्वर एवं उससे प्रवर्तित धर्म की निन्दा कभी भी नहीं करते हैं तथा स्त्रियों के साथ निवास भी नहीं करते हैं और वित्त में लालायित होकर धनी व्यक्ति के पास याचना करना भी कदापि नहीं जाते हैं ॥३७॥

गृहस्थ वेष का धारण करनेवाले यति संन्यासी सेवा-पूजा सत्कार करने योग्य नहीं हैं क्योंकि वे अपने आचार से च्युत हैं। विरक्त वेष में रहनेवाले विरक्तोचित व्यवहार वाले सेव्य-पूज्य-पूजनीय हैं ॥३८॥

संन्यासियों का गृहस्थ वेष धारण या विवाह करलेने से पतन हो जाता है।

इह भ्रष्टाधिकारोहि गर्हितो मानवर्जितः ।
मृतोहि नरकं गच्छत्यारूढपतितो यतिः ॥४०॥
ब्रह्मचर्यव्रतं रक्ष्यं गृहस्थान्याश्रमत्रये ।
तदभावे हि तत्स्थानामारूढपतनं भवेत् ॥४१॥
भ्रष्टाश्चाश्रमधर्मेभ्य आरूढपतिताश्चये ।
स्वाधिकाराद् बहिष्कार्या नृपैश्च धार्मिकैश्च ते ॥४२॥६॥

एषां स्वरूपनिरूपणात् पूर्वं श्रीबोधायनस्मृतिमनुरुध्य आश्रमभेदाः तेषां स्वरूपाणि च निरुप्यन्ते "तस्य ह वा एतस्य धर्मस्य चतुर्धाभेदमेक

ऐसों को शास्त्रकारों ने आरूढ पतित कहा है। आरूढ पतितों को पवित्र करने के लिये शास्त्र में कोई प्रायश्चित्त नहीं है ॥३९॥

आरूढ पतित संन्यासी इसलोक में सभी अधिकारों से रहित हो जाता है। एवं निन्दित और मान प्रतिष्ठा से रहित हो जाता है, इतना ही नहीं मरने के वाद अवश्य ही नरक में चला जाता है ॥४०॥

गृहस्थाश्रम से अन्य तीनों आश्रमों में सावधानी पूर्वक नियत रूपसे ब्रह्मचर्य व्रत का रक्षण-पालन करना चाहिये-व्रत का पालन न हो तो उस-उस आश्रम से वह पतित हो जाता है। अतः वे आरूढ पतित कहलायेंगे जिनका कि शास्त्र मर्यादानुसार संसार में कोई मर्यादा नहीं है ॥४१॥

जो आश्रमधर्म से भ्रष्ट होकर आरूढ पतित हो गये हैं उन्हें धार्मिक व्यक्तियों के परिषदों के संयुक्तता में नृपों द्वारा उनके अधिकार से वहिष्कार करदेना चाहिये ॥४२॥६॥

इन संन्यासियों के स्वरूप निरूपण से पूर्व बोधायनस्मृति के अनुसार आश्रमों का भेद तथा उनका स्वरूप निरूपण किया जाता है। जैसे कि उस आश्रम का कुछ विद्वान् चार भेद कहे हैं। ये चारों ही कर्मवाद हैं। ऐष्टिक, पाशुक, सौमिक तथा दार्विक होमों का ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा परिव्राजक ये चार आश्रम हैं। ब्रह्मचारी मृत्युपर्यन्त गुरु की सेवा करे। वानप्रस्थ वैखानस व्रत का शास्त्र के अनुसार आचरण करे। वैखानस व्रत, उसे कहते हैं जिस व्रत में वनमें फलमूल भोजन करते हुये तपस्यारत रहकर श्रामणक अग्नि की स्थापना कर ग्राम्य भोजन विमुख रहकर देवता पितर, प्राणी, मनुष्य एवं ऋषि का पूजा सभी जिसके अतिथि हों वेद प्रतिषिद्ध

आहुः । ये चत्वार इति कर्मवादः । ऐष्टिकपाशुकसौमिकदार्विकहोमानाम् । ब्रह्मचारी गृहस्थोवानप्रस्थः परिव्राजक इति । ब्रह्मचारी गुरुशुश्रुषुरामरणात् । वानप्रस्थो वैखानसशास्त्रसमुदाचारः । वैखानसो वने मूलफलाशी तपः शीलः श्रामणकेनाग्निमाधायाग्राम्यभोजी देवपितृभूतमनुष्यर्षि पूजकः सर्वातिथिः प्रतिषिद्धवर्जं भैक्षमप्युपयुञ्जीत न कालकृष्टमुपयुञ्जेद् ग्रामं च न प्रविशेत् । जटिलश्चीराजिनवासानातिसम्वत्सरं भुञ्जीत । परिव्राजकः परित्यज्य बन्धूनपरिग्रहः प्रव्रजेद् यथाविधि । अरण्यं गत्वा शिखीमुण्डी कौपीनाच्छादनो बर्षास्वेकस्थः । काषायवासाः सन्नमुसले व्यङ्गारे निवृत्तशरावसम्पाते भिक्षेत । वाङ्मनः कर्मदण्डैर्भूतानामद्रोही पवित्रं बिभ्रत् शौचार्थं उद्धृताभिरद्भिः कार्यं कुर्यात् ।"

कर्मों को छोडकर तथा वेदनिषिद्ध भिक्षाओं को छोडकर भिक्षावृत्ति का उपयोग करे। खेत को हल से जुता हुआ होने पर उसके अन्नका उपयोग नहीं करे । और ग्राम में प्रवेश नहीं करे । जटा धारणकर चीर अथवा चर्म को पहनकर वर्ष में एक दिन से अधिक दिन तक भोजन नहीं करे ।

परिव्राजक उसे कहते हैं जो समस्त बन्धुओं का परित्याग कर शास्त्रीय विधान के अनुसार संन्यास ग्रहण करे । वन में जाकर शिखाधारी, मुण्डित कौपीन मात्र आच्छादन वाला वर्षा ऋतु में ही एक जगह निवास करनेवाला, कषाय रंग से रंगा हुआ वस्त्र को पहननेवाला, जहां मुसल की आवाज बन्द हो गयी हो आग बुझ गयी हो एवं वर्तनों की खनखनाहट समाप्त हो गयी हो ऐसे घर में भिक्षा करे । वाणी मन एवं कर्म के दण्ड से प्राणी मात्र का द्रोह नहीं करे । पवित्रता कर्म को धारण करता हुआ शौच के लिये निकाले गये जल से कार्य करे ।

संन्यास धारण करने का क्या प्रयोजन है ऐसी जानने की आकांक्षा होने पर कहा जाता है-उन सर्वेश्वर श्रीरामजी को जानकर ही मृत्यु पर विजय प्राप्त करते हैं। मोक्ष प्राप्ति के लिये अथवा परमधाम साकेत जाने के लिये अन्य मार्ग नहीं है । विद्या के द्वारा ही साकेत लोक में आरोहण करते हैं जहाँ समस्त इच्छाओं का समाधान हा जाता है । जो व्यक्ति दक्ष नहीं हैं वे उस लोक में नहीं जाते हैं । अविद्वान् अथवा तपश्चरण रहित भी उस लोक में नहीं जाते हैं । इसप्रकार के ज्ञानोपासनात्मक

संन्यासग्रहणस्य किं प्रयोजनमित्याकांक्षायां समुत्पन्नायामुच्यते-तमेव विदित्वा अतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयमाय इति। विद्ययैव तदारोहति यत्र कामाः समाहिताः, न तत्रादक्षका यान्ति, नविद्वांसो नातपस्विनः इति च। एवं विधस्य व ज्ञानोपासनात्मकस्य कार्यानुष्ठानस्याश्रमान्तरेऽशक्यप्रायत्वात् सन्यासाश्रमम्यौचित्यम्। ज्ञानयोगस्यासाधारणत्वम् लोके वेदे च प्रसिद्धमेव। सन्यासमेषां विधाय आत्मानं युञ्जीत इत्यत्र न्यासशब्दवाच्यो ज्ञानयोग एव। स च केवलस्यज्ञानमात्रस्यानुष्ठानम्। गृहस्थानां तु कर्मयोगः, तत्र तु ज्ञानकर्मसमुच्चयस्यानुष्ठानम् ततो मोक्षः, यद्यपि परिव्राजकस्याप्य हन्यहनि सन्ध्यावन्दनादीनि कर्माणि सन्त्येव, तानि तु आश्रमधर्मात्मकानि न तु मोक्षार्थानि "सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्ह सर्वकर्मसु" इति। "आचारहीनं न पुनन्तिवेदाः" इत्यादिवचनैः सन्ध्यावन्दनादिहीनस्य तत्र अधिकाराभाव एव। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहारादीनां योगाङ्गत्वेन ज्ञानाङ्गत्वम्। वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः सन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्वाः। ते

कर्मानुष्ठान का अन्य आश्रम में परिपालन असम्भव होने के कारण संन्यासाश्रम का औचित्य सिद्ध होता है। ज्ञानयोग की असामान्यता लोक व्यवहार एवं वेद में प्रसिद्धि ही है। इनका संन्यास विधान करके आत्मा को योगमुक्त करे। यहां संन्यास शब्द में न्यास शब्द का अर्थ ज्ञान योग ही है। और वह ज्ञानयोग केवल ज्ञान मात्र का अनुष्ठन है। गृहस्थों के लिये तो कर्मयोग है। गृहस्थाश्रम में तो ज्ञान कर्म समुच्चय का अनुष्ठान होता है तथा उससे ही मोक्ष होता है। यद्यपि परिव्राजक के लिये भी दिन प्रतिदिन सन्ध्या बन्दनादि नित्य नैमित्तिक कर्मों का अनुष्ठान करना आवश्यक ही है किन्तु वे तो आश्रमधर्मों के स्वरूप मात्र है। अधिकार सिद्धि के लिये है न कि मोक्ष के लिये है। कहा गया है जो व्यक्ति सन्ध्या हीन हो वह अपवित्र है तथा सभी कर्मों में सदैव अयोग्य है। आचार हीन को वेद भी पवित्र नहीं करता है, इत्यादि वचनों से सन्ध्या आदि से रहित व्यक्ति का संन्यासाश्रम में अधिकार का अभाव ही है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्यहार आदि का योगाभ्यास का अङ्ग होने के कारण ज्ञान का अङ्गत्व है। कहा भी है "वेदान्त के विशिष्ट ज्ञान से जिन्हें अर्थ तत्त्व का निश्चय हो चुका है वे संन्यासीगण संन्यास के योग से शुद्ध अन्तःकरण वाले होकर

ब्रह्मलोके तु परान्तकाले परामृतात्परिमुच्यन्तु सर्वे ॥ ''ज्ञानयोगेन संख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्'' इत्यादिवचनैः पारिव्रज्याश्रमे एषां ज्ञानाङ्गत्वम् ॥७॥

अस्य संन्यासस्य भिक्षुकोपनिषदमनुरुध्य चत्वारः भेदास्सन्ति । तद्यथा-''अथ भिक्षूणां मोक्षार्थिनां कुटीचकबहूदकहंसपरमहंसाश्चेति चत्वारः'' ।

लघुविष्णुस्मृतौ यथा-

चतुर्विधाभिक्षुकाः स्युः कुटीचकबहूदकौ ।
हंसः परमहंसश्च पश्चाद्यो यः स उत्तमः ॥

☫ कुटीचकलक्षणम् ☫

''कुटीचकशिखायज्ञोपवीती दण्डकमण्डलुधरः कौपीनशाटीकन्थाधरः

प्राणान्त काल में ब्रह्मलोक में जाकर अमृतत्त्व को प्राप्त करते हैं एवं समस्त बन्धनों से विमुक्त हो जाते हैं''-भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण श्रीमुख से कहते हैं-संन्यासियों को ज्ञानयोग से एवं योगियों को कर्मयोग से मुक्ति होती है, इत्यादि वचनों से सन्यासाश्रम में यम, नियमादि का ज्ञानाङ्गत्व प्रमाणित होता है ॥७॥

भिक्षुकोपनिषद् के अनुसार इस संन्यास का चार भेद कहे गये हैं । वह जैसे कि-मोक्ष की अभिलाषा करनेवाले भिक्षुकों (सन्यासियों) का कुटीचक, बहूदक हंस तथा परमहंस ये चार प्रकार हैं । लघुविष्णु स्मृति में कहा है-चार प्रकार के भिक्षुक होते हैं । १-कुटीचक २-बहूदक ३-हंस और ४-परमहंस, इनमें जो जो वाद में हैं वे पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर श्रेष्ठ कहे गये हैं ।

☫ १-कुटीचक सन्यासी का लक्षण ☫

कुटीचक संन्यासी शिखा एवं यज्ञोपवीत धारण करते हैं, वे दण्ड कमण्डलु कौपीन एवं कन्था (एक प्रकार का वस्त्र) धारण करते हैं । पिता माता एवं गुरु की आराधना में तत्पर होते हैं । पिठर (पात्र विशेष) खनती तथा थैला आदि से युक्त होकर यात्रा करते हैं तथा सतत मन्त्र साधना में अपने आपको समर्पित किये रहते हैं । उन्हें एक स्थान पर ही भोजन करने का विधान है। कुटीचक सन्यासी ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करते हैं तथा ये त्रिदण्ड धारण करते हैं ।

कुटीचक सन्यासी समस्त सुखको त्यागकर पुत्र के समृद्धि सुखको भी छोड

पितृमातृगुर्वाराधनपरः, पिठरखनित्रशिक्यादिमात्रसाधनपरः एकत्रान्नादनपरः श्वेतोर्ध्वपुण्ड्रधारी त्रिदण्डः'' इति संन्यासोपनिषद् ।

त्यक्त्वा सर्वसुखास्वादं पुत्रैश्वर्यसुखं त्यजेत् ।
अपत्येषु वसेन्नित्यं ममत्वं यत्नतस्त्यजेत् ॥
नान्यस्यगृहे भुञ्जीत भुञ्जानोदोषभाग्भवेत् ।
कामं क्रोधं च लोभञ्च तथेर्ष्या सत्यमेव च ॥
कुटीचकस्त्यजेत्सर्वं पुत्रार्थं चैव सर्वतः ।
भिक्षाटनादिकेऽशक्तो यतिः पुत्रेषु संन्यसेत् ॥
कुटीचक इति ज्ञेयः परिव्राट्त्यक्त बान्धवः ॥

निर्णयसिन्धुतृतीयपरिच्छेदेऽपि-

"कुटीचकः कुटीं कारयित्वा तत्र वसन् काषायवासाः शिखोपवीत त्रिदण्डवान् स्वगृहे भुञ्जान आत्मज्ञोभवेत्'' ।

॥ बहूदक लक्षणम् ॥

"अथ बहूदका नाम त्रिदण्डकमण्डलुशिखायज्ञोपवीतकषायवस्त्रधा-

दे । अपने पुत्रों के साथ प्रतिदिन रहते हुये भी मोह-ममता से अपने को सतत पृथक् रखे । दूसरे के घर में भोजन करने से दोष की प्राप्ति होती है इस कारण किसी अन्य व्यक्ति के घर में भोजन नहीं करे । कुटीचक सन्यासी काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, मिथ्या आदि को छोड दे । उक्त सन्यासी सम्पूर्ण वस्तु पुत्र के लिये त्याग दे । कुटीचक सन्यासी को भिक्षाटनादि में जब अशक्त हो जाय तो उसे स्व शरीर को भी पुत्र को ही समर्पित करदेना चाहिये । इन सभी गुणों से युक्त होकर उपर्युक्त विधान से नियमपूर्वक जो कार्य करता है वह कुटीचक कहलाता है ।

निर्णय सिन्धु के तृतीय परिच्छेद में कहा गया है कि-"कुटीचक सन्यासी कुटी का निर्माण कराकर उसमें निवास करे तथा काषाय वस्त्र, शिखा, शुक्ल यज्ञोपवीत एवं त्रिदण्डी रहे साथ-साथ स्व गृह में भोजन करे और आत्मज्ञान को वढावे ।

॥ (२) बहूदक संन्यासी का लक्षण ॥

बहूदक सन्यासी त्रिदण्ड, कमण्डलु शिखा, शुक्ल यज्ञोपवीत, काषाय वस्त्र से युक्त रहते हैं । मादक वस्तुओं और मांस को छोडकर ब्रह्मर्षि के घर में मात्र आठ

रिणो ब्रह्मर्षि गृहे मधुमासं वर्जयित्वाष्टौ ग्रासान्भैक्षाचरणं कृत्वा योगमार्गे मोक्षमेव प्रार्थयन्ते । इति भिक्षुकोपनिषदि । त्रिदण्डं कुण्डिकाश्चैव भिक्षाधारं तथैव च । सूत्रं तथैव गृह्णीयान्नित्यमेव बहूदकः । इति लघुविष्णुस्मृतौ ।

प्राणायामेऽप्यभिरतो गायत्रीं सततं जपेत् ।
विश्वरूपं हृदिध्यायन्नयेत्कालं जितेन्द्रियः ॥

ψ हंसलक्षणम् ψ

"अथ हंसानाम ग्राम एकरात्रं नगरे पञ्चरात्रं क्षेत्रे सप्तरात्रं तदुपरि न वसेयुः । गोमूत्रगोमयाहारिणो नित्यं चान्द्रायणयोगमार्गे मोक्षमेव प्रार्थयन्ते । इति भिक्षुकोपनिषदि । त्यक्त्वा पुत्रादिकं सर्वं योगमार्गं व्यवस्थितः । इन्द्रियाणि मनश्चैव कर्षन्हंसोऽभिधीयते ॥ इति लघुविष्णुस्मृतौ-

कृच्छैश्चान्द्रायणैश्चैव तुलापुरुषसंज्ञकैः ।
अन्यैश्च शोषयेद्देहमाकांक्षन् ब्रह्मणः परम् ॥
यज्ञोपवीतं दण्डं च वस्त्रं जन्तुनिवारणम् ।
अयं परिग्रहोनान्यो हंसस्य श्रुतिवेदिनः ॥

ग्रास भिक्षा की याचना करते हुये योग मार्ग में जो स्थित मोक्ष है-उस मोक्ष की ही कामना करते रहते हैं ।

लघुविष्णु स्मृति में भी विवेचन किया गया है कि बहूदक सन्यासी, त्रिदण्ड, कुण्डी, भिक्षापात्र एवं शुक्ल यज्ञोपवीत को सदा धारण करे । सतत प्राणायाम करते हुये गायत्री मन्त्र का भी जप किया करे । इसप्रकार बहूदक सन्यासी के लिये नियम विवेचित है ।

ψ (३) हंस संन्यासी का लक्षण ψ

हंस संन्यासी बहूदक संन्यासी के समान ही बाह्य वस्तु को धारण करते हुये ग्राम में एक रात्रि निवास करे । नगर में पाँच रात्रि पर्यन्त एवं क्षेत्र में सप्तरात्रि पर्यन्त निवास करे । हंस संन्यासी समय-समय पर पञ्चगव्य भक्षण करते हुये साथ-साथ चान्द्रायण व्रत करते हुये सदा योग मार्ग में स्थित मोक्ष की ही अभिलाषा करते हैं ।

लघुविष्णु स्मृति में कहा गया है कि हंस संन्यासी पुत्रादि को छोडकर योग मार्ग में व्यवस्थित होकर मन तथा इन्द्रिय को जो नियन्त्रण में रखे उसे ही हंस संन्यासी

♆ परमहंस लक्षणम् ♆

"अथ परमहंसा नाम संवर्त्तकारुणिं श्वेतकेतुजडभरतदत्तात्रेयशुकवाम देवहारीतकप्रभृतयोऽष्टौ ग्रासांश्चरन्तौ योगमार्गे मोक्षमेव प्रार्थयन्ते ।
इति भिक्षुकोपनिषदि

आध्यात्मिकं ब्रह्मजपन् प्राणायामांस्तथाचरन् ।
वियुक्ताः सर्वसंगेभ्यो योगिनित्यं चरेन्महीम् ॥

इति लघुविष्णुस्मृतौ ।

आत्मनिष्ठः स्वयं युक्तस्त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।
चतुर्थोऽयं महानेषा ध्यानभिक्षुरुदाहृतः ॥

क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः पात्रीदण्डी कुसुम्भवान् ।
विचरेन्नियतोनित्यं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥

इति मनुस्मृतौ ।

सर्वभूतहितः शान्तस्त्रिदण्डी सकमण्डलुः ।
एकारामः परिव्रज्यभिक्षार्थी ग्राममाश्रयेत् ॥

कहते हैं। इन संन्यासिओं को कृच्छ्र चान्द्रायण, तुलापुरुष आदि अन्य व्रतों से भी ब्रह्म पद की ही कामना करते रहना चाहिये। इन सभी व्रतों में लिप्त होते हुये शरीर के ममत्व को त्यागकर शरीर सुखा दे। हंस संन्यासी के लिये यज्ञोपवीत, दण्ड, मक्खी आदि जीवों के निवारण के लिये वस्त्र तथा वेद ज्ञाता, ही हंस संन्यासी उपयुक्त है इससे पृथक् कुछ नहीं। इसप्रकार हंस संन्यासी के लिये उपर्युक्त नियम कहा गया है।

♆ (४) परमहंस संन्यासी का लक्षण ♆

परमहंस संन्यासी भी बाह्य वस्तु बहूदक संन्यासी के सदृश धारण करते हुये ब्रह्मर्षि के घर में सात्विक आठ ग्रास ही भोजन करते हैं तथा योग मार्ग में अपने आपको स्थित करके मोक्ष की ही प्रार्थना करते रहते हैं। वे संवर्त्तक, आरुणि, श्वेतकेतु, जडभरत, दत्तात्रेय, शुकदेव, वामदेव हारीत आदि इन परम्परा के महर्षि हैं।

परमहंस सन्यासी उसे कहते हैं जो आध्यात्मिक चिन्तन करते हुये ब्रह्म को जपते हुये प्राणायाम करते रहते हैं। गोष्ठी से रहित होकर सदा इस भूमण्डल पर पर्यटन

इति याज्ञवल्क्यस्मृतौ यतिधर्मप्रकरणे ।

चतुर्धाभिक्षवः प्रोक्ताः सर्वे चैव त्रिदण्डिनः । अत्रेर्वाक्यम् ।

अर्जुनस्तीर्थयात्रायां पर्यटन्नवनीं प्रभुः । इति भागवते ।

स यतिर्भूत्वा त्रिदण्डीद्वारकामगात् ॥ इति ।

तदासाद्य दशग्रीवो क्षिप्रमन्तरमास्थितः ।

अभिचक्राम वैदेहीं परिव्राजकरूपधृक् ॥

इति श्रीमद्रामायणे अरण्यकाण्डे ।

श्लक्ष्णं काषायसंवीतः शिखी छत्री उपानही ।

वामेचांशेऽवसज्याथ शुभेयष्टिकमण्डलू ॥ महाभारतेऽपि

रावणस्तु यतिर्भूत्वा मुण्डः कुण्डी त्रिदण्डधृक् ।

महाभारतस्य भविष्यपर्वे-

शिक्यं च दारवंपात्रं द्विदलान् वेणकान् बहून् ।

इदमप्यपरम्पश्य तयोः साहसचेष्टितम् ॥

कौपीनं बहुधा छिन्नं तदस्माकम्महद्धनम् ।

कृतं कपालमात्रेण कमण्डलु जगत्प्रभो ॥

करते हैं। आत्मनिष्ठ होकर जिसने पुत्रकी अभिलाषा, धनकी कामना तथा लोक की इच्छा को त्यागकर दिया है इतना ही नहीं सभी परिग्रहों को भी अपने से बहुत दूर हटा दिया है उसीको ध्यान भिक्षु परमहंस संन्यासी कहते हैं वही सर्वश्रेष्ठ हैं।

महर्षि मनु ने अपने स्वरचित ग्रन्थ मनुस्मृति में कहा है कि परमहंस संन्यासी को शिखा छोडकर, केश, नख, दाढी, मूँछ को कटवा कर त्रिदण्ड, कमण्डलु, काषाय वस्त्र धारण करना चाहिये। इन संन्यासियों को किसी भी प्राणियों को पीडा न देना चाहिये तथा सदा भ्रमण करना चाहिये।

याज्ञवल्क्य स्मृति के यतिधर्म प्रकरण में भी कहा गया है कि परमहंस संन्यासी को सभी जीवों का हित करना चाहिये, त्रिदण्ड और कमण्डलु धारण करते हुये सभी को त्यागकर भिक्षा के लिये ग्राम में प्रस्थान करना चाहिये।

चारों प्रकार के संन्यासियों के लिये बाह्य वस्तु समान ही है। उपर्युक्त चारों प्रकार के संन्यासी त्रिदण्डी होते हैं।

अत्र शिक्यसाहचर्यात् द्विदलान् वेणुकानिति पदाच्च पुष्करवासिनः सर्वे त्रिदण्डिन एवातस्त्रिदण्डं ग्रहणीयमिति ।

एकदण्डस्य तु शास्त्रे निषेधो वर्त्तते ।

यावन्नस्युस्त्रयोदण्डास्तावदेकेन वर्त्तयेत् । इति मेधातिथेर्वाक्यम् ।

एकदण्डो धृतोयेन सर्वाशी ज्ञानवर्जितः ।

स याति नरकान्घोरान् महारौरव संज्ञितान् । इति यमस्मृतौ ।

एकदण्डं समाश्रित्य जीवन्ति बहवो द्विजाः ।

न तेषामपवर्गोऽस्ति लिङ्गमात्रोपजीविनाम् ॥ विष्णुस्मृतौ ।

उपरोक्त महर्षियों के श्लोकादिकों से यह प्रमाणित होता है कि त्रिदण्डी संन्यासी ही पूज्यतम हैं । परमहंस संन्यासी त्रिदण्डी संन्यासी को ही कहा जाता है ।

अर्जुन ने सुभद्रा का हरण त्रिदण्डी सन्यासी के वेश को धारण करके ही किया था । त्रिदण्ड धारण कोई नवीन नहीं अतिप्राचीन काल की है । राक्षसराज रावण भी श्रीसीताजी का हरण इसी वेश में किया था ।

राक्षसराज रावण निर्जन स्थान में जाकर जल्दी ही संन्यासी का वेश धारण करके श्रीसीताजी के पास गया । चिक्कन काषाय वस्त्र, यज्ञोपवीत, शिखा, छाता, जूता धारण करते हुये वाम अंश में त्रिदण्ड और कमण्डलु धारण करके श्रीसीताजी के समीप में गया था ।

महाभारत में भी कहा गया है कि राक्षसराज रावण शिखा को छोडकर सभी बालों को कटवाकर कमण्डलु त्रिदण्ड को साथ लेकर यति के वेश में श्रीसीताजी के पास गया था ।

महाभारत के भविष्य पर्व में हंस डिंभक के कथा प्रसङ्ग के अवसर पर कहा गया है कि पहले अनेकों त्रिदण्डी हो चुके हैं ।

महर्षि दुर्वासा का कथन है कि हंस डिंभक ने शिक्य और काष्ठ का भिक्षापात्र एवं द्विदल आदि अनेकों दण्डों को तोड दिया साथ-साथ इन दोनों ने लंगोटी को भी फाड डाला जो कि हम सवों का अमूल्य धन है । इन दोनों के साहस को देखा जाय । अतः हे जगत्प्रभो कमण्डलु को भी उसने खप्पर बना डाला ।

उपर्युक्त श्लोकों में शिक्य के साथ वेणु का नित्यादि पद रहने से यह विदित

यस्त्वेकदण्डमालम्ब्य ब्राह्मंकर्मयतिस्त्यजेत् ।
स चाण्डालो महापापी रौरवं नरकं व्रजेत् ॥ इति बृहत्पराशरस्मृतौ ।
एकदण्डं समाश्रित्य जीवन्ति वहवो नराः ।
नरके रौरवे घोरे कर्मत्यागात्पतन्ति ते । इति निर्णयसिन्धो स्तृतीय परिच्छेदे ।८।

अस्य चास्य संन्यासस्य दीक्षितः पञ्चसंस्कारसम्पन्नः एव अधिकारी पुराणधर्मशास्त्रग्रन्थैः समर्थितत्वात् । उक्तञ्च श्रीसम्प्रदायाचार्येण महर्षि प्रवरेण श्रीबोधायनेन मुनिना-
होता है कि पुष्कर निवासी सभी त्रिदण्डी ही थे । अतः इस शिष्टाचार से ब्राह्मण को निश्चित रूपसे त्रिदण्ड धारण करना चाहिये । शास्त्रानुसार एक दण्ड धारण करना निषिद्ध है ।

मेधातिथि कहते हैं कि यावत् त्रिदण्ड प्राप्त नहीं हो जाता है तावत्पर्यन्त एक दण्ड धारण करे ।

यम स्मृति में कहा गया है किं जो एक दण्ड को धारण करता है तथा सर्वत्र भोजन करलेता है साथ-साथ अज्ञानी भी है वह महारौरव नामक नरक को प्राप्त करता है ।

विष्णु स्मृति में कहा गया है कि एक दण्ड के आश्रय से ही अनेकों ब्राह्मण जीते हैं केवल लिङ्ग धारण करने से ही जीवन-यापन करनेवालों को मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है ।

बृहत्पराशर स्मृति में भी कहा गया है कि जो एक दण्ड को धारण करके ब्राह्मण कर्म को त्याग देता है वह डोम और महापापी है तथा मृत्यु के वाद वह रौरव नामक नरक को प्राप्त करता है ।

निर्णय सिन्धु के तृतीय परिच्छेद में कहा गया है कि बहुत मनुष्य एक दण्ड के आश्रय से ही जीवन धारण करते हैं । वे सभी कर्मों को परित्याग करदेने से रौरव नामक नरक में जाते हैं । अतः संन्यासियों को अपने कर्म को कदापि नहीं छोडना चाहिये ॥८॥

और इस पूर्व वर्णित संन्यास का दीक्षित श्रीवैष्णवीय पञ्चसंस्कार सम्पन्न ही अधिकारी है । क्योंकि पुराण धर्मशास्त्र ग्रन्थों से अनुमोदित होने के कारण । श्रीसम्प्र

धर्मशास्त्रसमारूढा वेदखड्गधराद्विजाः ।
क्रीडार्थमपि यं ब्रूयुस्स धर्मः परमोमत्तः ॥
अदीक्षितस्य वामोरु कृतं सर्वं निरर्थकम् ।
पशुयोनिमवाप्नोति दीक्षाहीनोमृतोनरः ॥ पदमोत्तर पुराणे
जपस्तपो व्रतं तीर्थं यज्ञोदानं तथैव च ।
गुरुतत्वमविज्ञाय सर्वं व्यर्थं भवेत्प्रिये ॥ स्कन्धपुराणे
धर्मार्थकाममोक्षाणामालयः साम्प्रदायिकः ।
सम्प्रदायविहीना ये मन्त्रास्ते निष्फलामताः ॥
यदृच्छयाश्रुतं मन्त्रं छलेनाथबलेन वा ।
पत्रेस्थितं च गाथां च तं जनयेदनर्थकम् ॥ वृद्धगौत्तमस्मृतौ ।

दाय के ९ वें आचार्य महर्षि प्रवर श्रीबोधायन मुनिजी के द्वारा कहा भी गया है कि धर्मशास्त्र रूपी रथपर चढे हुये वेद स्वरूप खड्ग को धारण करनेवाले क्रीडा लाप में भी जिसको कहते हैं वह परम सद्धर्म विद्वानों के द्वारा माना गया है। पद्मोत्तर पुराण में भी कहा है-हे पार्वती जिस व्यक्ति को दीक्षा प्राप्त नहीं हुयी है। उसके द्वारा किया गया समस्त कार्य निरर्थक है। हे पार्वति ? दीक्षाहीन मनुष्य मानव शरीर त्याग करने के वाद पशु योनि को प्राप्त करता है। इसीप्रकार स्कन्दपुराण में कहा है-जप तप व्रत तीर्थ यज्ञ और दान ये सभी सद्गुरु रूपी विशिष्ट तत्त्व को विना जाने निरर्थक है। वृद्धगौत्तम स्मृति में भी कहा है-धर्म अर्थ काम और मोक्ष इन समस्त पुरुषार्थों का आगार साम्प्रदायिकता है। सम्प्रदाय (गुरु परम्परागत विशिष्ट ज्ञान) विहीन समस्त मन्त्र समुदाय निष्फल है। छल कपट पूर्वक अथवा बल पूर्वक अथवा संयोगवश सुना गया मन्त्र और पुस्तकों में लिखी गयी कथा वार्ता अथवा कथा आदि के प्रसङ्ग में सुना गया मन्त्र ये सभी गुरु परम्परागत न होने के कारण अनर्थकारी होता है। अतः शास्त्रीय विधान पूर्वक प्राप्त मन्त्र ही सार्थक है। तदर्थ सद्गुरु आचार्य से सविधि श्रीराममहामन्त्र प्राप्तकर साधना करना चाहिये। शुक्लयजुर्वेद में भी कहा है-धर्म अभिवृद्धि की इच्छा पूर्वक किया गया व्रत से व्यक्ति दीक्षा प्राप्त करते हैं। गुरु की परम कृपा से प्राप्त दीक्षा से अनुकूलता प्राप्त करता है। गुरु की अनुकूलता से श्रद्धा लाभ हौता है तथा श्रद्धा से परम सत्य उपलब्ध होता है। हे दीक्षा तूँ तपस्या का

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणाश्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥ शुक्लयजुर्वेदे ।
दीक्षातपसो तनूरसि तां त्वा शिवां शग्मामू ।
परिदधे भद्रं वर्णं पुष्यन् ॥ शुक्लयजुर्वेदे ।
वैष्णवो भवति विष्णुर्वैयज्ञः स्वयमेवैनम् ।
तद्देवतया स्वेन छन्दसा संवद्र्धयति । ऐतरेय ब्राह्मणे।९।

इत्यानन्दभाष्यसिंहासनासीन

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्य कृतौ

श्रीवैष्णवसन्यासमीमांसायां सन्यासस्वरूप निरूपणात्मकं प्रथमंपुष्पं सम्पन्नम् ।

श्रीरामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये

पञ्चसंस्काराः

प्रसङ्गादत्र वक्ष्यामि पञ्चसंस्कारसंज्ञिताम् ।
दीक्षां मत्प्रीतिजननीं पूजायोग्यो यया द्विजः ॥१॥

शरीर है। शान्त एवं सुखदायी उस दीक्षा को मैं धारण करता हूँ। मेरा वर्ण भद्रता का अभिवर्धक हो। ऐतरेय ब्राह्मण में भी कहा है-जो पुरुष वैष्णव होता है उसे यज्ञ स्वरूप विष्णु अपनी इच्छानुसार अपनी परम शक्ति से उस देवत्व से सम्बर्धित करते हैं ॥९॥

इसप्रकार-आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी की रचना श्रीवैष्णव सन्यास मीमांसा में सन्यास स्वरूप निरूपणात्मक प्रथम पुष्प का प्रकाश सम्पन्न हुआ।

श्रीरामः शरणं मम

卐 पञ्चसंस्कार 卐

विष्णु तिलक संहिता में कहा गया है कि-यहां पर पञ्चसंस्कार नाम से अभिहित मुझ श्रीरामचन्द्रजी की प्रसन्नता को उत्पन्न करनेवाले श्रीवैष्णवी दीक्षा का विवेचन करता हूँ। जिस संस्कार से संस्कृत होने पर ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य पूजा के योग्य हो जाता है।

तापः पुण्ड्रस्तथा नाम मन्त्रो यागश्च पञ्चमः ।
पञ्चसंस्कारदीक्षैषा देवदेवप्रियावह ॥२॥
तापं पुण्ड्रस्तथा नाम मन्त्रोमाला तथैव च । वि.ति.सं.
अमीहि पञ्चसंस्काराः पारमैकान्त्यहेतवः ॥
तस्मात् तापादि संस्काराः कर्तव्या धर्मकांक्षिणा ।
अयमेव परोधर्म प्रधानः सर्वकर्मणाम् । हारीतस्मृतिः ।
पुण्ड्रनामक्रियाचैव मन्त्रश्चैवार्चनं हरेः ।
संस्काराः पञ्चकर्तव्या ब्राह्मणस्य विधानतः ।
वृहद्ब्रह्मसंहितायामपि ।
विरक्तो वा गृहस्थो वा सकामोऽकाम एव वा ।
तापादिना विमुक्तः स्यात् पातकै कोटिजन्मजैः ।

देवाधिदेव भगवान् श्रीरामजी के प्रसन्नता जनक दिव्य आयुधों को सन्तसकर बाहुमूल में धारण करना ललाट में दिव्य ऊर्ध्वपुण्ड्र तथा भगवत् सम्बन्धि नामकरण, भगवत् पूजन, षडक्षर तारक मन्त्र ग्रहण करना एवं यज्ञ-तुलसी माला का सर्वदा धारण करना ये पञ्चसंस्कार है । यही श्रीवैष्णवों की दीक्षा है । यह दीक्षा सर्वेश्वर श्रीरामजी को अत्यन्त प्रिय है ।

हारितस्मृति में भी कहा है-प्रत्येक धर्माभिलाषी मानवों को ताप आदि पञ्चसंस्कारों से सुसंस्कृत होना चाहिये यही सव से उत्कृष्ट धर्म है । तथा समस्त धार्मिक कर्मों में परमश्रेष्ठ एवं परमकल्याणकारी है । पराशरस्मृति के उत्तरकाण्ड का वचन है कि-ऊर्ध्वपुण्ड्र प्रभुप्रिय नाम, तापादिक क्रिया मन्त्र तथा तुलसी माला पूर्वक भगवत् पूजन ये पाँच संस्कार प्रत्येक ब्राह्मण को विधि पूर्वक करना चाहिये । बृहद्ब्रह्म संहिता में भी कहा गया है-विरक्त हो अथवा गृहस्थ हो, कामना युक्त हो या निष्काम हो किन्तु सभी को ताप आदि पाँच संस्कारों से सुसंस्कृत होना आवश्यक है । ताप आदि संस्कार से मानव करोड़ो जन्मों से अर्जित पातकों से विमुक्त होता है इत्यादि । वेद धर्मशास्त्र एवं पुराण आदि के वचनों से पञ्चसंस्कार की आवश्यक कर्तव्यता प्रतिपादित होती है । पराशर संहिता के उत्तर खण्ड के दशम अध्याय में भी कहा गया है कि-अर्थ पञ्चक तत्त्व को यथार्थ रूपमें जानने वाला, पञ्चसंस्कारों

एवमादिभिः श्रुतिस्मृतिपुराणादिवचोभिः पञ्चसंस्काराणामावश्यक कर्तव्यता प्रतिपादितम्भवति । पाराशरोत्तरखण्डस्य दशमाध्यायेऽप्युक्तम्-

अर्थपञ्चकतत्त्वज्ञाः पञ्चसंस्कारसंस्कृताः
आकारत्रयसम्पन्ना महाभागवताः स्मृताः ॥

श्रीवैष्णवमताब्जभास्करेऽपि श्रीमताभगवता श्रीरामानन्दाचार्येणाभिहितम्-

तप्तेन मूले भुजयोः समङ्कनं शरेण चापेन तथोर्ध्वपुण्ड्रकम् ।
श्रुतिश्रुतं नाम च मन्त्रमालिके संस्कारभेदाः परमार्थहेतवः ॥
एवं महान् भागवतः सुसंस्कृतो रामस्य भक्तिं परमां प्रकुर्यात् ।
महेन्द्रनीलाश्मरुचेः कृपानिधेः श्रीजानकीवल्लभरावणारेः ॥

इत्थं ससीतरामोपासननिरतानां श्रीवैष्णवानां पञ्चसंस्काराः कर्तव्याः । तत्र को विधिरिति जिज्ञासायां सनत्कुमारसंहितायां युधिष्ठिरं श्रीकृष्णद्वैपायनेन व्यासेनाभिहितम्-चैत्रशुक्लनवम्यां वा कर्तिकी पूर्णिमादिने । सीताजन्मदिने चापि विवाहदिवसे शुभे । राज्याभिषेककाले वा श्रीराम विजये दिने । अन्ये शुभे च काले वा सुदीक्षां धारयेत्सुधीः। अयोध्याचित्रकूटे

से सुसंस्कृत, अनन्यार्हत्व, अनन्यशेषत्व तथा अनन्यभोग्यत्व इन तीन आकार से सम्पन्न प्रभु सर्वेश्वर श्रीरामजी के प्रिय श्रीवैष्णव महाभागवत कहा जाता है। श्रीवैष्णव मताब्जभास्कर में भी श्रीमान् भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी के द्वारा कहा गया है कि-वेदोक्त मन्त्रों के अनुसार अग्नि में तपाये हुये धनुषवाणों से दोनों भुजाओं को अङ्कित करना, ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना श्रीवैष्णवता सूचक नाम ग्रहण करना, श्रीराममहामन्त्र को हृदय में धारण करना तुलसी की कण्ठी धारण करना ये पाँचों संस्कार मोक्ष के कारण भूत परम समर्थ साधन है ।

इसप्रकार ये पञ्चसंस्कारों द्वारा संस्कृत होकर महाभगवत बनकर, महा इन्द्र नीलमणि के समान श्याम कान्ति सम्पन्न, कृपानिधि, श्रीजानकी माताजी के सहित भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का अहर्निश भजन करें ।

इसप्रकार श्रीसीताजी सहित सर्वेश्वर श्रीरामजी की उपासना में पूर्ण तत्पर श्रीवैष्णवों का पञ्चसंस्कार करना चाहिये । इन पञ्चसंस्कारों में क्या विधान है ऐसा जानने की इच्छा होने पर सनत् कुमार संहिता में महाराज युधिष्ठिर को श्रीकृष्ण द्वैपायन

वा विदेहनगरेऽथवा । रामधाम्नि तथा चान्ये यद्वा श्रीराममन्दिरे ॥ तत्र लोकशास्त्रसम्मतं कामक्रोधादिदोषविहीनं निष्फल्मषं गुरुदीक्षितं श्रीराम स्यानन्यभक्तं गुणगणगरिष्ठं गुरुं विधाय दीक्षां गृह्णीयात् सम्प्रदाय परम्परा विधानमनुसृत्य गुरुः शुभां वेदीं कृत्वा, तत्र श्रीजानकीसहितं सपार्षदं श्रीरामं संस्थाप्य श्रीहनुमन्तं श्रीरामभक्तं वेदसिद्धान्तानुसारेण संस्थाप्य, षोडशो पचारेणान्योपचारेण वा यथोपलब्धद्रव्यैः शिष्यसहितः संपूजयेत् ततः पुरुषसूक्तेन सविधिसंस्थापितेऽग्नौ विष्णवे आज्याहुतिं दत्वा, ब्रह्मतारक षडक्षरश्रीराममन्त्रेणाष्टोत्तरशतमाज्याहुतिं दद्यात् ।

वेदव्यास के द्वारा कहा गया है-चैत्रशुक्ल नवमी के दिन अथवा कार्तिकी पूर्णिमा या श्रीजानकी के जन्म दिन अथवा जानकी विवाह के शुभ दिन में भी, या भगवान् श्रीरामजी के राज्याभिषेक दिवस में अथवा विजयादशमी के दिन या अन्य शुभ दिन या शुभ अवसर पर समझदार व्यक्ति अपनी श्रीवैष्णवी दीक्षा करावें। अयोध्या अथवा चित्रकूट या विदेह नगर जनकपुर श्रीरामतीर्थ अथवा अन्य श्रीरामजी मन्दिर में दीक्षा होनी चाहिये इस श्रीवैष्णवी दीक्षा में लोक व्यवहार एवं शास्त्र सम्मत काम क्रोध आदि दोषों से रहित पाप रहित गुरु परम्परा से दीक्षित भगवान् श्रीरामजी का अनन्य भक्त गुणगण से अतिशय महत्वपूर्ण गुरुको बनाकर दीक्षा ग्रहण करें। उक्त दीक्षा में अपने श्रीसम्प्रदाय परम्परा के विधान का अनुसरण करके गुरु शुभ जनक वेदी बनाकर उस वेदी के ऊपर श्रीसीताजी एवं पार्षदों के सहित भगवान् श्रीरामजी की स्थापना करके श्रीहनुमानजी एवं श्रीराम पार्षद भक्तों को वैदिक सिद्धान्त के अनुसार विधिपूर्वक स्थापना करके षोडशोपचार अथवा अन्य उपचार से समय एवं सामर्थ्य के अनुरूप उपलब्ध द्रव्यों से शिष्य सहित विधिवत् पूजन करें। तत्पश्चात् पुरुषसूक्त के द्वारा विधिपूर्वक संस्थापित अग्नि में विष्णु के उद्देश्य से घी अथवा चरु की आहुति देकर ब्रह्मतारक षडक्षर श्रीराममन्त्र से एक सौ आठ घी की आहुति प्रदान करें। इसके वाद विशुद्ध धातु से बनी हुई श्रीरामजी की धनुषबाण की मुद्रा को सुसंस्कृत अग्नि में मन ही मन तारक मन्त्र पढता हुआ तपावे। उन संतप्त धनुषबाण की मुद्राओं द्वारा गुरु शिष्य की दोनों भुजाओं के मूल में अपने श्रीसम्प्रदाय के अनुसार वायां में धनुष एवं दाहिना में बााण को अङ्कित करें। तत्पश्चात् मन ही मन श्रीराममन्त्र जपता हुआ

पश्चात् विशुद्धधातुविनिर्मितां श्रीरामस्यधनुर्वाणमुद्रां सुसंस्कृते पावके तारकमन्त्रं पठन् तापयेत् । ताभ्यां च धनुर्वाणमुद्राभ्यां गुरुः शिष्यस्य भुजयोर्मूले सम्प्रदायानुसारेण वामे धनुः दक्षिणे च बाणमङ्कयेत् । ततो मनसा मन्त्रं जपन् ललाटे तिलकं कुर्यात् । तिलकस्य मृण्मयत्वमूर्ध्वपुण्ड्रत्वं श्रीरामपादाकृत्तित्वं च विहितम् । मध्ये च हरिद्रापरिष्कृतां रक्तां श्रीराम वल्लभास्वरूपां सर्वेश्वरश्रीरामचरणरजचूर्णं शुक्लं वा श्रियं धारयेत् ततः श्रीरामसम्बद्धं तन्नाम भूयोभूयोवदेत् । ततः शिष्यस्य दक्षिणेकर्णे अन्यानश्रावयन् ब्रह्मतारकं षडक्षरं श्रीराममहामन्त्रं भूयोभूयः श्रावयेत् । इत्थं विधानपूर्वकं संस्कारैः शिष्यं विधाय, तस्य कण्ठे सूक्ष्माद्विधाकृती तुलसीकाष्ठविनिर्मिता श्लक्ष्णा कण्ठलग्ना मालिका परिधापयेत् । तां च तुलसीमालिकां शिष्यः क्षणमपि न त्यजेत् ।

लब्धपञ्चसंस्कारः शिष्यस्ततो गुरुं प्रदक्षिणीकृत्य वस्त्रालङ्कारद्रव्यफल पुष्पादिभिः पूजयित्वा साष्टाङ्गं दण्डवत् प्रणमेत् । निवेदयेच्च हे स्वामिन् ? अहं भवतो दासोऽस्मि, मयि सर्वदा प्रसीद । गुरुश्च शिष्यं शुभाशिषा संयोज्य, आवाहितान् देवान् यथाविधिविसर्जयित्वा दीक्षां समापयेत् । शि-

शिष्य के ललाट में तिलक करे । तिलक में श्रीरामरज श्वेत मृत्तिका का ऊर्ध्वपुण्ड्र भगवान् श्रीरामजी के चरणों के आकृति का विधान है मध्य भाग में हल्दी से परिष्कृत लाल रंग की श्रीरामवल्लभास्वरूपा श्री अथवा श्रीरामचरणरज श्वेत श्री का चिह्न धारण करें । तत्पश्चात् भगवान् श्रीरामजी से सम्बद्ध उस शिष्य का विहित नाम पुनः पुनः वोले । नामकरण के पश्चात् शिष्य के दाहिने कान में दूसरे को नहीं सुनाते हुये ब्रह्मतारक षडक्षर श्रीराममहामन्त्र को पुनः पुनः सुनावें । इसप्रकार विधान पूर्वक संस्कारों से सुसंस्कृत शिष्य को बनाकर उसके कण्ठ में छोटी-छोटी दोलर की तुलसी की काष्ठ से बनी हुयी चिकनी एवं सुन्दर कण्ठ से सटी हुयी माला (कण्ठी) पहनावें । और उस कण्ठी को शिष्य एक क्षण भी परित्याग नहीं करे ।

पाँच प्रकार के संस्कारों को प्राप्त किया हुआ शिष्य तत्पश्चात् गुरु की प्रदक्षिणा करके वस्त्र, आभूषण, धन एवं फल पुष्प आदि से गुरु की पूजा करके दण्डवत् साष्टाङ्ग-प्रणाम करे और निवेदन करे कि हे आचार्यजी मैं आपका दास हूँ मेरे ऊपर

ष्यस्तु सुभोज्यमन्नादिकं भगवदर्पणपूर्वकं गुरुं भोजयित्वा अन्यान् वैष्णवान् भोजयेत्, यथा शक्तितेभ्योद्रव्यदक्षिणां दत्वा गुरोर्भूक्तावशिष्टं भुञ्जीत, तच्चरणोदकञ्च भजेत् ॥१॥

पूर्वं संक्षेपेण दीक्षाप्रकारमुक्त्वैकेकशो विविच्य तापपुण्ड्रनाम मन्त्रमालासंस्काराणां निरूपणात्-पूर्वं पद्मोत्तरखण्डमनुसृत्याचार्यस्वरूप मुच्यते ।

श्रृणुवत्स प्रवक्ष्यामि मन्त्रदीक्षाविधिं पराम् ।
आचार्यं संश्रयेत् पूर्वं मदाश्रयणसिद्धये ॥
आचार्योवेदसम्पन्नो विष्णुभक्तो विमत्सरः ।
मन्त्रज्ञो मन्त्रभक्तश्च सदामन्त्राश्रयः शुचिः ॥
सत्सम्प्रदायसंयुक्तो ब्रह्मविद्याविशारदः ।
अनन्यसाधनश्चैव तथानन्यप्रयोजकः ॥

आप सदैव प्रसन्न रहें। और गुरु दीक्षित शिष्य को शुभाशीर्वाद से संयुक्तकर आवाहित देवताओं का विधान के अनुसार विसर्जन कर दीक्षा विधि को सम्पन्न करे।

शिष्य तो सुन्दर भोजन करने योग्य अन्नपानादि को भगवान् के भोग लगाकर गुरु को भोजन कराकर अन्य वैष्णवों को भोजन करावें तथा उन्हें अपनी शक्ति के अनुसार धनकी दक्षिणा देकर गुरु के भोजनावशिष्ट का भोजन करे एवं गुरु के चरणोदक का सेवन करे ॥१॥

ब्रह्माजी से भगवान् कहते हैं कि-हे वत्स श्रेष्ठतम मन्त्र दीक्षा विधान कहता हूँ उसे तत्परता पूर्वक सुनो। मेरा आश्रय प्राप्त करने के लिये पहले नियमानुसार विधिपूर्वक आचार्य का आश्रय ग्रहण करें। आचार्य वेदों के ज्ञान से परिपूर्ण, विष्णु भक्त, अन्य शुभ गुणों से युक्त द्वेष रहित मन्त्र रहस्य का जानकार, मन्त्र का भक्त सर्वदा मन्त्र पर आश्रित सर्वतोभावेन पवित्र, प्रशस्त सम्प्रदाय (परम्परा) से सम्पन्न (दीक्षित) ब्रह्मविद्या तत्त्व ज्ञान में पारंगत, इष्ट संस्मरण के अतिरिक्त जिनका अन्य कोई साधन नहीं है, तथा परमार्थ साधन के अतिरिक्त किसी अन्य साधन में प्रेरित नहीं करनेवाला, शिष्य का परमहितैषी ब्राह्मण कुल में उत्पन्न, परम वैराग्य सम्पन्न क्रोध लोभ आदि दोषों से रहित, सच्छास्त्र निरूपित व्रताचरणकारी एवं सद्व्रत का

ब्राह्मणो वीतरागश्च क्रोधलोभविवर्जितः ।
सद्व्रतीशासिताचैव मुमुक्षुः परमार्थवित् ॥

एवमादिगुणोपेत आचार्यस्स उदाहृतः ।
आचारान् शासयेद्यस्तु स आचार्य इतीरितः ॥२॥

गुरुगीतायामप्युक्तः-

ज्ञानहीनो गुरुस्त्याज्यो मिथ्यावादीविडम्बकः ।
स्वविश्रान्तिं न जानाति परशान्तिं करोति किम् ॥

गुरवो बहवः सन्ति शिष्यवित्तापहारकाः ।
तमेकं दुर्लभं मन्ये शिष्यसन्तापहारकम् ॥

भिन्ननावाश्रितस्तब्धो यथा पारं न गच्छति ।
ज्ञानहीनं गुरुं प्राप्य कुतो मोक्षमवाप्नुयात् ॥३॥

उपदेशक नित्यपार्षदत्व स्वरूप मोक्षकी अभिलाषा करनेवाला, एवं परमार्थ तत्त्व विज्ञानी प्रभृति प्रशस्त गुणगण से परिपूर्ण महापुरुष आचार्य कहा गया है । क्योंकि व्युत्पत्ति मूलक अर्थ है कि-जो आचारों का उपदेश करे वह आचार्य कहा जाता है। सार्थक उपदेश उसी का होता है जो व्यक्ति स्वयं शास्त्र विहित आचरण करता है। अतः आचार्य को उक्त गुणों से सम्पन्न होना चाहिये ॥२॥

जो मिथ्यावादी उपहासकारी एवं ज्ञान विहीन हो ऐसे गुरु को परित्याग करदेना चाहिये । जो व्यक्ति स्वयं की विश्रान्ति प्रदान करना नहीं जानता है वह दूसरे को क्या शान्ति प्रदान करेगा । इस संसार में शिष्यों के धनका अपहरण करनेवाले अनन्त गुरु है । एक मात्र मैं उसी गुरु को दुर्लभ समझता हूँ जो अपने शिष्य के सन्ताप का निवारण करसके । जिस प्रकार छीद्र युक्त नाव में विद्यमान निष्क्रिय व्यक्ति (जिसे दूसरा उपाय नहीं दीखता है) वह नदी के दूसरे पार में नहीं जाता है । अर्थात् डूब जाता है उसीप्रकार अज्ञानी गुरु को उपलब्ध कर शिष्य किसप्रकार परम पुरुषार्थ स्वरूप मोक्ष को प्राप्तकर सकेगा । अतः उपर्युक्त गुण सम्पन्न आचार्य को सोच समझकर वरण करना चाहिये ॥३॥

तदत्रसदाचार्यविषयेश्रुतिः-

"आचिनोति च शास्त्रार्थमाचारे स्थापयत्यपि ।
स्वायमाचरते यस्तु तमाचार्यं प्रचक्षते ॥

तथाचानन्दभाष्यकारश्रीचरणाः श्रीवैष्णवमताब्जभास्करे-

"यतेन्द्रियः शुचिः शुद्धवेषधृक् सुकुलोद्भवः ।
सदाचारपरोनम्रः शास्त्रज्ञोदेशनापटुः ॥
विरक्तधर्मनिरतो ध्यानाभ्यासी सुबुद्धिमान् ।
निग्रहेऽनुग्रहे चैव समर्थो देशिकोमतः ॥"

तथैव जगद्विजयिनो महामहोपाध्यायजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्य श्रीरघुवराचार्यवेदान्तकेसरिचरणाः श्रीआचार्यस्मृतौ-

इस प्रकृत सत् आचार्य के विषय में श्रुति कहती है-जो सत् शास्त्रों के अर्थों को सम्यक् रूपसे चयन संकलन करे एवं उसका आचरण में स्थापनकर दूसरे साधकों से आचरण करावें तथा स्वयं भी उन सभी शास्त्रीय आचरणों का आचरण-पालन करे उसे आचार्य कहते हैं । सदाचार्य के विषय में प्रस्थानत्रयों के आनन्दभाष्यकारजी श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर में निर्देश करते हैं-शास्त्र कथित पञ्चसंस्कार मोक्ष का साधन है ऐसा वताया है और यह संस्कार गुरु साध्य है तो गुरु कैसा हो । उसका लक्षण क्या है । इत्यादि वातों को समझाने के लिये कहते हैं-"यतेन्द्रिय" इत्यादि । जो वाह्य तथा आन्तर इन्द्रियों पर जय प्राप्त करलिया हो, शरीरादि पवित्र हो शुद्ध सादा वेष को अर्थात् श्रीवैष्णवों के हेतु उचित वेश का धारण कर्ता हो, ब्राह्मणादिक विशिष्ट कुल में समुत्पन्न हो, साधुओं के श्रीवैष्णवों के आचार-विचार में तत्पर हो, विनम्र हो न तु उद्धत हो, साङ्ग वेदादि शास्त्रों का ज्ञानवान् हो और देशना-उपदेश देने में चतुर हो अर्थात् सत् उपदेश-व्याख्यान कार्य में दक्ष हो ऐसा जो हो उसे गुरु बनाना चाहिये जैसे तैसे को नहीं । जो व्यक्ति विरक्त धर्म अर्थात् श्रीवैष्णवीय समस्त पूर्वाचार्य प्रवर्तित-प्रवर्धित श्रीवैष्णव मत का पालन करने में सर्वदा संलग्न हो और ध्यानाभ्यासी हों न तु विरक्त वेश विरोधी कार्य में निरत हो वेदाभ्यास करनेवाला हो बुद्धिमान् एवं देशकाल को समझकर कार्य करनेवाला हो और निग्रह तथा अनुग्रह करने में सामर्थ्य वाला हो ऐसे व्यक्ति को ही आचार्य-गुरु बनावें ।

श्रुतिसुशास्त्रप्रबुद्धिरुदारधीः विहितकर्मकरोऽथ निषिद्धभीः ।
सकलजीवदयोऽति प्रसन्नगीः गुरुरवैमि कृपालुसुवैष्णवः ॥३॥
विप्रान्वयोऽथ शमषट्कयुतो बुधश्च विद्याविवेकनिजधर्मपरायणो यः ।
विद्यानुराग्यधिगतार्थकपञ्चको यः संस्कारपञ्चकयुतोऽपि विरक्तदीक्षः ॥४॥

इसीप्रकार जगद्विजयी महामहोपाध्याय जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरघुवराचार्यजी वेदान्तकेसरीजी ने सत् आचार्य के विषय में अपना उत्कृष्ट प्रबन्ध आचार्य स्मृति में लिखा है-

ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्ववेद ब्राह्मण और उपनिषद् तथा उनके पोषक गीता ब्रह्मसूक्ष आदि को श्रुति कहा जाता है, पुराण न्याय मीमांसा व्याकरण आदि शास्त्र कहे जाते हैं, जिसके द्वारा किसी विशिष्ट प्रयोजन से उपदेश करे उसे शास्त्र कहते हैं जो श्रेय मार्गानुगामी हो उसे सुशास्त्र कहा जाता है। इन वेदानुकूल एवं वेद में जिनकी सत् असत् विचार सक्षम बुद्धिं है तथा जिनकी प्राणी मात्र की कल्याणाभिलाषिणी उदार बुद्धि है, विहित कर्म (शास्त्र द्वारा विधान किया गया) निषिद्ध कर्म एवं सामान्य कर्म भेद से कर्म तीन तरह के होते हैं। शास्त्र विहित कर्म भी नित्य नैमित्तिक और काम्य भेद से तीन प्रकार के कहे जाते हैं। इनमें काम्य कर्म को किसी फल विशेष की प्राप्ति के उद्देश्य से होता है अतः विरक्त पुरुषों के लिये उतना उपयोगी नहीं माना जाता है। अतः नित्य नैमित्तिक कर्मों को नियम पूर्वक करनेवाला, क्योंकि-जिसके नहीं करने से पाप होता है, करने से कोई विशेष फल नहीं होता उसे नित्य कर्म कहते हैं जैसे सन्ध्या वन्दन आदि, जिसे नहीं करने से पाप एवं करने से पुण्य होता है उसे नैमित्तिक कर्म कहते हैं, जैसे-राहूपरागे स्नायात्। सूर्य चन्द्र ग्रहण करने पर स्नान करना चाहिये। वेद शास्त्र द्वारा निषेध किये गये कर्मों से जिसे भय होता है। जिन्हें प्राणी मात्र के प्रति दया होती है। तथा जिनकी अत्यन्त निर्लम दोष रहित वाणी है। इसप्रकार के परम कृपालु सद् श्रीवैष्णव आचार्य कहे जाते हैं ग्रह मैं जानता हूँ ॥३॥

और जो ब्राह्मण कुल में जन्म धारण किया हो शमदम तितिक्षा उपरति आदि शमादि छः सम्पत्ति से सम्पन्न तत्त्व ज्ञानी हो। विद्या एवं विचार की दृष्टि से आत्मीय एवं विश्वजनीन श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णव धर्म परायण हों। और संसार के जन्म मरण वन्धन निवारण करनेवाली विद्या के प्रति अनुरागवान् ईशावास्योपनिषद में कहा है

सर्वेशसेवनधियाखिलकर्मकारि व्याख्यानपाटवयुतः करुणालयश्च ।
आचारवानतिथिदीनक्षुधातुराणां सम्पालको हरिगुरुप्रियसाधुसेवी ॥५॥

कि-लौकिक कर्म साधनारूप विद्याओं के द्वारा देह गेह संरक्षणात्मक मृत्यु के ऊपर विजय प्राप्तकर सर्वेश्वर श्रीरामजी की उपासना रूप विद्या के द्वारा अमरता को प्राप्त करे। इससे संसार बन्धन नाशक ज्ञान राशि को ही विद्या कहते हैं यह प्रमाणित होता है। तथा जो अर्थपञ्चक को हृदयङ्गम कर चुके हैं। प्राप्य अर्थात् प्राप्त करने का लक्ष्यभूत श्रीरामजी प्राप्ता, लक्ष्य को प्राप्त करने का अधिकारित्व एवं योग्यता सम्पन्न होना, परमात्म दर्शन रूप लक्ष्य प्राप्त करने का साधन ज्ञान होना उसे पालने से क्या लाभ होगा यह ज्ञान होना, प्राप्त होने में बाधायें क्या हो सकती है, तथा उसका निवारण कैसे किया जा सकेगा ऐसा प्राप्ति विरोधी का ज्ञान होना अर्थपञ्चक कहा जाता है। शास्त्रों में कहा है-अर्थपञ्चक तत्त्व का ज्ञानी, पञ्चसंस्कारों से संस्कृत आकारत्रय यानी अनन्यशरणत्वं अनन्य भोग्यत्व तथा अनन्य शेषत्व से सम्पन्न जो हैं वे ही श्रेष्ठ भगवद् भक्त हैं। ताप पुण्ड्र नाम मन्त्र एवं माला ये पञ्चसंस्कार श्रीवैष्णवों के लिये विहित हैं। उन संस्कारों से संस्कृत इसप्रकार के गुणों से परिपूर्ण एवं विरक्त दीक्षा से दीक्षित जो महापुरुष हैं वे ही आचार्य पदको अलंकृत कर सकते हैं ॥४॥

समस्त ब्रह्माण्ड के उत्पत्ति स्थिति एवं पालन के नियमन कर्ता सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी की सेवा भावना से ही समस्त सांसारिक कार्य कलाप का सम्पादन करनेवाला, उदाहरण प्रत्युदाहरण सहित तत्त्व विवेचनात्मक उद्बोधन में दक्ष आचार्य लक्षण प्रसंग में जगदाचार्य श्री ने श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर में उपदेश दिया है कि-इन्द्रिय संयमी पवित्र शास्त्र सम्मत शुद्धवेष एवं ब्राह्मण कुल में उत्पन्न सदाचार परायण नम्र सभी शास्त्रों का ज्ञाता तथा सदुपदेश में कुशल ही आचार्य के योग्य होता है। गीता में भगवान् श्रीकृष्णजी कहे हैं कि-जो कुछ सांसारिक क्रिया करते हो, देहस्वभाव वश का जो कुछ भोजन करते हो या देवताओं के उद्देश्य से त्याग करते हो और पाप ताप निवारनार्थ तपस्यायें करते हो, हे अर्जुन वे सभी मुझे समर्पित करो, इसप्रकार शुभ अशुभ कर्म बन्धनों से तुम मुक्त हो जाओगे। प्राणी मात्र के दुःखों के समानानुभूति मूलक करुणा के आगार सम्प्रदाय एवं शास्त्रों में विहित सदाचार से सम्पन्न, अभ्यागत दीन हीन एवं भूखों का सभी तरह से संरक्षण करनेवाला, भगवान् श्रीरामचन्द्रजी एवं पूर्वाचार्य के प्रिय साधु पुरुषों की सेवा करनेवाला पुरुष आचार्य पद पर समासीन होने योग्य है अर्थात् ऐसा

यः शिष्यस्वान्तभवतापनिवारणाय विज्ञानवारिपरिपूर्णविरक्तिदाता ।
सीतापतेः श्रवणमङ्गलनामधेय मन्त्रोपदेशनपटुर्गदितः स देष्टा ॥६॥
स्वसम्प्रदायसकलाप्तपरम्पराया वेत्ता सुवैष्णवजनो रघुनाथभक्तः ।
पुण्ड्रोर्ध्वदामतुलसीधररामकर्मा प्राचार्यपीठपदभाजनतां गतोऽसौ ॥७॥
मन्त्रार्थबोधनपटुर्मनुतारकाख्यजप्ता कृती सरलवाक् कुलशीलसम्पत् ।
सन्देहवारणकरः सुयशोऽभिरामः स्वाचारपालनपरः खलु देशिकः स्यात् ॥८॥

श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णव ही आचार्य हो सकता है ॥५॥

और जो विद्वान् आचार्य उपदेश देने योग्य शिष्यों के अन्तःकरण में होनेवाले सांसारिक दुःख स्वरूप ताप का निवारण करने के लिये आत्म परमात्म विषयक ज्ञान रूप जल से परिपूर्ण भगवद् विषयक परमानुराग रूप विरक्ति का प्रदान करनेवाला, यहाँ दुःख में ताप का आरोप एवं विज्ञान में जल का आरोप होने से सांगः रूपक अलङ्कार है। श्रीजानकीवल्लभ भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के जो सुनने मात्र से भी समस्त अमङ्गलों का निवारण करनेवाला है ऐसा नाम से युक्त षडक्षर ब्रह्मतारक श्रीराममहामन्त्र का उपदेश करने में कुशल ही सम्प्रदायाचार्य पद के योग्य होता है ऐसा शास्त्रों में सुव्यक्त रूपसे कहा गया है ॥६॥

जो व्यक्ति किसी कामनामय लोभवश किसी भी परिस्थिति में मिथ्या प्रतिपादन नहीं करता है, उसे आप्त पुरुष अर्थात् वक्ता कहते हैं, आरम्भकाल से लेकर वर्तमान तक श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के समस्त आप्त पुरुषों की वैदिक परम्परा का विशेष ज्ञान रखनेवाला, सुव्यवस्थित श्रीवैष्णव सर्वेश्वर मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी का परमभक्त सदैव ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक एवं 'यज्ञोपवीत वद्धार्या सदा तुलसी मलिका। क्षणार्धं तद्विहीनो यो विष्णुद्रोहिभवेन्नरः' इस शास्त्र वचनानुसार सदा श्रीतुलसी काष्ठ निर्मित माला को विधान के अनुसार धारण करनेवाला, भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की सेवा भावना से ही समस्त सांसारिक कर्म कलाप सम्पादन करनेवाला व्यक्ति अन्य सम्प्रदायों की अपेक्षा परम श्रेष्ठ श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के आचार्यपीठ के सिंहासन पर समासीन होने की योग्यता का निर्वाह करता है। ऐसे व्यक्ति को आचार्य बनाना चाहिये अन्य अल्पश्रुत अल्प पठित या आचार्य परम्परा ज्ञान विधुर तथा सांम्प्रदायिक मर्यादाहीन को नहीं ॥७॥

सर्वेश्वर श्रीरामजी के शरणागतिमन्त्र द्वयमन्त्र तारकमन्त्र आदि महत्वपूर्ण मन्त्रों

वेदोक्तकर्मसकलाश्रमधर्मदेष्टा श्रीरामकर्मगुणनीतिप्रचारकारी ।
चापादिपञ्चविधशस्त्रसमङ्कित्ताङ्गः रामप्रियप्रियकरः खलु देशिकः स्यात् ॥९॥

प्रसङ्गाद्धेयाचार्यविषयेश्रुतिः-

"अथ हैनं नारदः पितामहं पप्रच्छ भगवन् केन सन्यासाधिकारी वेत्येवमादौ सन्यासाधिकारिणं निरूप्य पश्चात्सन्यासविधिरुच्यते । अवहितः श्रृणु ? अथ षण्डः पतितोऽङ्गविसलः स्त्रैणो वधिरोऽर्भकोमूकः पाषण्डश्चक्री
के अभिप्राय को समझाने में दक्ष, ब्रह्मतारक श्रीराममहामन्त्र का जप करनेवाला, जप के विषय में भगवान् मनु का कथन है कि-विधान पूर्वक किये जानेवाले यज्ञों की अपेक्षा दश गुणा फल अधिक देनेवाला जप यज्ञ होता है, उपांसु जप का फल सौ गुना अधिक है तथा मानस जप का हजार गुना अधिक फल कहा गया है । प्रशंसनीय कर्तव्य करनेवाला, सन्देह मुक्त सीधी सादीभाषा बोलनेवाला कुलीनता एवं सुशीलता का संरक्षक समान रूप से परस्पर दो पक्षों के साथ जुडनेवाला अर्थ सन्देह युक्त होता है । जिज्ञासा वश आये हुए लोगों के सन्देह निवारण में तत्पर अच्छी कृति एवं प्रतिष्ठा के कारण सभी के सुखकारी श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर प्रभृति शास्त्रों में वताये अनुसार अपने सम्प्रदाय के आचरणों का पालन करनेवाला, उपदेशक पीठ के आचार्य पदका योग्य है ॥८॥

समस्त वेद विहित कर्मों का तथा ब्रह्मचर्य गार्हस्थ्य वानप्रस्थ एवं सन्यास आश्रमों के धर्मों का उपदेश देनेवाला, मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के जो वेदशास्त्र पुराणों में प्रशंसनीय कर्म कहे गये हैं, तथा उनकी जो दया दाक्षिण्य वात्सल्य औदार्य आदि गुण तथा नीतियों का प्रचार-प्रसार करनेवाला, एवं धनुष वाण आदि पञ्चविध भगवत् आयुधों से विधिपूर्वक चिन्हित है अवयव कलाप जिनका, समस्त शास्त्र विहित कार्य कलाप का सम्पादन करने के कारण जो भगवान् के प्रिय हैं उनके अभिष्ट कर्मों का सम्पादन करनेवाला महापुरुष श्रीसम्प्रदायाचार्य के पद पर आसीन होने योग्य है ॥९॥

सदाचार्य निरूपण के वाद हेय-त्याग करने योग्य आचार्य क्रम प्राप्त होता है उसके विषय में श्रुति कहती है जो श्रीनारदजी एवं श्रीब्रह्माजी के सम्वाद रूपमें प्रस्तुत है-श्रीनारदजी ने पितामह श्रीब्रह्माजी से पूछा हे पितामह संन्यास का अधिकारी कौन है ? इसका निरूपण पहले करके पश्चात् संन्यास का विधान निरूपण करें श्रीपिता-

लिङ्गीवैखानसहरद्विजौभृतकाध्यापकः शिपिविष्टोऽनग्निको वैराग्यवन्तोऽप्येते न सन्यासार्हाः संन्यस्ता यद्यपि महावाक्योपदेशे नाधिकारिणः । षण्डोऽथ विकलोऽप्यन्धो बालकश्चापि पातकी । (नारदपरिव्राजकोपनिषद् २।१-२)

तथाचानन्दभाष्यकारश्रीचरणाः श्रीवैष्णवमताब्जभास्करे-

महजी ने कहा सावधान होकर सुनो-षण्ड-नपुंसक पतित-स्वधर्म भ्रष्ट अङ्ग विकल-आँख कान नाक हाथ पैर आदि से रहित स्त्रैण-स्त्री में समासक्त उसे साथ रखनेवाला बहरा बालक मूक पाखण्डी चक्री लिङ्गी वैखानस तथा हरद्विज और वेतन लेकर पढानेवाला एवं कोढी आहिताग्नि रहित जो हैं ये सब वैराग्य वाले हो तो भी संन्यासी विरक्त श्रीवैष्णव होने के योग्य नहीं हैं । यदि जैसे तैसे शास्त्र मर्यादा रहित होकर संन्यास ग्रहण करलें-विरक्त श्रीवैष्णवी दीक्षा लेले तो भी महावाक्य-मोक्ष प्रतिपादक वेदवाक्य-उपनिषद् या वेदमूलक श्रीमद्रामायणादि के उपदेश के अधिकारी नहीं हो सकते हैं । एवं षण्ड-नपुंसक अन्धा अंगविकल या विक्षिप्त पातकी तथा बालक विरक्त श्रीवैष्णवीय दीक्षा के योग्य नहीं होते ।

इस विषय को प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकारजी ने श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर के ४।५-६ श्लोकों द्वारा स्फुटित किया है-जो अङ्ग विकल हो तथा अधिक अङ्गवाला हो कपट माया करनेवाला मायावी हो जिसका दांत काला हो नेत्र रोग से दूषित अर्थात् अक्षणाकाण-अन्ध हो द्वाविंशति भेद भिन्न कुष्ट रोगादि संक्रामक रोगवाला हो तथा निरर्थक अधिक वोलनेवाला वावदूक हो वामन कद में छोटा हो गांजा बीडी वगैरह व्यसनवान् हो प्रमाण में अधिक निद्राशील हो जिसका नख सडा हुआ हो और अधिक भोजन करनेवाला हो क्योंकि "अस्वग्र्य लोकविशिष्टम्" इत्यादि मनु शास्त्र वचन से बहुभोजन का निषेध है । मुमुक्षुओं को मोक्ष साधन का उपदेश देने के लिये ऐसा-पूर्व वर्णित लक्षणवाला आचार्य-गुरु योग्य नहीं होता है ।

जगद्विजयी महामहोपाध्याय जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरघुवराचार्य वेदान्तकेसरीजी ने भी आचार्यस्मृति में कहा है-

लोक व्यवहार में प्रशस्त रूपमें देखे जानेवाले अङ्गों से अधिक अङ्ग वाला तथा न्यून अङ्गवाला यानी आँख हाथ तथा पैर या कान नाक के कमती-हीन-रहित अङ्ग वाला अथवा लूला लंगडा-काण-खंज जिसका शरीर है ऐसा व्यक्ति विरक्त-संन्यासी दीक्षा लेने का अधिकारी या सम्प्रदायाचार्य पद या महन्त पद पर आसीन

"हीनाङ्गो ह्यधिकाङ्गश्च कपटीकृष्णदन्तवान् ।
नेत्ररोगी च कुष्टी च वावदूकश्च वामनः ॥
व्यसनी बहुनिद्रश्च कुनखी बहुभोजनः ।
नेदृशोदेशिको योग्योमुमुक्षोर्मोक्षसाधने ॥" (४।५-६)

तथैव जगद्विजयिनो महामहोपाध्यायजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्य श्रीरघुवराचार्यवेदान्तकेसरीश्रीचरणाः आचार्यस्मृतौ-
"नैवाधिकाङ्गसहितो न च व्यङ्गदेहो नाचारहीन विविधाश्रमदत्तचित्तः ।
नोलम्पटो न च कदाचरणानुरक्तः स्वाचार्यध्रुङ् न च नहि प्रमदानुरक्तः ॥" (२।१०) ॥५॥

॥ तप्तधनुर्वाण मुद्राधारणसंस्कारविधिः ॥

सम्पादितनित्यक्रियं पूर्ववर्णितगुणसम्पन्नं गुरुं विहितमुण्डनादिशौचं शुद्धासने उपवेश्य पञ्चगव्येन शुद्धमृत्तिकया च बहिरन्तः शुद्धिं विधाय, तद्विधिर्यथा-

होने का योग्य नहीं होता है। सदाचार से विहीन तथा गृहस्थ आदि विविध आश्रमों में मन लगाने वाला अर्थात् जहाँ पर अधिक सुख सुविधा मिलेगी उसी आश्रम में रहेंगे ऐसा विचारवाला भी विरक्त दीक्षा-संन्यास दीक्षा व आचार्य पद के योग्य नहीं होता है। लंपट तथा निन्दित आचार विचार वाला व्यक्ति आचार्य पद पर आसीन नहीं हो सकता है। अपने आचार्य या पूर्वाचार्यों से द्रोह करनेवाला तथा स्त्री में आसक्त चित्तवाला भी आचार्य पद पर आसीन नहीं हो सकता है। इसका तात्पर्य यह है कि उपर्युक्त दोषों से जो व्यक्ति शून्य है वही विरक्त-संन्यास दीक्षा लेसकता है तथा आचार्य पद पर अभिषिक्त भी होने योग्य है ॥५॥

॥ तप्त धनुर्वाणमुद्राधारण संस्कार विधि ॥

पूर्व क्रम में वर्णित गुण गण से गुरु को जिन्हों ने नित्य क्रियाओं को सम्पन्न करलिये हैं तथा मुण्डन आदि शौच करलिये हैं उन्हें शुद्ध आसन पर बैठाकर पञ्चगव्य से तथा मृत्तिका से बाहरी एवं आन्तरिक शुद्धि करके शुद्धि का विधान जैसे कि वनों में जो औषधियों के रसों को आगे के भागों को चरती है ऐसे गायों का गोवर आदि शरीर को शुद्ध करने के लिये परम पवित्र है। अतः हे गोमय मेरे रोग शोक एवं पापों को दूर करो। पञ्चगव्य की मात्रा विधान इसप्रकार है कि गोवर के दुगुणा गोमूत्र

अग्रमग्रेचरन्तीनामौषधीनां रसं वने ।
　　　　तासामृषभपत्नीनां पवित्रं कायशोधनम् ॥
तन्मे रोगांश्च लोकाश्च पापांश्च हर गोमय ।
　　　　शकृद् द्विगुणगोमूत्रं सर्पिदद्याच्चतुर्गुणम् ।
क्षीरमष्टगुणं प्रोक्तं पञ्चगव्ये तथा दधि ॥

तत्र तारकश्रीराममन्त्रं मनसा उच्चार्य्य पञ्चगव्यपानं विधेयम् । शिष्यस्य कृते तु गुरुः उच्चारयेत् ।

ॐभूर्भूवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।
इति मन्त्रेण गोमूत्रं ह्णीयात् ।

ॐगन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिर्णीम् ।
　　　　ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहो पह्वये श्रियम् ॥ इति गोमयं मिश्रयेत् ।

ॐआप्यायस्व समेतु मे विश्वतः सोम वृष्ण्यंभवाजस्य सङ्गथे । इति दुग्धम् ।

ॐदधिक्राब्णोऽकारिषं जिष्णोरश्वस्य त्वाजिनः ।
　　　　सुरभिनो मुखाकरत्प्रणऽआयूंषितारिषत् ॥ अनेन दधि ।

ॐतेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि ज्योतिरसि देवो वः सविता पुनात्व च्छिद्रेण पशोः सूर्यस्य रश्मिभिः । इति मन्त्रेणधृतं मिश्रयेत् ।

हो तथा गोमूत्र से चार गुणा घृत आठ गुणा दूध, एवं आठ गुणा दही डालने पर पञ्चगव्य होता है । पञ्चगव्य पान क्रिया में गुरु तारक मन्त्र का मन ही मन उच्चारण कराकर शिष्य को पञ्चगव्य पान करावें । क्योंकि दीक्षित नहीं होने के कारण शिष्य के बदले गुरु को उच्चारण करना उचित है । शेष मन्त्र शिष्य के मुख से पढाजाना चाहिये । गायत्री मन्त्र से गोमूत्र ग्रहण करना चाहिये एवं 'ॐगन्ध द्वारां...इस मन्त्र से गोवर लेना चाहिये ॐआप्यायस्व समेतु मे...इस मन्त्र से दूध लेना चाहिये तथा दधि क्राब्णोऽकारिषम्....से दधि एवं तेजोऽसि शुक्रमस्य...इस मन्त्र से घृत का मिश्रण करना चाहिये तथा देवस्य त्वा सवितुः...इस मन्त्र द्वारा कुश सहित जल से पञ्चगव्य को प्रोक्षित करे । जैसा कि बोधायनस्मृति में कहा गया है कि-गायत्री से गोमूत्र, गन्धद्वारां...से गोवर, आप्यायस्व-से दूध, दधिक्राब्णो...से दधि तेजोऽसि शुक्रमस्य...से घृत एवं देवस्य त्वा...से कुशोदक लेना चाहिये । तत्पश्चात् श्रीराममन्त्र से संस्कृत पञ्चगव्य को अपनी इच्छानुसार मात्रा में शिष्य पान करे । तत्पश्चात् आगे कहे जानेवाले

ॐदेवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहूभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । इति मन्त्रेण कुशोदकेन सम्प्रोक्ष्य उक्तञ्च बोधायनस्मृतौ-

गायत्र्याचैव गोमूत्रं गन्धद्वारेऽति गोमयम् ।
आप्यायस्वेतिक्षीरं वै दधिक्रावेति वै दधिम् ॥
तेजोऽसि शुक्रमित्याज्यं देवस्यत्वा कुशोदकम् ॥

ततः श्रीराममन्त्रसंस्कृतम्पञ्चगव्यं यथेष्टं पिवेत् ।

ततः वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण मृदालिप्तः शुद्धे जले तीर्थे वा स्नानं कुर्यात् ।

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे ।
शिरसा धारिते देवि रक्षस्व मां पदे-पदे ॥
ॐउद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ।
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम् ॥
त्वया हतेन पापेन जीवामि शरदः शतम् ॥
ॐआपः पुनन्तु पृथिवीं पृथिवी पूता पूनन्तु माम् ।
यदुच्छिष्टमभोज्यञ्च यद्वा दुश्चरितं मम ।
सर्वं पुनन्तु मामापोऽसतां च प्रतिग्रहँस्वाहा ॥

मन्त्रों के द्वारा मृत्तिका से उपलिप्त होकर पवित्र जल अथवा तीर्थ जल में स्नान करे। मृत्तिका लेपन करने का मन्त्र अश्वक्रान्ते...एवं उद्धृतासि वराहेण...शिष्य द्वारा पढाजाना चाहिये तथा आपः पुनन्तु...यह मन्त्र स्नान के लिये पढाजाना चाहिये। इसके वाद गुरु अच्छी तरह से संस्कृत मङ्गलकारी वेदी पर विधान पूर्वक पार्षद भ्रातृगण एवं श्रीसीताजी के सहित भगवान् श्रीरामजी को एवं श्रीरामभक्तों को स्थापित करके और श्रीराम भक्तों में प्रधान रूपसे पवनतनय श्रीहनुमानजी को स्थापित करके श्रद्धा पूर्वक स्थापित देवताओं को पुरुषसूक्त के द्वारा षोडशोपचार राजोपचार अथवा अन्योपचार से पूजा करके एवं षडक्षर श्रीराममन्त्र द्वारा श्रीसीताजी सहित श्रीरामजी की विधिवत् पूजा करके सभी को प्रणाम करे। तत्पश्चात् "साकेताय" इत्यादि मन्त्रों से साकेत लोक भगवत्पार्षद आयुध परिवार तथा सम्प्रदायाचार्यों को प्रणाम करे। पुनः आगे कहे जानेवाले आपोहिष्ठा आदि मन्त्रों से शिष्य को प्रोक्षित करे। नमोभगवते रघुनन्दनाय इस मन्त्र से भी प्रत्येक खण्ड द्वारा शिष्य का प्रोक्षण करके तत्पश्चात् शान्ति पाठ करे।

ततः गुरुः सुसंस्कृतायां शुभायां वेद्यां विधानपूर्वकं पार्षदैः, भ्रातृभिः श्रीसीतया च सहितं श्रीरामं श्रीरामभक्तांश्च स्थापयित्वा श्रद्धापूर्वकं स्थापितान् पुरुषसूक्तेन षोडशोपचारेण राजोपचारेण वा पूजयित्वा षडक्षरेण श्रीराममन्त्रेण श्रीसीतया सहितं श्रीरामं सम्पूज्य प्रणमेत्। ततः

ॐश्रीसाकेताय भगवन्नित्याय नमोनमः

ॐ श्रीहनुमदादि भगवत्पार्षदेभ्यो नमः

ॐ श्रीशार्ङ्गादि भगवदायुधेभ्यो नमः

ॐ श्रीभगवत्परिवाराय नमोनमः

ॐ ब्रह्मावशिष्ठ पराशर व्यास शुक बोधायन रामानन्दाचार्यादि आत्मगुरुपर्यन्तं सर्वेभ्यः स्व सम्प्रदाय पूर्वाचार्येभ्यो नमोनमः। इति पूर्वाचार्यान् प्रणम्य वक्ष्यमाणेन मन्त्रेणाचार्यः शिष्यशरीरं कुशोदकेन प्रोक्षयेत्।

ॐ आपो हिष्ठामयो भुवस्तान ऊर्जे दधातन। महेरणाय चक्षसे। यो वः शिवतमोरसः। तस्य भाजयते हनः। ऊशतीरिव मातरः। तस्मा अरङ्गमामवो। यस्य क्षयाय जिन्वथ आपो जन यथा च नः। ॐभूर्भुवः स्वरोम्। ॐनमो भगवते रघुनन्दनाय। रक्षोघ्न विशदाय। मधुर प्रसन्नवदनाय। बलाय। रामाय। विष्णवे नमः। ततः शान्ति पाठं कुर्यात्।

हरिः ॐस्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्तिनस्ताक्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्तिनो बृहस्पतिर्दधातु।

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष७शान्तिः पृथिवी शान्ति रापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व७शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।

शान्ति पाठ के पश्चात् श्रीरामाय नमः आदि तीन मन्त्रों से तीन वार आचमन करके एवं श्रीराघवेन्द्राय नमः से हस्त प्रक्षालन करे। पुनः सर्वदा सर्वकार्येषु...से लेकर ब्रह्मेशान जनार्जनाः पर्यन्त मङ्गलपाठ करके हाथ में कुश तिल जल लेकर पञ्चसंस्कर हेतु सङ्कल्प करे। पुनः अलङ्कृत वेदी के ऊपर जो कुङ्कुम चन्दनादि से परिसिञ्चित है उस पर चन्दन के द्वारा षट्कोण बनाकर मध्यभाग में 'रां' यह अग्नि बीज मन्त्र

यतोयतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु। सन्नः कुरुप्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः। सुशान्तिर्भवतु ।

ततः श्रीरामाय नमः । श्रीरामभद्राय नमः । श्रीरामचन्द्राय नमः । इति मन्त्रेण त्रिराचम्य श्रीराघवेन्द्राय नमः इति हस्तं प्रक्षाल्य मङ्गलपाठं कुर्यात् ।

सर्वदा सर्वकार्येषु नास्ति तेषाममङ्गलम् ।
येषां हृदिस्थो भगवान् मङ्गलायतनो हरिः ॥
लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः ।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्जनः ॥
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थांगतोऽपि वा ।
यः स्मरेत्पुण्डीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥
तदेव लग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव ।
विद्याबलं दैवबलं तदेव सीतापतेर्नाम यदा स्मरामि ॥
ॐसर्वेष्वारम्भकार्येषु त्रयस्त्रिभुवनेश्वराः ।
देवा दिशन्तु नः सिद्धिं ब्रह्मेशानजनार्जनाः ॥

तदनन्तरं सङ्कल्पं कुर्यात्-

हस्ते कुशतिलजलान्यादाय-ॐविष्णुर्विष्णुर्हरिर्हरिः-हरिः ॐ तत्सत् अद्य श्रीमद्भगवतोमहापुरुषस्याज्ञया प्रवर्तमानस्य अद्य श्रीब्रह्मणो द्वितीय परार्द्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे जम्बूद्वीपे आर्यावर्ते भरतखण्डे पुण्यक्षेत्रे अमुक नाम सम्बत्सरे अमुकमासे अमुक पक्षे अमुक तिथौ अमुक नक्षत्रे अमुकवासरे अमुकगोत्रोत्पन्नस्य अमुक नाम्नः शिष्यस्य जन्ममरणादि भवरोगनिवृत्त्यर्थं देवगुरुकृपया सकलदुरितशमनपूर्वकं सर्वेश्वर श्रीससीतरामप्रीत्यर्थं श्रीसीता रामशरणागतिसिद्धये पञ्चसंस्कारान् अहं करिष्ये ।

लिखकर आम्र पीपलादि शुद्ध काष्ठ को इकट्ठा करके उस पर श्रीराममन्त्र से पवित्र अग्नि की स्थापना कर प्रज्वलित अग्नि में यव तिल घृतादि हवनीय द्रव्य से अथवा केवल घृत से श्रीरामजी को उद्देश्य करके पुरुषसूक्त तथा १०८ षडक्षर श्रीराममन्त्र से हवन करे। जैसे कि यह ईश्वर संहिता में कहा गया है मूल मन्त्र द्वारा घृत से १०८

तदनन्तरम्परिष्कृतायां वेद्याङ्कुङ्कुमचन्दनादिभिः परिषिक्तायां चन्दनेन षट्कोणं विधाय मध्ये रां इति वह्नि बीजमुल्लिख्य शुद्धाभिः समिद्भिः पुञ्जीकृते काष्ठे श्रीराममन्त्रेण पवित्रमग्निं स्थापयित्वा प्रज्वलितेऽग्नौ यव तिलघृतादिहवनीयद्रव्यैः आज्येन वा श्रीराममुद्दिश्य पुरुषसूक्तेन अष्टोत्तर शतेन श्रीराममन्त्रेण च जुहुयात्। तदुक्तमीश्वरसंहितायाम्-मूलमन्त्रेण जुहुयाच्छतमष्टोत्तरं घृतैः। वैष्णव्या चैव गायत्र्या तद्विष्णोरिति वै ऋचा। ततः शिष्यमुखेन वक्ष्यमाणं स्तोत्रं पाठयेत्। अग्नौ श्रीरामनामाङ्कितौ धनुर्वाणौ च स्थापयेत्।

प्रेरकं बाणवृन्दानां रामचाप नतोऽस्म्यहम्।
चक्रानन्तपतिं तीक्ष्णं रामवाणमहं भजे ॥

रामब्रह्म राजपुत्रहस्तेऽजस्त्रं विराजितौ।
सूर्यानन्तप्रभावन्तौ धनुर्वाणौ नमाम्यहम् ॥

असुराणां घातकौ च सुराणां भयनाशकौ।
निहितेभ्यो मोक्षदौ च धनुर्वाणौ नमाम्यहम् ॥

स्व चिह्नबाहुमूलेभ्यः सीतारामांघ्रिभक्तिदौ।
श्रीराममुष्टिशोभाप्तौ धनुर्वाणौ नमाम्यहम् ॥

ध्यातानन्दकरौ दिव्यौ योगिनां ध्यानदुर्लभौ।
नित्यौ रामायुधाख्यौ तौ धनुर्वाणौ नमाम्यहम् ॥

असुरेभ्यो भीतकाभ्यां सुरेभ्यः शरणप्रदौ।
भूमिभारहरावेतौ धनुर्वाणौ नमाम्यहम् ॥

श्रीरामवामहस्तस्थ धनुर्धर्माभिपालक।
कामादिनाभिभूतस्य राममार्गं प्रदर्शय ॥

आहुति दें। वैष्णवी गायत्री द्वारा अथवा 'तद्विष्णो परमं पदम् सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततम्' इस ऋचा के द्वारा हवन करे। इसके वाद शिष्य के मुख से आगे कहा जानेवाला स्तोत्र का पाठ करावे और अग्नि में श्रीरामनाम से चिह्नित धनुष एवं वाणों को स्थापित करे। "प्रेरकं वाण वृन्दाणां से लेकर "राममार्गं प्रदर्शय" पर्यन्त

श्रीरामसव्य हस्तस्थ शराहितविनाशक ।
सूर्यशतसमांशोर्चिः राममार्गं प्रदर्शय ॥ इति संप्रार्थ्य,
अग्नौ विशुद्धहविषा विविधैः सुगन्धैः,
होमं सुवेद विधिना शरशार्ङ्ग मन्त्रैः ।
अष्टोत्तरं शतमथो जुहुयात्सुभक्तो,
रामं स्मरेद्धृदि सदाजनकात्मजाढ्यम् । इत्यादि प्रमाणेन धनुर्मुद्रामादाय गुरुः
धन्वना गा धन्वनाजिंजयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम । धनुः
रात्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥ इति मन्त्रं पठन् शिष्यस्य
वामबाहुमूले धनुर्मुद्रयाङ्कयेत् । ततः बाणद्वयमुद्रामादाय-
सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिः सन्नद्धापतति प्रसूता । यत्रा नरः
सं च विच द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्मयंसन् ।
ऋजीते परिवृङ्घ्ग्घिनोऽश्मा भवतु न स्तनू ।
सोमोऽधि ब्रवीतु नोऽदितिः शर्मयच्छतु ॥
आभ्याम्मन्त्राभ्यां शिष्यस्य दक्षिणे बाहुमूले वाणमुद्राभ्यामङ्कयेत् ।
ततः प्रार्थयोत्-
प्रत्यूहव्यूहभङ्गं विदधदुरुबलः शक्तिमान्सर्वकारी,
भूरिश्रेयः प्रतापो मुनिवरनिकरैः स्तूयमानो विमानः ।
रक्षौदैत्यादिनाशी क्षुभितलनिधिर्लोकजिल्लोकमान्यो,
धन्यो नो मङ्गलौघं सपदि सकुरुताद्रामशस्त्रास्त्रसङ्घः॥
श्रीराममुद्राधारणमात्रेणैव मानवाः निर्भयाः भवन्ति ।
यथा-आनन्दरामायणस्य मनोहरकाण्डेलिखितम्-
राममुद्रास्ति यद्देहे तं पापं स्पृशते नहि ।
राममुद्राङ्कितं दृष्ट्वा नरं ते यम किङ्कराः ।
पलायन्ते दशदिशः सिंहं दृष्ट्वा मृगा यथा ॥

स्तोत्र से धनुषवाण की प्रार्थना करने के पश्चात् गुरु धनुष मुद्रा को उठाकर धन्वनामा...इत्यादि मन्त्र को पढता हुआ शिष्य की वामबाहु के मूल में धनुषमुद्रा से चिह्नित करें। तत्पश्चात् दो वाण मुद्राओं को ग्रहण कर सुपर्णवस्ते...ऋजीतं परिवृन्धि...

खिन्नस्य सुकुमारस्य अतिवृद्धस्य बालस्य आतुरस्य च शीतलमुद्रया अङ्कनं विधेयम् । तदुक्तम्-शीतलेनाथ तप्तेन चाङ्कितो रामकिङ्करः ॥ ततः ऊर्ध्वपुण्ड्रेन सम्पन्नं शिष्यं कुर्यात् ॥६॥

॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रधारणविधिः ॥

श्रीसम्प्रदायमनुसृत्य पञ्चसु संस्कारेषु द्वितीय ऊर्ध्वपुण्ड्रधारणमस्ति । तदुक्तं श्रीसम्प्रदायाचार्यप्रवरेण भगवता श्रीरामानन्दाचार्ययतीन्द्रेण श्रीवैष्णवमताब्जभास्करे-

इन दो मन्त्रों से शिष्य की दक्षिण बाहुमूल में दो वाण मुद्राओं से अङ्कित करे। तत्पश्चात् प्रत्यूहव्यूह भङ्गम्...इत्यादि मन्त्रों को पढकर तापमुद्रा को सम्पन्न करे एवं इसके माहात्म्य से शिष्य को अवगत करावे तत्पश्चात् आगे कहे जानेवाले विधि विधान से शिष्य के ललाट में गुरु ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक करे ॥६॥

॥ ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण विधान ॥

श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णव सम्प्रदाय परम्परानुसार पाँच संस्कारों में दूसरा ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण संस्कार कहा गया है। यही वात श्रीसम्प्रदाय के आचार्य प्रवर श्रीमान् यतिराज श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराज द्वारा श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर नामक ग्रन्थ में कहा गया है-तपाया गया धनुष एवं वाणों से दोनों भुजाओं के मूल में विधिवत् अङ्कन कर ताप संस्कार विधिवत् सम्पन्नकर एवं ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारणकर, वेदोक्त भगवत् सम्बद्ध नामकरण कर मन्त्र एवं माला संस्कार किये जाने के पश्चात् मनुष्य सदैव परमपुरुषार्थ मोक्ष की कारणता को धारित करता है ।

सनत् कुमार संहिता में भी कहा गया है-आचार्य शिष्य को तप्तमुद्राङ्कन संस्कार करने के पश्चात् विशुद्ध श्रीरामचरणरज श्वेत मृत्तिका से ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण करावे। पहले सिंहासन बनाकर उसके ऊपर भगवत् चरणाकृति बनाकर दो ऊर्ध्व रेखा अङ्कित करे। मध्य भाग में हल्दी से परिष्कृत कृपा मूर्ति जगज्जननी जानकी स्वरूप मानकर श्री जी को स्थापित करे। आथर्वणिक श्रुति में उल्लिखित किया गया है-भगवद् भक्त श्रीवैष्णव अपना परम कल्याण के लिये मध्य भाग में जिसमें छिद्र है ऐसी भगवत् चरणाकृति की रेखा वाला ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करता है, वह अन्य मानवों को प्रिय होता है । वह पुण्य भाजन होता है । वह मुक्ति भाजन होता है । श्रीरामचरणरज श्वेत मिट्टी एवं हल्दी से ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करे इस विषय में स्मृति

तप्तेन मूले भुजयोः समङ्कनं शरेण चापेन तथोर्ध्वपुण्ड्रकम् ।
श्रुतिश्रुतं नाम च मन्त्रमालिके संस्कारभेदाः परमार्थहेतवः ॥

सनत्कुमारसंहितायां चोक्तम्-

ललाटे तिलकं दद्यादूर्ध्वञ्च स्वच्छमृणमयम्
सिंहासनोपरिश्रेष्ठं द्विरेखाञ्चरणाकृतिम् ॥
स्थापयेज्जानकीरूपां तन्मध्ये श्रीहरिद्रजाम् ॥

तथाचाथर्वणीयाश्रुतिः-

हरेः पादाकृतिमात्मनो हितायमध्येच्छिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रं यो धारयति स परस्य प्रियो भवति । स पुण्यभाग् भवति स मुक्तिभाग् भवति । मृदा हरिद्रयाचोर्ध्व पुण्ड्रं कुर्यादत्र विषये स्मृतिचन्द्रिकादिषु विशेषेणाभिहितम् तस्यायम भिप्रायः । विशेषजिज्ञासुभिस्ते ग्रन्था अवलोकनीयाः । भागवतेषु पवित्र-
चन्द्रिका आदि ग्रन्थों में विशेष रूपसे निरूपण किया गया है। उसका अधोनिर्दिष्ट अभिप्राय है। यदि किन्हीं महानुभावों को विशेष जानने की इच्छा हो तो उन ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिये। भगवत् सम्बन्धी क्षेत्रों में जो पहाडों के शिखर पर नदी किनारे अथवा समुद्र के तटपर तुलसी के मूल में या वल्मीक के ऊपरी भाग में जो अतिशय पवित्र मृत्तिकायें हों उनका ही तिलक के लिये संग्रह करना चाहिये। अन्य मृत्तिकायें संग्रहीत नहीं करनी चाहिये। उन मृत्तिकाओं में रंग के अनुसार धारण करने का फल भी अलग अलग होते हैं। श्याम मृत्तिका शान्ति कारिणी होती है। लाल मृत्तिका वशीकरण जनक होती है। पीला रंग की लक्ष्मी सम्बर्धक होती है। और श्वेत मृत्तिका श्रीवैष्णवों के लिये उपयुक्त कही गयी है। मृत्तिका के अनुसार ही तिलकों के गुण होते हैं। अतः श्रीवैष्णवों को भगवदाश्रित होने के कारण अन्य कोई कामना होती नहीं है और वे निष्काम होते हैं। अत एव श्वेत मृत्तिका से ही तिलक धारण किया जाना चाहिये। तिलक धारण करने में अङ्गुलियों का भी विशेष फल निर्देश किया गया है वह जैसे कि अंगुष्ठाङ्गुलि पुष्टि प्रदानकारी है, मध्यभाग अङ्गुली आयुष वर्धक होती है, अनामिका अन्न प्रदान कारिणी होती है तथा प्रदेशिनी अङ्गुली मोक्ष प्रदान करनेवाली कही जाती है। भिन्न भिन्न फल होने के कारण इन विभिन्न अङ्गुलियों में अपनी अभिलाषा को दृष्टिगत कर तिलक धारण करना चाहिये।

क्षेत्रेषु ये पर्वताग्रे नदीतटे सागरतीरे वा तुलसीमूले वल्भीकाग्रे वा या पवित्रतमा मृत्तिकाः ता एव संग्राह्याः, नान्याः तासु मृत्तिकासु वर्णक्रमेण फलानि भिन्नानि भवन्ति। श्यामा शान्तिकारिणी, रक्ता वश्यकरी पीता लक्ष्मीसम्बर्धिका श्वेता च वैष्णवीकीर्त्यते। मृत्तिकानुसारेणैव तिलकगुणाः भवन्ति। तस्मात् श्रीवैष्णवैः भगवदाश्रितत्वात् निष्कामत्वाच्च श्रीराम चरणरजश्वेतमृत्तिकयैव तिलकधारणं विधेयम्। तिलकधारणे विशेषतोऽङ्गुलीनामपि फलानि निर्दिष्टानि, तद्यथा अंगुष्ठः पुष्टिप्रदः, मध्यमा आयुष्करी, अनामिका अन्नदा प्रदेशिनी च मोक्षा कीर्त्यते। एभिरङ्गुलिभेदैः स्वेच्छामनुरुध्यनखस्पर्शं परित्यजन् जपे होमे पूजाकाले निमित्तमन्तराऽपि सायं प्रातः समहितमनाः सन् भगवन्नामोच्चारणं मूलमन्त्रोच्चारणं वा विधाय तिलकधारणं विधेयम्। तिलकस्य चौन्नत्यञ्चतुरङ्गुलम् द्व्यङ्गुलं च विस्तारो भवेत्। मध्यभागे हरिद्रया परिष्कृतं रक्तवर्णं श्रियं श्रीरामचरणरजं वा धारयेत्। श्रीचूर्णधारणस्य श्रीकरत्वं विजयप्रदत्वं पुण्यजनकत्वं सर्वदोष प्रणाशकत्वं चात्रिस्मृतावुक्तम्।

इसमें विशेष रूपसे यह ध्यान रखना चाहिये कि तिलक धारण करते समय उस अङ्गुली के नख का ललाट से स्पर्श नहीं हो अर्थात् नख से विना स्पर्श कराये, जप होम देव पूजन काल में कोई विशेष निमित्त नहीं होने पर भी सायं प्रातः एकाग्रचित्त होकर भगवान् सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी का नामोच्चार अथवा मूल मन्त्रोच्चारण पूर्वक तिलक धारण करे। तिलक की ललाट में ऊँचाई चार अङ्गुल प्रमाण तथा विस्तार दो अङ्गुल होना चाहिये। तिलक के मध्यभाग में हल्दी से परिष्कृत लाल रंग की श्री अथवा श्रीरामजी के श्रीचरणरज को धारण करना चाहिये श्रीचूर्ण के धारण करने का फल लक्ष्मी प्रदान करना, विजय प्रदान पुण्यजनक, तथा सभी प्रकार के दोषों का निवारण करना है ऐसा अत्रिस्मृति में कहा गया है।

पूर्व में वर्णित शास्त्रीय प्रमाण सिद्ध वचनों तथा अपनी गुरु परम्परा (सम्प्रदाय परम्परा) का अनुसरण करके शिष्य के ललाट में षडक्षर ब्रह्मतारक श्रीराममन्त्र अथवा श्रीरामनाम का उच्चारण करते हुये श्वेत रंग की मिट्टी से भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के चरणों की आकृति वाला आचार्य तिलक करें। दोनों ऊर्ध्वपुण्ड्र चरणाकृति के

पूर्वोक्तानि शास्त्रवचनानि स्वसम्प्रदायपरम्पराञ्चानुरुध्य शिष्यस्य भाले श्रीराममन्त्रं मनसा समुच्चारयन् श्रीरामनामवोच्चारयन् श्वेतमृत्तिकया भगवच्चरणाकृतिं ससिंहासनं तिलकं कुर्यात् द्वयोरन्तराले रमणीयाकृतिं श्रीचुर्णेन श्रीरामचरणरजसा वा तिलकं कुर्यात् । दीक्षाकालं परित्यज्यस्मिन् समये सति सामर्थ्ये स्वयमेव तिलकधारणं कुर्यात् । वामहस्तेन तिलक धारणस्य निषेधान् मुमुक्षुभिः प्रदेशिनी अङ्गुलिरेवोपयोगयोग्यः । ऊर्ध्वपुण्ड्र मध्येऽक्षतादि द्रव्यधारणं न कर्तव्यम् । ऊर्ध्वपुण्ड्रधारणोत्तरं नामकरणसंस्कारोविधेयः ॥७॥

ऊर्ध्वपुण्ड्रधारणविषये विशेषविधिः श्रीवाल्मीकिसंहितायाः चतुर्थाध्याये उक्ताः तद्यथाः-

मध्यभाग में श्रीचूर्ण या श्रीरामचरणरज से सुन्दर आकृति वाला श्री स्वरूप तिलक करें। दीक्षा समय छोडकर अन्य किसी भी समय में दूसरों के हाथ तिलक धारण नहीं किया जाना चाहिये । यदि विमारी आदि के कारण असामर्थ्य हो तो विवशता की स्थिति में दूसरे के हाथों से भी तिलक धारण अवश्य करना चाहिये । विना कण्ठी तिलक के श्रीवैष्णवों को कभी भी नहीं रहना चाहिये । वायाँ हाथ के द्वारा तिलक धारण का निषेध किया गया है। अत एव मोक्ष की अभिलाषा रखनेवाले श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णवों को प्रदेशिनी अङ्गुलि ही तिलक धारण में उपयोग करने योग्य है । इस वात का ध्यान रखना चाहिये कि ऊर्ध्वपुण्ड्र के मध्यभाग में अक्षत् आदि कोई अन्य द्रव्य श्रीवैष्णवों को नहीं लगाना चाहिये । ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण के पश्चात् नामकरण संस्कार शिष्य का गुरु के द्वारा किया जाना चाहिये ॥७॥

विष्णु भक्ति परायण श्रीवैष्णवों के द्वारा सदैव ऊर्ध्वपुण्ड्र किया जाना चाहिये ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण नहीं करने पर पतितपना को प्रासकर रौरव नामक नरक में जाता है। रैवतक चित्रकूट और यादवाद्रि से श्रीवैष्णव ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करने के लिये मृत्तिका का आहरण करें । अथवा गङ्गा नदी से यमुना नदी से अथवा सरयु नदी से मृत्तिका लाकर परम मङ्गलकारी ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करे जो धर्म का सभी प्रकार से संरक्षण करनेवाले हैं वे सदैव धारण करें । श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णवगण पहले सिंहासन करें तत्पश्चात् दो भागों में भगवत् चरण के आकार वाला दो ऊर्ध्वपुण्ड्र श्वेत मिट्टी से करें, इसके वाद दोनों चरणाकार के मध्यभाग में सुन्दर श्री जी को लिखें यानी हरिद्रा से

ऊर्ध्वपुण्ड्रं सदाकार्यं विष्णुभक्तिपरायणैः ।
पातित्यमन्यथा प्राप्य रौरवं नरकं व्रजेत् ॥

रैवतकाच्चित्रकूटाद्यादवाद्रेश्च वैष्णवाः ।
मृत्तिकाऽऽहरणं कुर्युरुर्ध्वपुण्ड्राय सर्वदा ॥

गङ्गायाः सूर्यकन्यायाः सरय्वाद्यामृदासदा ।
ऊर्ध्वपुण्ड्रं शुभं कुर्युर्वैष्णवा धर्मरक्षकाः ॥

पूर्वं सिंहासनं कुर्युः ततः पार्श्वद्वयं पुनः ।
ततः पश्चाच्च तन्मध्येलिखेयुः सुन्दरीश्रियम् ॥

रजन्या श्रियमालिख्य मृदावापि च शुक्लया ।
वैष्णवो मुक्तिमाप्नोति सर्वकल्मषवर्जितः ॥८॥

घृतोर्ध्वपुण्ड्रः परमेशितारं, नारायणं सांख्ययोगाधिगम्यम् ।
स्मृत्वा विमुच्येत नरः समस्तैः संसारपासैरिह चैव विष्णुः ॥९॥

॥ नामकरण संस्कारविधिः ॥

ऊर्ध्वपुण्ड्रधारणसंस्कारानन्तरं शिष्यस्य नामकरणसंस्कारं गुरुः कुर्यात्, विषयेस्मिन् सनत्कुमारसंहितायामुक्तम्-

परिस्कृत लाल रंग की रोली से श्री को लिखकर अथवा शुक्ल मृत्तिका से श्री अपने ललाट में धारण कर श्रीवैष्णवजन नित्य पार्षदत्व स्वरूप मोक्ष को उपलब्ध करते हैं। तथा जन्म जन्मान्तर से सञ्चित सभी तरह के पापों से विमुक्त हो जाते हैं । श्रीवैष्णव-सम्प्रदाय परम्परा में केवल श्री का धारण करना निषिद्ध कहा गया है । अत एव सफेद रंग के ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक करके ही श्री करें ॥८॥

जिसने ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण किया है, वह ज्ञानयोग से जानने योग्य सकलभुवन नियामक मानव मात्र की परमगति श्रीरामजी को स्मरण कर समस्त संसार बन्धन से मुक्त होकर विष्णु स्वरूप हो जाता है ॥९॥

॥ नामकरण संस्कार विधि ॥

ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण संस्कार करने के पश्चात् गुरु शिष्य का नामकरण संस्कार करें । इस विषय में सनत् कुमार संहिता में कहा गया है । पुनः आचार्य अपने शिष्य को भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के नाम से सम्बन्धित नाम वोले या वुलावें । जो व्यक्ति

शिष्यन्तु रामसम्बद्ध नाम्ना वै प्रवदेत् पुनः ।

भगवच्छेषमात्मानमन्यथा यः प्रपद्यते ।

त एव ही महापापी चाण्डालाः स्युर्नसंशयः । इति वृद्धहारीतस्मृतावुक्तम् ।
यस्यार्थं विश्व आर्योदासः ॥ इति वेदेचाभिहितम् ।
पारासरस्मृतावपि-

योजयेन्नाम दासान्तं भगवन्नामपूर्वकम्

तस्मात् पापानि नश्यन्ति पुण्यभागी भवेन्नरः ।

श्रीरामानन्दीयानां श्रीवैष्णवानां नामकरणसंस्कारविषयेश्रुतिस्मृति पुराणादिषु विस्तरेण प्रतिपादितः सिद्धान्तः, तस्य संक्षेपेणेहाभिप्रायो निरुप्यते । सिद्धान्तमिममनुसरन्नेवाचार्यैर्नामकरणसंस्कारोविधेयः । यशस्यं देवतासम्बद्धं नक्षत्राश्रयं माङ्गल्यजनकं श्रीवैष्णवानां नामकरणं विधेयम् । यस्य नामपूर्ववर्णितगुणानुरूपं नास्ति स अनामकः सर्वकर्मसुगर्हितश्चो च्यते । शक्त्यावेशावतारादिनामपि नाम न कार्यम् । यथा कादीदासः, परशुरामदासः महादेवदास हीरादास प्रभृतयो न कार्या । विष्णुगुणसम्बन्धीनि अपने आप को भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का शेष स्वरूप नहीं मानता है, उसके विरुद्ध व्यवहार करता है, वे महान् पापी हैं और चाण्डाल होते हैं इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है । जिसका यह समस्त आर्यगण दास है, ऐसा वेद में भी कहा गया है। पराशर स्मृति में भी नामकरण के सम्बन्ध में कहा गया है-भगवन्नाम पूर्वक अर्थात् जिसके पूर्व भाग में भगवान् का नाम हो एवं अन्त में दास शब्द जुडा हो ऐसे दास्यभाव की योजना करके नामकरण करना चाहिये । ऐसा करने से जन्म जन्मान्तर के समस्त पाप नष्ट होते हैं एवं मनुष्य पुण्य भाजन बनता है ।

श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णवों का नामकरण संस्कार के विषय में वेद धर्मशास्त्र तथा पुराण आदि में विस्तार पूर्वक प्रतिपादन किया गया है । यहां पर उस सिद्धान्त का संक्षेप में निरूपण किया जाता है । अतः इस सिद्धान्त का अनुसरण करते हुए ही आचार्यों के द्वारा नामकरण संस्कार किया जाना चाहिये । कीर्तिजनक देवता के नामसे जुडा हुआ एवं जन्म नक्षत्र पर आधारित मङ्गलकारी नामकरण श्रीवैष्णवों का होना चाहिये जिस श्रीवैष्णंव का नाम पूर्व वर्णित गुणों के अनुरूप नहीं है, वह व्यक्ति

पापनाशकानि नामानि तु कर्तव्यानि । आचार्यपरम्परानुगुणितानि राघवानन्द रामानन्दानन्तानन्दादीनि दासान्तानि नामानि कर्तुं शक्यन्ते । इत्थं श्रुतिस्मृति सम्बद्धानि प्रपत्तिसूचकानि नामानि शिष्याणां विधेयानि येषां वैष्णवसम्प्रदायपरम्परानुगुणानि नामानि न क्रियन्ते ते चाण्डालता मनुव्रजन्ति । इत्थं वक्ष्यमाणं वचनं शिष्यमुखेनोच्चारयित्वा नामकरणं विधेयम्

अद्यप्रभृति श्रीराम ? तवदासोऽस्मि सर्वथा ।
दासान्तं नामगृह्णामि प्रसीदकरुणालय ॥

उक्तञ्च श्रीमद्रामायणे भागवते च-

अहं हरे तव पादैकमूलदासानुदासोभवितास्मिभूयः, दासोऽहंकोशलेन्द्रस्यरामस्याक्लिष्टकर्मणः' तेन-नाहं विप्रो न च नरपतिर्नापि वैश्योन शूद्रो नो वा वर्णी न च गृहपतिर्नोवनस्थो यतिर्वा । किन्तु प्रोद्यन्निखिलपरमानन्द पूर्णामृताब्धेः सीताभर्तुः पदकमलयोर्दासदासानुदासः ॥१०॥

अनामक (जिसका नाम ही नहीं है) और सभी कर्मों में निन्दित कहा जाता है । शक्ति के आवेश एवं अंशावतार आदि का भी नामकरण नहीं किया जाना चाहिये जैसे कालीदास, परशुरामदास, महादेवदास, हीरादास आदि नाम नहीं करना चाहिये । भगवान् विष्णु के गुणों से सम्बन्धित पापों का नाश करनेवाले नाम तो करना चाहिये । आचार्य परम्परा के अनुकूल गुण वाले राघवानन्द दास, रामानन्द दास, अनन्तानन्द दास आदि नाम किये जा सकते हैं । इसप्रकार वेद एवं धर्मशास्त्र से सम्बद्ध शरणागति सूचक नाम श्रीवैष्णवों का किया जाना चाहिये जिसका नाम श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के परम्परानुसार उसके अनुरूप गुणवाले नहीं किये जाते हैं वे चाण्डालत्व को प्राप्त करते हैं । इस वात में किसी प्रकार का संदेह नहीं । इसप्रकार पूर्व वर्णित विषयों का विवेचन कर आगे कहा जानेवाला मन्त्र का शिष्य के मुख से उच्चारण करते हुये, नामकरण संस्कार किया जाना चाहिये । हे भगवान् श्रीरामचन्द्रजी आज से आरम्भ कर मैं आपका सभी तरह से दास हूँ । अत एव दास अन्तवाला नाम स्वीकार करता हूँ । हे करुणानिधान आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों ।

इस वात को भागवत और श्रीमद्रामायण में कहा गया है-हे भगवान् विष्णु मैं आपके चरणकमलों के सेवकों की परम्परा का अन्तिम सेवक (दास) पुनः पुनः

☬ तुलसीमालाधारणविधिः ☬

पूर्ववर्णितं संस्कारत्रयं विधाय, आचार्यस्वशिष्यं दार्ढ्येन सम्यक् बोधयेत्, यत् अद्यारभ्य अहं प्रभोः श्रीरामचन्द्रस्य दासोऽस्मि मदीयं चेदं नाम इति । ततः-

"मालां च दद्यात् तुलसीसमुद्भवाम्" इति-श्रीवैष्णवमताब्जभास्करोक्तं

"तुलसीमालिका सूक्ष्मा कण्ठलग्ना द्विधाकृती ।
दद्यात्तां क्षणमात्रोऽपि शिष्यो नैव त्यजेत् पुनः ॥"

इति सनत्कुमार संहिता वचनम् ।

"वैष्णवैः सततं धार्या श्रीतुलसीद्वियष्टिका ।
तां त्यजन् पुरुषो मूढो भ्रष्टसंस्कार एव हि ॥"

बनूँ। मैं श्रीकोशलाधीश अक्लीष्ट कर्मकारी श्रीरामचन्द्रजी का दास हूँ। अत एव कहा जाता है मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, और राजा भी नहीं वैश्य अथवा शूद्र नहीं हूँ। ब्रह्मचारी नहीं हूं, अथवा गृहस्थ, वानप्रस्थी या संन्यासी भी नहीं हूं। किन्तु उत्कृष्ट मात्रा में उदीयमान समस्त पूर्ण परमानन्द से भरा हुआ अमृत का सागर स्वरूप श्रीसीतानाथ भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के दासों के दास का भी दास हूँ ॥१०॥

☬ तुलसी माला धारण संस्कार विधान ☬

इससे पूर्व वर्णन किये गये ताप पुण्ड्र नाम संस्कार करके आचार्य अपने शिष्य को दृढता के साथ अच्छी तरह समझावे कि आज से प्रारम्भकर हे प्रभो श्रीराम ? मैं आपका दास हूं, और यह मेरा नाम है। इसके वाद "गुरु तुलसी काष्ठ विरचित माला से अपने शिष्य को अलंकृत कर शास्त्रीय विधान पूर्वक षडक्षर ब्रह्मतारक श्रीराममन्त्र का उपदेश करे।" इस श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर के वचन और "दोलर वाली कण्ठ से सटी हुई पतली तुलसी की माला शिष्य को गुरु प्रदान करें। एवं शिष्य उस माला का कभी भी परित्याग नहीं करें।" इस सनत्कुमार संहिता के वचन एवं "दोलर वाली श्रीतुलसी की माला श्रीवैष्णवों के द्वारा सदैव धारण किया जाना चाहिये। उस माला का परित्याग करनेवाला विवेक रहित पुरुष संस्कार भ्रष्ट होता है। इस श्रीवाल्मीकि संहिता के वचन का विचार करके चौथा माला प्रदान नामक संस्कार गुरु करें। क्योंकि तुलसी, निखिल ब्रह्माण्ड नायक एवं तिलक स्वरूप श्रीरामचन्द्रजी के लिये जनकतनया श्रीसीताजी के समान प्रिय है। एवं समस्त दृश्य

इति श्रीवाल्मीकिसंहिता वचनं च विमृश्य तुरीयं मालासंस्कारं गुरुः कुर्यात् । यतो हि तुलसीसकलब्रह्माण्डतिलकस्य श्रीरामचन्द्रस्य जनकात्मजेव प्रिया सर्वलोकपाविनीचेति अगस्त्यसंहितायां गरुडपुराणेचोक्तम् । तदुक्तं-

"विष्णोस्त्रैलोक्यनाथस्य रामस्य जनकात्मजा ।
प्रिया तथैव तुलसी सर्वलौकैकपाविनी ॥ अ. सं. ।

क्षालितां पञ्चगव्येन मूलमन्त्रेण मन्त्रिताम् ।
गायत्र्याचाष्टकृत्वा वै मन्त्रितां धूपितां च ताम् ॥

विधिवत्परयाभक्त्या सद्योजातेन पूजयेत् ।
सन्निवेद्यैव हरये तुलसीकाष्ठसम्भवाम् ॥

मालां पश्चात्स्वयं धत्ते स वै भागवतोत्तमः ।
मालां धत्ते स्वयं मूढः स याति नरकं ध्रुवम् ॥" ग. पु.

जगत को पावन करनेवाली है" इस विषय में अगस्त संहिता और गरुड पुराण में भी कहा गया है-"तीनों लोकों के नायक भगवान् विष्णु-श्रीरामजी के लिये जनकतनया श्रीसीताजी जिस तरह प्रिय हैं उसी तरह सर्वलोक को पवित्र करनेवाली एक मात्र तुलसी प्रिय है ।-अ.सं.। पञ्चगव्य के द्वारा प्रक्षालित ब्रह्मतारक षडक्षर श्रीराममन्त्र से अभिमन्त्रित आठ वार गायत्री मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित और धूप से सुसंस्कृत तुलसी माला को पराभक्ति द्वारा विधिवत् सद्योजात मन्त्र से पूजित करे । तथा सम्यक् प्रकार से भगवान् श्रीरामजी को तुलसी काष्ठ से विरचित माला समर्पित कर तत्पश्चात् अपने कण्ठ में धारण करता है वही उत्तम भागवत है । जो व्यक्ति तुलसी माला भगवान् को समर्पित नहीं करता है । एवं स्वयं पहन लेता है । वह अविवेकी है एवं निश्चित रूपसे नरक गामी है । ग.पु. । अतः तुलसी काष्ठ विरचित माला का धारण श्रीवैष्णवों के द्वारा अवश्य ही किया जाना चाहिये । वह श्रीवैष्णव विधान पूर्वक तुलसी की कण्ठी पहनने से ही भगवान् को प्राप्त करता है । एवं पुण्यवान् होता है। उस तुलसी माला का किसी भी परिस्थिति में परित्याग नहीं किया जाना चाहिये । यह स्कन्द पुराण में कहा गया है, जैसे कि-श्रीवैष्णवों के द्वारा कण्ठ में तुलसीमाला यज्ञोपवीत के समान नियमित रूपसे पहना जाना चाहिये तुलसी माला धारण से व्यक्ति की या माला की कभी भी अपवित्रता नहीं होती है क्योंकि तुलसी ब्रह्म स्वरूपिणी कही गयी है ।

तुलसीकाष्ठमालाधारणं श्रीवैष्णवैः अवश्यमेव विधेयम् । स तुलसीधारणमात्रेण भगवन्तं प्राप्नोति पुण्यवांश्च भवति । तस्याः मालिकायाः कदापि त्यागो न विधेया । तदुक्तं स्कन्दपुराणे-

"यज्ञोपवीतवद्धार्या कण्ठे तुलसीमालिका ।
नाऽशौचं धारणे तस्या यतः सा ब्रह्मरूपिणी ॥"

तुलसीमालिका धारणकाले गुरुः वक्ष्यमाणं मन्त्रं पठन् शिष्यस्य कण्ठे सूक्ष्मां द्वियष्टिकां श्लक्ष्णां रमणीयां मालिकां धारयेत् ।

"यथा त्वं वल्लभा विष्णोर्नित्या विष्णुजनप्रिया ।
तथैनं कुरु कल्याणि ! शिष्यं विष्णुजनप्रियम् ॥"

ततः शिष्यमुखेन मन्त्रमिमं पाठयेत्-

"तुलसीकाष्ठसम्भूते ! माले विष्णुजनप्रिये ।
विभर्मित्वामहं कण्ठे कुरु मां रामवल्लभम् ॥"

तापपुण्ड्रनाममालासंस्कारसम्पादनानन्तरं गुरुः मन्त्रोपदेशं कुर्यात् अन्यथा गुरुः नरकगामि भवति । इति सम्प्रदायसिद्धान्तः तस्मात् दृढतापूर्वकं चतुरः संस्कारान् विधाय एव मन्त्रोपदेशो विधेयः । तेन गुरोः शिष्यस्य च मर्यादासंरक्षणं भवति ॥११॥

तुलसी माला पहनने के समय में गुरु आगे पढा जानेवाला मन्त्र को पढते हुए शिष्य के क़ण्ठ में पतली दोलर वाली चिकनी और सुन्दर माला को पहनावें । हे तुलसी माला ! जिस तरह आप भगवान् श्रीरामजी के नित्य प्रिय हैं तथा भागवतों के प्रिय हैं । उसी प्रकार इस मेरे शिष्य को हे कल्याणी ! भागवतों का प्रिय बनाओं । तत्पश्चात् शिष्य के मुख से आचार्य इस मन्त्र को पढावें तुलसी के काष्ठ से उत्पन्न भागवतों के प्रिय हे तुलसी माला ! आपको मैं कण्ठ में धारण करता हूँ । मुझे भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का प्रिय बनावें । ताप, पुण्ड्र, नाम, माला इन चार संस्कारों को सम्पन्न करलेने के पश्चात् ही गुरु मन्त्र का उपदेश करें । इसके विपरीत आचरण करने पर गुरु नरक गामी होता है, ऐसा सम्प्रदाय का सिद्धान्त है । इसिलिये दृढता पूर्वक चारों संस्कारों को सम्पन्न करके ही मन्त्रोपदेश किया जाना चाहिये । इससे गुरु एवं शिष्य दोनों की मर्यादा का परिपालन होता है ॥११॥

मन्त्रसंस्कारविधिः

राज्यं दद्याद्धनं दद्यात् प्राणान् दद्यात् कदापि वा ।
न दद्यात् भक्तिहीनाय मन्त्रराजं षडक्षरम् ॥ सदाशिव संहिता ।
श्रीराम तारकं मन्त्रं कर्णे च श्रावयेद् गुरुः । सनत्कुमार संहिता ।

इत्यनुरुध्यनारदपञ्चरात्रोक्तदिशा पूर्वाभिमुखोपविष्टस्य शिष्यस्योत्तराभिमुखोपविष्टो गुरुः शुभे दक्षिणे कर्णे त्रिवारं षडक्षरं ब्रह्मतारकं श्रीराममहामन्त्रं श्रावयेत् । तं च सावधानमनाः शिष्यः दृढतया सम्यक् स्मरेत् । अगस्त्य संहितायान्तु अष्टोत्तरशताधारमुच्चारणमुक्तम् । तद्यथा-

मन्त्र संस्कार विधान

भले ही राज्य दे दें, धन दे दें, अथवा कदाचित् प्राण भी दे दें, लेकिन मर्यादापुरुषोत्तम निखिल ब्रह्माण्ड नायक भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के प्रति श्रद्धा भक्ति विहीन पुरुष को ब्रह्म तारक षडक्षर श्रीराममहामन्त्र का उपदेश प्रदान नहीं करें। इसका अभिप्राय यह है कि पात्रापात्र का अच्छी तरह विचार करने के पश्चात् ही पञ्चसंस्कार प्रदान विधि प्रारम्भ करें। ऐसा सदाशिव संहिता में कहा गया है। सनत् कुमार संहिता में भी कहा गया है कि-गुरु अपने शिष्य के कान में ब्रह्मतारक श्रीराममहामन्त्र का उपदेश करें। अर्थात् मन्त्र की पूर्ण गोपनीयता बनी रहनी चाहिये, अन्यथा गोपनीयता नष्ट हो जाने से मन्त्र का महत्व एवं शीघ्र फलदायित्व के विषय में सन्देह उपस्थिति सम्भावना बन जायगी। क्योंकि अपात्र भी मन्त्र को सुनकर मजाक उडायेगा। इन विषयों का विचारकर नारद पञ्चरात्र के कथनानुसार पूर्वदिशा की ओर मुख करके वैठा हुआ शिष्य के उत्तर दिशा की ओर मुख करके वैठे हुए आचार्य कल्याणकारी मङ्गलमय दाहिना कान में तीन वार ब्रह्मतारक षडक्षर श्रीराममहामन्त्र का उपदेश करें। और उसको सावधानचित्त होकर शिष्य को पक्का अभ्यास हो जाये ऐसे सम्यक् प्रकार से याद रक्खे। अगस्त्य संहिता में तो एक सौ आठ वार उच्चारण करने का विधान कहा गया है। वह जैसे कि-हे मुनिवर ! इसके वाद गुरु संस्कार सम्पन्न शिष्य के माथा पर अपना दाहिना हाथ रखकर एक सौ आठ वार मन्त्र को धीरे धीरे बोले एवं हाथ में जल रखकर सङ्कल्प पूर्वक प्रसन्नचित्त होकर अपने शिष्य के लिये प्रदान करें। गुरु स्वभावतः ज्योतिर्मयी विद्या को शिष्याभिमुख जा रही हो ऐसी भावना करें। एव

"ततस्तच्छिरसि स्वस्य हस्तं दत्वाशतं जपेत् ।
अष्टोत्तरं ततो मन्त्रं दद्यादुदकपूर्वकम् ॥
प्रसन्नवदनस्तस्मै शिष्याय मुनिपुङ्गव ।
स्वतो ज्योतिर्मयीं विद्यां गच्छन्तीं भावयेद् गुरुः ।
आगतां भावयेच्छिष्योधन्योऽस्मीति विशेषतः ।
कृतकृत्यस्ततः शिष्यस्तस्मै सर्वं निवेदयेत् ।
यच्च यावच्च यद् भक्त्या गुरवे हृष्टचेतनः ॥ अगस्त्यसंहिता ॥
उपासकस्तु श्रद्धात्मा गुरुं यत्नेन तोषयेत् ।
स्वचित्त वित्तकायैश्च भक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥
यथा ददाति सन्तुष्टः प्रसन्नो वरदं भुवम् ।
स्वयमेव तथा चैवमिति कर्तव्यताक्रमः ॥
पूर्वं दद्याद् गुरुस्तस्मै मूलमन्त्रं षडक्षरम् ।
ततश्च चरमं दद्यादुपदेशक्रमात्सदा ॥"

शिष्य ज्योतिर्मयी विद्या अपनी ओर आ रही है, मेरा अहो भाग्य है, मैं विशेष रूपसे धन्य हूँ इस तरह की भावना करें, तत्पश्चात् कृतकृत्य होकर अपने गुरु को सवकुछ समर्पण करदें। प्रसन्नचित्त होकर जो हो जितना हो जैसी श्रद्धा भक्ति हो निवेदन करें।

श्रद्धा सम्पन्न उपासक तो प्रयास पूर्वक अपने गुरु को सन्तुष्ट करें। प्रसन्न गुरु जिसतरह सन्तुष्ट होकर समस्त अभीष्ट पूर्ण करनेवाला मन्त्र प्रदान करते हैं, तदनुसार अपने मन धन काया से श्रद्धा भक्ति पूर्ण होकर स्वयं ही गुरु को प्रदान करें। यह परस्पर कर्तव्यता का क्रम है। आचार्य अपने शिष्य को मूलमन्त्र प्रदान करे। तत्पश्चात् द्वयमन्त्र एवं शरणागति मन्त्र प्रदान करें। क्रम का ध्यान रखकर मन्त्रोपदेश करना चाहिये। पद्मपुराण के वचनानुसार मूलमन्त्र प्रदान करने के पश्चात् द्वय मन्त्र का उपदेश एवं तत्पश्चात् चरम मन्त्र अर्थात् शरणागति मन्त्र का उपदेश करना चाहिये। तत्पश्चात् मन्त्र का अभिप्राय भी शिष्य को समझावें। केवल मन्त्रोपदेश मात्र से ही कोई गुरु वास्तविक गुरु नहीं बन जाते हैं। अथवा मन्त्रार्थ का वाचन करने मात्र से भी वस्तुतः गुरु नहीं ब्रनते हैं। लेकिन उस मन्त्र का रहस्यभूत तात्पर्य का बोध कराने के वाद ही गुरु वास्तविक गुरु सच्चा गुरु कहलाते हैं। इन मन्त्रों का उपदेश करने के पश्चात्

पद्मपुराणोक्तवचनमनुसृत्य तु मूलमन्त्रप्रदानानन्तरं द्वयमन्त्रस्योपदेशो विधेयः । ततः चरममन्त्रस्योपदेशोविधेयः । मन्त्राभिप्रायं च शिष्यं बोधयेत् । केवलं मन्त्रोपदेशमात्रेण मन्त्रार्थवाचनेन वा गुरुर्न भवति । किन्तु मन्त्रतत्व बोधनेनैव गुरुः भवति । तत्पश्चात् श्रीरामगायत्री, श्रीलक्ष्मण भरतशत्रुघ्न हनुमतां मन्त्राः उपदेष्टव्याः । श्रीराममन्त्रेण सह श्रीसीतामन्त्रस्यापि उपदेशो विधेयः । श्रीराममन्त्रेण दीक्षितः शिष्यः मन्त्रान्तरान् परित्यजेत् अन्यथा नरक गामी भवति । तदुक्तं नारदपञ्चरात्रे पुष्करसंहितायां च तौ क्रमेण कथ्येते-

"लब्ध्वा षडक्षरं मन्त्रं रामस्य परमात्मनः ।
मन्त्रान्तरान्प्रयत्नेन वर्जयेन्मन्त्रतत्त्ववित् ॥"

"गृहीत्वा वैष्णवात्सम्यङ् मन्त्रराजं षडक्षरम् ।
अन्यमन्त्रं जिघृक्षेच्चेद्रौरवं नरकं व्रजेत् ॥"

आचार्य श्रीराम गायत्री, श्रीलक्ष्मण श्रीभरत श्रीशत्रुघ्न और श्रीहनुमन् मन्त्रो का उपदेश करें । श्रीराम मन्त्र के साथ साथ श्रीसीता मन्त्र का भी उपदेश करना चाहिये । श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णव सम्प्रदाय में श्रीरामाभिन्न श्रीसीताजी एवं श्रीसीताजी से अभिन्न सर्वेश्वर श्रीरामजी को अभीष्टतया स्वीकार किया गया है । अतः श्रीसीता मन्त्र के विना श्रीराम मन्त्र अपूर्ण माना गया है । दूसरी वात यह है कि जो शिष्य एक वार श्रीराममहामन्त्र से दीक्षित हो चुका है, वह अन्य देवता के मन्त्र का परित्याग करे अन्यथा नरक गामी होता है । यह विषय नारदपञ्चरात्र एवं पुष्कर संहिता में कहा गया है । उनका क्रमशः उल्लेख किया जाता है ।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी परमात्मा के ब्रह्मतारक षडक्षर मन्त्र को उपलब्ध कर अन्य मन्त्रों का पूर्ण प्रयास पूर्वक परित्याग करना चाहिये यह मन्त्र तत्त्व ज्ञानी को ध्यान रखना चाहिये । षडक्षर मन्त्रराज को श्रीवैष्णव गुरु से सम्यक् प्रकार धारणकर जो अन्य मन्त्र ग्रहण करने की इच्छा करता है तो वह रौरव नरक में जाता है । पूर्व में संहिता एवं पुराण के वचनों में मन्त्रोपदेश के विषय में तीन वार और एक सौ आठ वार कहा गया है । वह मन्त्रोच्चारण से शिष्य को विशुद्ध अभ्यास हो सके इसमें तात्पर्य है । इसलिये शिष्य के जिस तरह सुदृढ अभ्यास हो उतनी मात्रा पर्यन्त मन्त्र का उपदेश करें । और पञ्चसंस्कार से सुसम्पन्न शिष्य सर्वस्व दक्षिणा से गुरु को

मन्त्रोपदेशे वारत्रयस्य अष्टोत्तरशतवारस्य च उच्चारणस्य मन्त्रस्य विशुद्धाभ्यासे तात्पर्यम् तेन शिष्यस्य यथा सुदृढः अभ्यासः स्यात् तावत् पर्यन्तं मन्त्रोपदेशं कुर्यात् एवं पञ्चसंस्कारैः सुसम्पन्नः शिष्यः सर्वस्व दक्षिणया गुरुं संतोष्य प्रार्थयेत् भगवन्तं श्रीरामचन्द्रम् ।

"तवास्मि जानकीकान्त ? कर्मणा मनसा गिरा ।
रमाकान्त ? तवैवास्मि युवामेव गतिर्मम ॥
मत् समोनास्ति पापात्मा त्वत्समोनास्ति पापहा ।
इति सञ्चिन्त्यदेवेश ? रक्ष मां शरणागतम् ॥
अनायासेन मरणं विना दैन्येन जीवनम् ।
देहि मे कृपया राम ? त्वयि भक्तिमचञ्चलाम् ॥

एवं दीक्षासम्पन्नः श्रीवैष्णवः स्वसामर्थ्यमनुसरन् यथाशक्तिप्रतिदिनं सम्प्रदायानुसारं मन्त्रान् जपेत् ।

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्यकृतौ
श्रीवैष्णवसंन्यासमीमांसायां पञ्चसंस्काराः सम्पन्नाः ॥१२॥

सन्तुष्टकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की प्रार्थना करे । हे जानकी कान्त ? भगवान् श्रीराम ? कर्म मन एवं वचन से आपका शरणागत हो जाऊँ हे रमाकान्त ? आप दोनों सर्वेश्वर श्रीसीतारामजी ही मुझ शरणागत की परमगति हैं । मुझ जैसा पापाचरणकारी कोई दूसरा नहीं है । एवं आप दोनों जैसा पाप से उद्धार करनेवाला अन्य नहीं है। हे देवेश इन वातों का सम्यक् प्रकार से विचार कर मुझ शरणागत की रक्षा कीजिये । विना किसी कष्ट की मृत्यु हो एवं दीनता से रहित जीवन हो । हे भगवान् श्रीरामजी और मुझे कृपा पूर्वक आपके प्रति सुस्थिर भक्ति प्रदान करें ।

पूर्वोक्त प्रकार से दीक्षा सम्पन्न श्रीवैष्णव अपने सामर्थ्य का अनुशरण करते हुये यथाशक्ति प्रतिदिन अपनी गुरु परम्परा के अनुसार मन्त्रों का जप करें ।

इसप्रकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वारानन्दाचार्यजी की कृति श्रीवैष्णव संन्यासमीमांसा में पञ्चसंस्कार विधि सम्पन्न हुआ ॥१२॥

☫ त्रिदण्डनिर्माणविधिः-धारणविधिश्च ☫

प्रयागजातं द्विजवंशरत्नं त्रिदण्डिमुख्यं लसदूर्ध्वपुण्ड्रम् ।
यतीश्वरं राघवशिष्यमुख्यं रामं मुनिं नित्यमहं नमामि ॥

मेखलाजिनदण्डाद्यैर्ब्रह्मचारीति लक्ष्यते ।
गृहस्थो यष्टिवेदाद्यैर्नखरोमाद् वनाश्रमी ॥

त्रिदण्डेन यतिश्चेति लक्षणानि पृथक् पृथक् ॥ इति दक्षः । अङ्गिरास्मृतौ तु-

यतेलिङ्गं प्रवक्ष्यामि येनासौ लक्ष्यते यतिः ।
ब्रह्मसूत्रं त्रिदण्डं च वस्त्रं जन्तु निवारणम् ॥
शिक्यं पात्रं बृशी चैव कौपीनं कटिवस्त्रकम् ।
यस्यैतद् विद्यते लिङ्गं स यतिर्नेतरो यतिः ॥ लिखितेतु-

☫ त्रिदण्ड निर्माण विधि एवं धारण विधि ☫

ब्राह्मण कुलभूषण प्रयाग क्षेत्र में जन्म धारण करनेवाले त्रिदण्डधारी संन्यासियों में प्रधान जिनका ऊर्ध्वपुण्ड्र देदीप्यमान था यतिराज श्रीमान् राघवानन्दाचार्यजी के प्रमुख शिष्य भगवान् श्रीरामजी का धर्म संरक्षण हेतु धारित अवतार आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराज को मैं प्रतिदिन प्रणाम करता हूं ।

मेखला मृगचर्म तथा दण्ड आदि लक्षणों से यह ब्रह्मचारी है यह परिलक्षित होता है । दण्ड एवं वेदशास्त्र आदि धारण करने से यह गृहस्थ है ऐसा बोध होता है । नख, केश आदि से वानप्रस्थाश्रयी है यह परिलक्षित होता है तथा त्रिदण्ड धारण करने से श्रीवैष्णव संन्यासी है, इसप्रकार भिन्न-भिन्न लक्षणों से अलग-अलग आश्रमों का परिज्ञान होता है । यह दक्षस्मृति का वचन है । अङ्गिरा स्मृति में तो कहा है कि संन्यासी का चिह्न विस्तृत रूपसे कहुंगा । जिससे यह संन्यासी लक्षित होता है । यज्ञोपवीत और त्रिदण्ड जन्तुओं से रक्षा हेतु वस्त्र झोली एवं वृषि कौपीन तथा कटिवस्त्र ये सभी चिह्न जिसमें हैं वह श्रीवैष्णव संन्यासी है, अन्य संन्यासी नहीं है। लिखित स्मृति में तो संन्यासी कषाय रंग से रंगा हुआ, कपास का बना हुआ वस्त्र और कंथा (विशेष प्रकार का वस्त्र) को धारण करें अथवा वल्कल, मृग-चर्म, रेशमी वस्त्र या सण से बना हुआ वस्त्र शिक्य आवरण के सहित पात्र जो तीन प्रकार से ढका हुआ हो । बंधा हुआ पवित्र जल, त्रिदण्ड, गोलाकार आसन, शिखा यज्ञोपवीत

काषायमेव कार्पासं वासः कन्थां च धारयेत् ।
वल्कलं वाऽजिनं वापि कौशं शणमयं तु वा ॥
शिक्यं सकवचं पात्रं त्रिविष्टब्धेन संयुतम् ।
बद्धं जलपवित्रेण त्रिदण्डं वर्तुलासनम् ॥
शिखां यज्ञोपवीतं च शौचार्थमपि कुण्डिकाम् ।
सर्वदा धारयेद् गच्छन्नासीनो वापि वा शुचिः। विष्णुस्मृतौच-
उपवीतं त्रिदण्डं च पात्रं जलपवित्रकम् ।
कौपीनं कटिवस्त्रं च न त्याज्यं यावदायुषम् ॥

एवमादिभिर्धर्मशास्त्रवचोभिः संन्यासिभिः त्रिदण्डादीनां धारणं परमावश्यकम् । यतिधर्मत्वात् प्रथमं यज्ञोपवीतलक्षणमभिधाय, त्रिदण्ड लक्षणमभिधीयते । विषयेऽस्मिन् दत्तात्रेयात्री आहतुः ।

तन्तुत्रयमधोवृत्तं पुनश्चोर्ध्वं त्रिवृत्तवत् ।
कार्पासं तान्तवं कार्यं तथैकं चोत्तरीयकम् ॥

तथा शौच के लिये पुण्डि को सदैव धारण करे। कहीं आवागमन करता हुआ अथवा पीठ–मठ–आश्रम में स्थित किसी भी स्थिति में हो पवित्र रहकर इन साधनों को धारण करें। और विष्णुस्मृति में कहा है यज्ञोपवीत त्रिदण्ड और जल से पवित्र पात्र कौपीन और कटिवस्त्र को जब तक जीवन रहे तब तक कभी भी त्यागना नहीं चाहिये। इत्यादि धर्मशास्त्रीय वचनों से यह सिद्ध होता है कि संन्यासियों के द्वारा त्रिदण्ड आदि का धारण किया जाना परम आवश्यक है। संन्यासियों का धार्मिक कर्तव्य होने के कारण पहले यज्ञोपवीत का लक्षण कहकर त्रिदण्ड लक्षण कहा जाता है। इस विषय में दत्तात्रेय एवं अत्रि कहते हैं कि यज्ञोपवीत निर्माण में नीचे की ओर बँटा हुआ तीन सूत्र हो पुनः त्रिसूत्रि को तीनवार मोडकर ऊपर की ओर बँटा हुआ हो। इस तरह कपास निर्मित सूत का यज्ञोपवीत बनाया जाना चाहिये तथा एक उत्तरीय हो अधोवर्तित तीन सूत्रों से तिवाडा ऊपर की ओर बँटा हुआ कपास सूत से बना हुआ, नौ तन्तुओं वाला बाह्य ब्रह्मसूत्र कहा जाता है। नौ सूत्रों का संग्रह ब्राह्मणों के लिये मोक्षका साधन है। विना यज्ञोपवीत से तत्काल सभी धर्मों से बहिष्कृत हो जाता है।

इन धर्मशास्त्रों में दण्डलक्षण के प्रसंग में महर्षि कपिल के द्वारा कहा गया

अधोवृत्तैस्त्रिभिस्सूत्रैः त्रिभिरुर्ध्वं त्रिवृत्कृतम् ।
ब्रह्मसूत्रं स्मृतं ब्राह्मं कार्पासं नवतान्तवम् ॥
संग्रहो नवसूत्रस्य द्विजानां मुक्तिसाधनम् ।
विना तेन भवेत् सद्यः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥

तत्र दण्डलक्षणप्रकरणे कपिलेनोक्तम्-

अङ्गुलिप्रमाणमृजुमूर्ध्वायतं वैणवं दण्डं दण्डान् वा धारयेत् आत्मसम्मितं वा । अङ्कुरा यत्र दृश्यन्ते शुभाः पत्रविनिः सृताः । तत्र पर्वं विजानीयात् शेषं मध्यमिहोच्यते ॥ त्रिपञ्चसप्तनवकं पर्वचैकादशं तथा ॥ वर्जितो दण्ड इत्याहुर्यतेः सर्वत्र तस्य च । दत्तात्रेयस्तु-त्रिदण्डानङ्गुलिस्थूलान् वैणवानूर्ध्वसम्मितान् । सत्वचानव्रणान् सौम्यान् समसन्नतपर्वकान् । षडष्टदशपर्वाणो योनिहीनांश्च निर्व्रणान् ॥ दक्षस्तु-केशमात्रान् समग्रन्थीन् त्रिदण्डान् वैणवान् यतिः धारयेत् । इति आह । हारीतमते तु त्रिदण्डं पञ्चधाविभज्य तस्य त्रिभागादूर्ध्वं कृष्णगोबालरज्वा चतुरङ्गुलं वेष्टयेत् । ग्रन्थिधारात्रयेण सम्पन्नं जलेन पवित्रं विधाय गुरुणा प्रदत्तं त्रिदण्डं दक्षिण

है कि अंगुली प्रमाण से मोटाई वाला, ऊपर की ओर विस्तृत बाँस का बना हुआ दण्ड अथवा दण्डों को धारण करें । जो दण्डधारण करनेवाला व्यक्ति की लम्बाई से सन्तुलित हो जिस बाँस में अंकुर दिखाई देता है तथा मङ्गलकारी पत्र विशेष रूपसे निकला हुआ है उसे दण्ड में पर्व (गाँठ) समझना चाहिये । शेषभाग को इस शास्त्र में मध्यभाग कहा जाता है । तीन, पाँच, सात, नौ तथा ग्यारह पर्व वाला दण्ड निषिद्ध है ऐसा कहा गया है जो उस संन्यासी के लिये सर्वत्र वर्जित है ।

दत्तात्रेय के सिद्धान्त में तो कहा गया है कि अंगुली के बराबर मोटाई वाला बाँस से बना हुआ अपनी ऊँचाई से मापा गया छिलका के सहित छिद्र आदि दोष से रहित समान एवं झुका हुआ गाँठ वाला छः, आठ अथवा दश गाँठ वाला व्रण से रहित अच्छी जाति का दण्ड को धारण करे । दक्षस्मृतिकार तो कहते हैं कि दण्डधारक के शरीर के केश पर्यन्त लम्बाई वाला सम संख्या की गाँठ से युक्त बाँस से बना हुआ तीन दण्डों को संन्यासी धारण करें । हारीतस्मृति के सिद्धान्त में तो कहा गया है कि त्रिदण्ड की लम्बाई को पाँच भागों में विभाजित कर उसके तीन हिस्सा से

हस्तेन धारयेत् । वृद्धदक्षमतेन त्रिदण्डस्य मूले मध्ये अन्ते च सूत्रेणैव वेष्टयेत् संन्यासी त्रिदण्डं पञ्चधाविभक्तं पुनः विधाय, तस्याग्रभागे ब्रह्माणं, द्वितीयेपुरुषात्मानं तृतीयेविश्वात्मानं चतुर्थे निवृत्तिपुरुषं पञ्चमे च भागे सर्वात्मानं ध्यायेत् । समग्रं त्रिदण्डं सर्वेश्वरं श्रीरामरूपं विचिन्तयेत् तदुक्तं हारीतेन-विष्णुरूपं त्रिदण्डाख्यं सर्वथा धारयेद् यतिः । तं च स्वयमेव धारयेत् तदुक्तम्-ब्रह्मसूत्रं त्रिदण्डञ्च शिववद् बिभृयात् स्वयम् । बाह्येदितरेणाथ प्रायश्चित्तीभवेद् यतिः । पुरुषसूक्तेन विष्णुसूक्तेन वा अभिषेचयेत् । आव श्यके नित्यकर्मसम्पादनकाले उपदण्डेन बन्धयेत् । पूर्ववचने दण्डं दण्डान् वा धारयेदित्युक्तम् । किन्तु एकदण्डापेक्षया त्रिदण्डधारणमेव परमश्रेयस्करं सम्प्रदायाभिमतञ्च । विषयेऽस्मिन् भगवान् व्यास आह-

ऊपर कृष्णगोबाल की डोरी से चार अंगुल पर्यन्त लपेट दें । गाँठ की तीन धाराओं से युक्तकर जल द्वारा पवित्र करके आचार्य द्वारा दिया गया त्रिदण्ड को दाहिना हाथ से धारण करें । वृद्ध दक्षस्मृति के सिद्धान्तानुसार तो त्रिदण्ड के मूलभाग, मध्यभाग, तथा अन्तभाग में सूत के द्वारा ही परिवेष्टन करे । पाँच भागों में त्रिदण्ड को संन्यासी व्यक्ति विभाजित करके पुनः उस त्रिदण्ड के अग्रभाग में ब्रह्मा को द्वितीय भाग में पुरुषात्मा को, तृतीय भाग में विश्वात्मा को चतुर्थ भाग में निवृत्ति पुरुष को और पाँचवाँ भाग में सर्वात्मा को चिन्तन करे । अर्थात् पाँच भागों में क्रमशः इन देवताओं का ध्यान करे । तथा समग्र त्रिदण्ड को सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के रूपमें विशेष रूपसे चिन्तन करे । यही बात हारीतस्मृतिकार के द्वारा कही गयी है । त्रिदण्ड नामसे प्रसिद्ध विष्णु स्वरूप को सर्वतोभावेन विरक्त संन्यासी हर प्रकार से हर परिस्थिति में धारण करे । और उस त्रिदण्ड को स्वयं ही धारण करे यही वात प्रामाणिक विद्वानों द्वारा कही गयी है । यज्ञोपवीत, एवं त्रिदण्ड शिखा के समान संन्यासी धारण करे । यदि संन्यासी दूसरे के द्वारा बहन करावें तो संन्यासी प्रायश्चित्ती होता है ।

पुरुषसूक्त के द्वारा अथवा विष्णु सूक्त के द्वारा अर्थात् इन सूक्तों में से किसी एक सूक्त को पढकर त्रिदण्ड का अभिषेक करे । आवश्यक स्नान भोजन आदि नित्यकर्म सम्पादन करने के समय में त्रिदण्ड को उपदण्ड के द्वारा बाँध दे । पूर्व निर्दिष्ट आचार्यों के वचन में कहा गया है कि दण्ड अथवा दण्डों को धारण करे ।

त्रिदण्डधारणं शस्तं तथैकान्तनिषेवणम् ।
लब्ध्वाहारमनायासो यतीनां मुक्तिसाधनम् ॥

कथञ्चित् प्रमादवशात् दण्डेषु नष्टेषु यावद्दण्डानामुपलब्धिर्नभवति तावत् पालाशमेकदण्डं कुशस्तम्बं वा धारयित्वा यतिः विचरेत् । पुनः लब्धे दण्डत्रये यथापूर्वं संस्कृत्य त्रिदण्डं धारयेत् ॥१३॥

ψ श्रीबोधायनस्मृतिमनुसृत्य त्रिदण्डविषयकः सिद्धान्तः प्रस्तूयते ψ

त्रीन्दण्डानङ्गुलिस्थूलान् वैणवान् मूर्धसम्मितान् ।
एकादशनवद्वित्रिचतुः सप्तान्यपर्वकान् ॥
वेष्टितान् कृष्णगोवालरज्वातु चतुरङ्गुलान् ।
गोवालरहितं चान्यद्धारयेदुपदण्डकम् ॥ हारीतस्तु-

किन्तु एक दण्ड की अपेक्षा त्रिदण्ड धारण करना ही परम कल्याणकारी है तथा सम्प्रदाय परम्परा से सम्मत है । एक दण्ड धारण करें या त्रिदण्ड धारण करें इस विषय में भगवान् कृष्णद्वैपायन वेदव्यासजी कहते हैं कि त्रिदण्ड का धारण करना अतिशय प्रशंसनीय है एवं एकान्त स्थान का पूर्ण रूप से सेवन करना हल्का भोजन करना, अधिक शारीरिक श्रम न करना यह सव संन्यासियों के लिये मुक्ति प्राप्त करने का साधन है यदि कथञ्चित् अनवधानता आदि के कारण त्रिदण्डों के नष्ट हो जाने पर तो जब तक त्रिदण्ड की उपलब्धि नहीं हो जाती है अर्थात् संस्कार पूर्वक तीनों दण्ड प्राप्त नहीं करलेते हैं तवतक पलाश का बना हुआ एक दण्ड को अथवा दर्भमुष्टि को धारण करके संन्यासी विचरण करे । पुनः तीनों दण्ड को उपलब्ध करलेने के पश्चात् पूर्व दण्ड धारण के अनुरूप संस्कार करके त्रिदण्ड को धारण करे ॥१३॥

बोधायन स्मृति का अनुसरण कर त्रिदण्ड धारण विषयक सिद्धान्त प्रकृत में प्रस्तुत करते हैं-

अंगुली की मोटाई के समान मोटाई वाला बाँस का बना हुआ, मस्तक पर्यन्त मापा ऊँचाई वाला तीन दण्ड रखें । जिनमें ग्यारह, नौ, दो तीन चार और सात गाँठ नहीं हों, अर्थात् इन से भिन्न ग्रन्थिवाले हों । और काली गाय के बालों की डोरी से चार अङ्गुल पर्यन्त वेष्टन हो तथा उन तीन दण्डों के साथ गोवाल के वेष्टन से रहित दूसरा एक उपदण्ड नामक दण्ड को भी धारण करे । और हारीतस्मृति में कहा गया

त्रिदण्डं वैणवं सम्यक् सन्ततं समपर्वकम् ।
वेष्टितं कृष्णगोवालरज्जुमच्चतुरङ्गुलम् ॥

भविष्यपुराणे च निरूपितं यथा-

दण्डं तु वैणवं रम्यं सत्वचं समपर्वकम् ।
पुण्यस्थाने समुत्पन्नं नानाकल्माषशोभितम् ॥
अदग्धमहतं कीटैः पर्वग्रन्थिविराजितम् ।
स्वयं भूतं तु मेदिन्यां शाखावर्जमृजुं शुभम् ॥
नाशादघ्नं शिखातुल्यं भ्रुवोर्वाविभृयाद् यतिः ॥

अत्रिस्मृतौ च त्रिदण्डनिर्माणविषयेन्यरूपयत्-

धारयेद् वैणवं दण्डं न स्थूलं न कृशं तथा ।
तस्य चाग्रे च मूले च ग्रन्थीं त्यक्त्वा तु धारयेत् ॥
द्विचत्वारिषडष्टौ वा ह्याङ्गुलानि समाहितः ।
न न्यूनं नातिरिक्तञ्च द्विगुणं मूलतोऽग्रके ॥

है कि चार अङ्गुल के भाग को काली गाय के बालों की रस्सी से परिवेष्टन किया गया हो जिसमें समसंख्यक गाँठ वाला बाँस का बना हुआ दण्ड हो उसे धारण करें। तथा भविष्यपुराण में भी दण्ड के विषय में प्रतिपादन किया गया है वह जैसे कि सुन्दर त्वचा वाला समसंख्यक पोर (ग्रन्थि) वाला बाँस का बना हुआ दण्ड होता है जो पुण्यजनक पवित्र स्थान में उत्पन्न हो तथा जिसे कीट आदि कोई जन्तु दूषित नहीं किया हो जलने आदि से जो दूषित नहीं हो समसंख्यक गाँठ से सुशोभित हो तथा जमीन पर स्वयं ही उत्पन्न हुआ हो शाखाओं से रहित सीधा नाक पर्यन्त लम्बाई वाला अथवा शिखा या भ्रुव पर्यन्त लम्बाई वाला दण्ड को श्रीवैष्णव संन्यासी धारण करें। और अत्रिस्मृति में त्रिदण्ड निर्माण के विषय में निरूपण किया गया है कि जिस दण्ड का मूलभाग से अग्रभाग (अन्तिम छोर) की गाँठ का भाग दुगुणा हो न्यून अथवा अधिक ग्रन्थि वाला नहीं हो दो, चार, आठ, छः अङ्गुल का अन्तर हो आदि तथा अन्त में गाँठ नहीं हो अधिक मोटा या अधिक पतला न हो ऐसा बाँस के बना हुआ दण्डको श्रीवैष्णव संन्यासी धारण करें कनिष्ठिका अङ्गुली के समान मोटाई उत्तम है तर्जनी के सदृश मध्यम है तथा अङ्गुष्ठ के सदृश अधम है। इसप्रकार परम पवित्र

इत्थं परमपवित्रस्थानसमुद्भूतान् दोषरहितान् त्रीन्वेणुदण्डान् अनाय्य केशान्तं, भ्रुवोः पर्यन्तं, नाशापर्यन्तं वा प्रत्येकदण्डं विनिर्माय, त्वचः क्षतिर्यथानस्यात् तथा सुसंस्कृत्य, गङ्गाजलेन तीर्थान्तरजलेन वा प्रक्षालयित्वा, अलावुवेणुकाष्ठादिविरचितान् पात्रांश्चकारयित्वा तांश्च स्वसम्प्रदायपरम्परा मनुसृत्य संन्यासाश्रमोचितानि साधनानि संकल्पय्य, दण्डकमण्डलुभिक्षापात्र शिक्यादीनि पवित्रस्थाने संस्थाप्य । स्वगुरुपरम्परानुसारेण क्षौरादिकं कर्मसमाप्य, सम्पादितनित्यकृत्यः परमविरक्तः मुमुक्षुः आत्मशुद्धिकामः एकं तप्तकृच्छ्रव्रतं कृत्वा, अनाश्रमीचतुरः प्राजापत्यं कृच्छ्रं परिसमाप्य-स्वसम्प्रदायानुरोधेनान्यद् व्रतं वा सम्पादयित्वा दण्डादि धारणात्पूर्वमधिकार सिद्धये, दैवादिकान् अष्टौ श्राद्धानि सम्पादयेत् । तप्तकृच्छ्रप्रजापत्ययोः स्वरूपं यथा स्मृतावुक्तम्-

स्थान में स्वयं पैदा हुये दोषों से शून्य तीन बाँस के दण्डों को मँगवाकर केश पर्यन्त, भ्रुव पर्यन्त, या नासिका पर्यन्त लम्बाई वाला प्रत्येक दण्ड को व्यवस्थित रूपसे बनाकर जिससे उसकी त्वचा आदि दूषित न हो । इसप्रकार अच्छी तरह शास्त्रीय विधान के अनुसार सुसंस्कृत कर गङ्गाजल से अथवा अन्य किसी तीर्थ के जल से प्रक्षालित करके अलाबू, बाँस काष्ठ आदि से बने हुये पात्रों को भी बनवाकर और उन सभी को अपनी आचार्य परम्परा के सम्प्रदाय का अनुसरण करके संन्यासाश्रम के उपयुक्त साधनों को संकलित कर दण्ड कमण्डलु भिक्षापात्र शिक्य आदि को पवित्र स्थान पर विधिवत् रखकर अपनी गुरु परम्परानुसार क्षौर आदि कर्मकलाप सम्पन्न कर स्नानादि नित्यकृत्य पूर्ण करके परम विरक्त मुमुक्षु साधक अपने आपको शुद्ध करने की इच्छा से एक तप्त कृच्छ्र व्रत करके अनाश्रमी व्यक्ति तो चार प्रजापत्य कृच्छ्र व्रत परिपूर्णकर अथवा अपने सम्प्रदाय के अनुसार अन्य कोई व्रत सम्पादित करके दण्ड आदि धारण के पहले अधिकार सिद्धि के लिये दैवादि आठ प्रकार के श्राद्धों को सम्पन्न करावें ।

तप्त कृच्छ्र और प्राजापत्य व्रतों का स्वरूप जैसे कि धर्मशास्त्र में बताया गया है वह यह है कि-तीन दिन तक गर्म जल पीवें तत्पश्चात् तीन दिन तक गर्म दूध पीवें एवं तीन दिन तक गर्म घृत पीये तथा तीन दिन तक हवा पीकर रहे ऐसा वारह दिन

त्र्यहमुष्णं पिबेद्वारि त्र्यहमुष्णं पयः पिवेत् ।
त्र्यहमुष्णं पिवेत् सर्पिः वायुभक्षोदिनत्रयम् ॥
पट्पलं तु पिवेदम्भस्त्रिपलं तु पयः पिवेत् ।
पलमेकं पिवेत् सर्पिः तप्तकृच्छ्रं विधीतते ॥
त्र्यहं प्रातः त्र्यहं सायं त्र्यहं भुङ्क्तेत्वयाचितम् ।
त्र्यहं पर च नाश्नीयात् प्राजापत्योविधिः स्मृतः ॥
सायं तु द्वादशग्रासाः प्रातः पञ्चदशस्मृताः ।
अयाचितैश्चतुर्विंशं परैस्त्वनशनं स्मृतम् ॥
कुक्कुटाण्डप्रमाणं स्याद् यावद् वास्यविशेन्मुखे ।
एतद् ग्रासं विजानीयाच्छुध्यर्थं कायशोधनम् ॥

में सम्पन्न होनेवाला तप्तकृच्छ्र व्रत होता है इसतरह पराशरस्मृति में प्रतिपादन किया गया है। जिस दिन जलपान करे उसकी मात्रा छः पल है। दूध पीने की मात्रा तीन पल है एवं घृतपान की मात्रा एक पल है तथा शेष तीन दिन में केवल निर्जल रहना है। तथा प्राजापत्य कच्छ्र में तीन दिन तक प्रातःकाल में भोजन करता है तथा तीन दिन सायं कालमें भोजन करता है एवं तीन दिन तक विना मांगे हुये जो मिलजाये उसे भोजन करता है एवं शेष तीन दिन में कुछ भी भोजन नहीं करता है ऐसा प्राजापत्य व्रत की विधि अत्रिस्मृति में कहा गया है। जिन दिनों में सायंकाल भोजन करेगा उन दिनों में बारह-बारह ग्रास (कर) भोजन होगा। प्रातःकाल के भोजन में पन्द्रह-पन्द्रह ग्रास (कर) भोजन करें। अयाचित भोजन में २४ ग्रास भोजन करें शेष तीन दिनों में कुछ भी भोजन नहीं करें यह बारह दिनों का प्राजापत्य व्रत होता है। ग्रास का प्रमाण कुक्कुट के अण्डा के बरावर होना चाहिये अथवा जितना सरलता पूर्वक मुख में प्रवेश कर सके इसी को ग्रास समझना चाहिये यह व्रत देहको पवित्र करनेवाला व्रत होता है।

प्राजापत्य व्रत के सम्पादन करने में यदि सामर्थ्य का अभाव हो तो उसके बदले गोदान करे। गाय के अभाव में गाय के मूल्य के वरावर द्रव्य दान करें उसके अभाव में बीसमासा सुवर्णदान करे अथवा चालीस मासा सुवर्ण दान करें जैसा कि पराशरस्मृति में इन सवकी समानता बतायी गयी है। अथवा कृच्छ्र व्रत में दश हजार

प्राजापत्यव्रताचरणासामर्थ्ये गां दद्यात् । धेनोरभावे तन्मूल्यं द्रव्यं दद्यात् । तदभावे चत्वारिंशन्माषमितं सुवर्णं दद्यात् । तदभावे विंशतिः माषाणां दद्यात् पराशरस्मृतावेतेषां साम्यदर्शनात् । तद्यथा-

कृच्छ्रोऽयुतं तु गायत्र्या उपवासस्तथैव च ।

धेनुप्रदानं विप्राय सममेतच्चतुष्टयम् ॥

ततोऽष्टौ श्राद्धानि निर्वपेत् ॥१४॥

अष्टश्राद्धविवेकः

अष्टसु श्राद्धेषु दैव, आर्ष, दिव्य, मानुष, भूत, पितृ, मातृ, आत्म, श्राद्धानि शास्त्रेषु प्रथितानि सन्ति । सर्वेषु मन्त्रेषु नान्दीमुख इति विशेषणं प्रयुज्यते । तद्यथा-उक्तम्-

गायत्री जप करे या उपवास करे दोनों समान है प्राजापत्य में गोदान ब्राह्मण के लिये करे। अथवा उसके मूल्य प्रदान करें। ये चारों ही समान कहा गया है तत्पश्चात् आठ प्रकार के दैव आदि श्राद्धों का सम्पादन करें ॥१४॥

आठ प्रकार के श्राद्ध होते हैं। उन आठ श्राद्धों में दैव श्राद्ध, आर्ष श्राद्ध, दिव्यश्राद्ध, मानुष श्राद्ध, भूत श्राद्ध, पितृ श्राद्ध, मातृ श्राद्ध, और आत्म श्राद्ध नामों से शास्त्रों में प्रसिद्ध हैं। सभी मन्त्रों में नान्दीमुख यह विशेषण प्रयोग किया जाता है। वह जैसे कहा गया है कि धर, ध्रुव, सोम, अहः, अनिल, अनल, प्रत्यूष प्रभास ये आठ वसु कहे गये हैं तथा मृगव्याध, सर्प, निगर्हति, अजैकपाद, अहिबुध्न्य, पिनाकी, दहन, ईश्वर, कपाली, स्थाणु, और भग ये ग्यारह रुद्र कहे गये हैं। इसीप्रकार बारह, सूर्य, धाता, मित्र, अर्यमा, शक्र, वरुण, अंश, भग, विवस्वान्, पूषा, सविता, त्वष्टा और वामन हैं ये सभी दैव श्राद्ध में देवता हैं। मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वशिष्ठ, भृगु, नारद, ये सभी ऋषि श्राद्ध के देवता कहे गये हैं। हिरण्य गर्भ और वैराजपति ये दोनों दिव्य श्राद्ध के देवता कहे गये हैं। सनक, सनन्दन, सनातन कपिल, आसुर, बोढु तथा पञ्चशिख ये सात मनुष्य श्राद्ध के देवता कहे गये हैं। पृथ्वी, जल, तेज वायु, आकाश, ये पाँच भूत श्राद्ध के देवता कहे गये हैं। कव्यवाह, अनल, सोम, अर्यमा, अग्निष्वाता, वर्हिषद और सोमपा ये सव पितृ श्राद्ध के देवता कहे गये हैं। लक्ष्मी, पद्मा, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया,

वसधोऽष्टौस्मृतास्तत्र रुद्रा एकादशापि वा ।
तथैव द्वादशादित्या दैव श्राद्धेषु देवताः ॥
मरीच्यत्र्यङ्गिरसो पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
प्रचेताश्च वशिष्ठश्च आर्षे च भृगु नारदौ ॥
दिव्ये हिरण्यगर्भश्च वैराजपतिरेव च ।
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः ॥
कपिलश्चासुरश्चैव वोढः पञ्चशिखस्तथा ।
एते मानूषके श्राद्धे मनुष्याः सप्तदेवताः ॥
पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च ।
एतानि पञ्चभूतानि भूतश्राद्धे तु देवताः ॥
पितृश्राद्धे कव्यवाहनलः सोमौऽर्यमा तथा ।
अग्निष्वाता वर्हिषदः सोमपाश्चैव देवताः ॥
लक्ष्मीपद्मा शचीमेधा सावित्रीविजयाजया ।
देवसेना स्वधा स्वाहा मातृ श्राद्धेषु देवताः ॥
आत्मश्राद्धे देवता तु परमात्मा प्रकीर्तितः ।
एकैकोमन्त्रवित्पिण्डो देयस्तूष्णीमथा परः ॥
सर्वमन्त्रेषु कर्त्तव्यं नान्दीमुखविशेषणम् ।
क्षन्तव्यमिति तान्ब्रूयात्प्रणम्य शिरसा ततः ॥

देवसेना, स्वधा, स्वाहा ये सोलह मातृ श्राद्ध में देवता हैं। आत्मा श्राद्ध में तो परमात्मा देवता कहे गये हैं। इसमें एक-एक पिण्ड मन्त्र ज्ञानी पण्डित मौन रहकर प्रदान कर तथा सभी मन्त्रों में नान्दीमुख यह विशेषण जोडे। तत्पश्चात् क्षमा करे यह कहकर प्रणाम करके श्राद्ध क्रिया को सम्पन्न करें।

तदनुसार मोक्ष की कामना रखनेवाला पुरुष स्नान सन्ध्या आदि नित्यकृत्य को सम्पन्न करके अधोवस्त्र एवं उत्तरीय श्वेत वर्ण का धारण कर पवित्र होकर ॐ रामायनमः ॐरामचन्द्राय नमः, ॐरामभद्राय नमः इन मन्त्रओं से आचमन कर ॐरघु नन्दनाय नमः वोलकर हाथ धोवे पूर्वाभिमुख वैठकर रक्षा दीप को संस्थापित करके जलके सहित त्रिकुशा से स्वयं को एवं श्राद्धीय वस्तुओं को अभिषिक्त करें। तत्पश्चात्

विहितस्नानादिनित्यकृत्यः मुमुक्षुः धारितशुक्लद्विवासाःशुचिःआचम्य प्राङ्मुखःउपविश्यरक्षादीपं संस्थाप्य कुशत्रयजलेन आत्मानंश्राद्धवस्तूनि च प्रोक्षेत्

ॐअपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपिवा ।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं सबाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥

ततः यवपुष्पैः ॐश्राद्धभूम्यै नमः इति मन्त्रेण भूमिं त्रिं सम्पूज्य कुशत्रययवजलान्यादाय सङ्कल्पं कुर्यात्-

ओमद्य अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकराशिस्थिते सूर्ये अमुकराशिस्थिते चन्द्रे शेषेषु ग्रहेषु यथायथं राशि स्थानस्थितेषु सत्सु धरध्रुवसोमाहोऽनिलानलप्रत्यूषप्रभाससंज्ञानामष्टवसूनां मृगव्याधसर्प नैर्ऋत्या जैकपादाहिर्बुध्न्यपिनाकिदहनेश्वरकपालिस्थाणुमगाद्यानामेकादश रुद्राणाम्, धातृमित्र अर्यमाशक्रवरुणांशभगविवस्वतपूषासवितृत्वष्ट्रावामनाभिधानां द्वादशादित्यानाञ्च देवानां नान्दीमुखानां द्वितीयवर्गीयाणां मरीच्यत्रि अङ्गिरा पुलस्त्य पुलहष्क्रतु प्रचेतो वशिष्ठ भृगुनारदानां ऋषीणां नान्दीमुखानां तृतीयवर्गीययोः हिरण्यगर्भवैराजपत्योः नान्दीमुख्योः, चतुर्थवर्गीयाणां सनकसनन्दनसनातनकपिलासुरिवोढुपञ्चशिखानां मानुषाणां नान्दीमुखानां, पञ्चमवर्गीयाणां पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशानां भूतानां नान्दीमुखानां, षष्ठवर्गीयाणां कव्यवाडनलसोमार्यमाग्निष्वात्तवर्हित्सोमपानां पितृणां नान्दीमुखानां, सप्तमवर्गीयाणां लक्ष्मीपद्माशचीमेधा सावित्री विजयाजया देवसेना स्वधा स्वाहानां मातृणां नान्दीमुखानाम् अष्टमवर्गीयस्य परमात्मन आत्मनः नान्दीमुखस्य भगवदाज्ञया भगवत्कैंकर्यरूपश्रीवैष्णवसंन्यास ग्रहण कर्मनिमित्तकमष्टवर्गीय श्राद्धमहं करिष्ये ॥१५॥

उसमें ॐअपवित्रः पवित्रो वा. यह मन्त्र पढे। तत्पश्चात् यव एवं पुष्प के साथ ॐश्राद्ध भूम्यै नमः इस मन्त्र से तीनवार भूमि का पूजन करके त्रिकुशा यव एवं जल लेकर संकल्प करें। ओमद्य. आदि मन्त्रों को श्राद्धमहं करिष्ये पर्यन्त संकल्प में उच्चारण करें। तत्पश्चात् तीनवार श्रीराम गायत्री ''ॐदाशरथाय विद्महे सीतावल्लभाय धीमहि तन्नो रामः प्रचोदयात्'' इस मन्त्र का एवं ॐदेवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च। नमः स्वाहायै स्वधायै नित्यमेव नमोनमः ॥ इस मन्त्र का तीनवार जप करें ॥१५॥

卐 कुशत्रययवजलान्यादाय→

(१) ॐश्रीवैष्णवसंन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धीयानामष्टवर्गाणां नान्दीमुखानां श्राद्धसम्बन्धिनः सत्यवसुसंज्ञकाः विश्वेदेवाः इदमासनं वो नमः । इतिमन्त्रेण विश्वेभ्यो देवेभ्यः उत्तराग्रमासनं दद्यात् । अन्येभ्यस्तु पूर्वाग्रान् कुशान् आसनरूपेण वक्ष्यमाणमन्त्रैः दद्यात् (२) ओमद्य प्रथमवर्गीयाणाम् अष्टवस्वेकादशरुद्रद्वादशादित्यानां देवानां नान्दीमुखानां इदमासनं वो नमः । (३) ॐअद्य द्वितीयवर्गीयाणां मरीच्यादिदश ऋषीणां नान्दीमुखानां इदमासनं वो नमः । (४) ओमद्य तृतीयवर्गीययोः हिरण्यगर्भादिदिव्ययोः नान्दीमुखयोः इदमासनं वो नमः ।(५) ओमद्य चतुर्थवर्गीयाणां सनकादि सप्तमनुष्याणां नान्दीमुखानां इदमामनं वो नमः । (६) ओमद्य पञ्चमवर्गीयाणां पृथिव्यादिपञ्चभूतानां नान्दीमुखानां इदमासनं वो नमः ।(७) ओमद्य षष्ठवर्गीयाणां कव्यवाडादिपितृणां नान्दीमुखानां इदमासनं वो नमः ।(८) ओमद्य सप्तमवर्गीयाणां लक्ष्म्यादिमातृणां नान्दीमुखानाम् इदमासनं वो नमः । (९) ओमद्य अष्टवर्गीयस्य परमात्मन आत्मनः नान्दीमुखस्य इदमासनं ते नमः ।

卐 ततः वक्ष्यमाणैः मन्त्रैः श्राद्धीयान् देवान् आवाहयेत्→

(१) ॐ विश्वान्देवानहमावाहयिष्ये । इत्युच्चार्य ॐ विश्वेदेवा सऽआ

संन्यास ग्रहण करनेवाला मुमुक्षु पुरुष दैव आदि आठ प्रकार के श्राद्धों को प्रारम्भ करने के पूर्व इन उपकरणों को सावधानी से एकत्रित करालेवें । १-विशुद्ध बालुका से एक इंच ऊँची, एवं एक एक फुट का चतुष्कोण दश वेदी बनावें । जिन दो पूर्व में आठ उससे लगा हुआ पश्चिम में पलास पत्र का १० पुटक-पुटक के दो भाग में पत्रका मोड मूल की ओर हो जो तिनका से गूंथा हो गन्ध पुष्प धूपदीप फलादि नैवेद्य, नीवार चूर्ण, यवचूर्ण तण्डुल (चावल) दही घी खीर यव तिल पुष्प कच्चा धागा, जल से भरा हुआ घडा लोटा पञ्चपात्र अर्घा, आचमनी, मूल सहित तीन पत्रवाला दर्भ की मुष्टि, १० त्रिकुशा, दो मोटक, १० वस्त्र पिष्टि, संकेतित वस्तुओं का दश पिण्ड भात, गङ्गाजल १० भोजन योग्य पत्ता तथा अन्य संकेतित श्राद्धोपकरण एकत्रित करने के पश्चात् श्राद्ध आरम्भ करें ।

गत श्रृणुतामऽइमꣳहवम् । इदम्बर्हिर्न्निषीदत । इत्याबाह्य, ॐ"यवोसि यवयास्मद्वेषो यवयारातीः" इति विश्वेदेवपात्रे यवान् विकिरेत्। ततः प्रार्थचेत्-ॐ"विश्वेदेवा श्रृणुतेमꣳहवम्मेयेऽअन्तरिक्षे यऽउपद्य विविष्ट्व । येऽअग्निजिह्वाऽउतवाययत्राऽआसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयद्ध्वम् ।"

आगच्छन्तु महाभागाविश्वेदेवा महाबलाः ।
ये चात्र विहिताः श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते ॥

ततः ओम् "नान्दीमुखान्देवादीनहमावाहयिष्ये ।" इत्यावाह्य "ॐ यवोऽसि यवयास्मद्वेषो यवयारातीः इति पठित्वा देवान्नपात्रेषु यवान् विक्षिपेत् ।" अन्येषां कृते तु-

ॐ"आयन्तुनः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वाताः पथिभिर्देवयानैः । अस्मिन् यज्ञे स्वधयामयदन्तोधि व्रुवन्तु ते वन्त्वस्मान्" । इति पठित्वा पितृपात्रे तिलान् प्रक्षिपेत् ।

ततः सर्वेषु अर्धपात्रेषु "ॐपवित्रेस्थो वैष्णव्यो सवितुर्वहः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः । तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुनेतच्छकेयम्" । इति मन्त्रेण पवित्राणि स्थापयित्वा ॐ दाशरथाय विद्महे सीतावल्लभाय धीमहि तन्नो रामः प्रचोदयात् इति श्रीरामगायत्र्या ॐ शन्नोदेवीरभीष्टये आपो भवन्तु पीतये । शन्नोरभिस्त्रवन्तुनः" इति मन्त्रेण च पुटकेषु जलं क्षिपेत् । ॐ यवोसि इति मन्त्रेण पुटकेषु यवान् क्षिपेत् । ततः

पूर्वाभिमुख वैठाकर त्रिकुशा जव एवं जल दाहिना हाथ में लेकर उन-उन सङ्कल्पों को पढकर विश्वेदेव से प्रारम्भकर परमात्मा पर्यन्त देवताओं को जो-दैव आदि आठ श्राद्धों के देवता हैं, उन्हें मन्त्रों के अनुसार एक एक दर्भ का आसन प्रदान करें। श्राद्धीय त्याग में यह ध्यान रखना चाहिये कि-ब्रह्मा आदि देवताओं को ब्रह्म तीर्थ से ऋषियों को ऋषि तीर्थ अन्य देवताओं को देव तीर्थ से तथा पितरों को पितृ तीर्थ से त्याग करें ।

दैव आदि अष्टवर्गीय देवताओं को आसन प्रदान करने के पश्चात् विश्वेदेव से लेकर परमात्मा पर्यन्त आठ तत्तद्वर्गीय देवताओं को निर्दिष्ट मन्त्रों के द्वारा आवाहन करें । तथा उन उन देवताओं के भोजन पात्र में मन्त्र पढकर उनके भोजन पात्रों में

प्रतिपुटकेतूष्णीं गन्धपुष्पे क्षिपेत् । तत्पश्चात् प्रथमम्पुटकं देवार्घपात्रं वामहस्ते संस्थाप्य तत्र स्थितं पवित्रं विश्वेदेवभोजनपात्रे निधाय वक्ष्यमाणमन्त्रं पठित्वा जलान्तरं दत्वा पवित्रोपरि किंञ्चिज्जलं दद्यात् । ॐ''या दिव्याऽआपः पयसासम्बभूवुर्याऽआन्तरिक्षाऽउत्पार्थिवीर्याः । हिरण्यवर्णा यज्ञियास्तान् आपःऽशिवाः शꣳस्योना सुहवा भवन्तु ।''

पुनः कुशत्रययवजलान्यादाय-

ओमद्याष्टश्राद्धीयानामष्टवर्गीयाणां नान्दीमुखानां श्राद्धसम्बन्धिनः सत्यवसुसंज्ञकाः विस्वेदेवाः एषवो हस्तार्घो नमः । इति पवित्रोपरि अर्घजलं दद्यात् । पूर्वोक्तमेवमन्त्रं पठित्वा सर्वेषु देवादीनां भोजनपात्रेषु प्रतिपात्रम्पवित्रं निधाय प्रतिपुटके किञ्चिदुदकान्तरं दत्वा ॐ या दिव्या आपः० इति मन्त्रेण कुशत्रययवजलान्यादाय-

ओमद्य प्रथमवर्गीयाणामष्टवस्वेकादशरुद्रद्वादशादित्यानां देवानां नान्दीमुखानां एष वो हस्तार्घे नमः । ओमद्य द्वितीयवर्गीयाणां मरीच्यादि दशऋषीणां नान्दीमुखानां एष वो हस्तार्घो नमः । ओमद्य तृतीयवर्गीययोः हिरण्यगर्भादिदिव्ययोः नान्दीमुखयोः एष वो हस्तार्घो नमः । ओमद्य चतुर्थवर्गीयाणां सनकादिसप्तमनुष्याणां नान्दीमुखानां एष वो हस्तार्घो नमः ।

यव विखेरे। एवं पितृ पात्र में तिल विखेरे। तत्पश्चात् दश अर्घ पात्रों में ''पवित्रेस्थो'' इस मन्त्र के द्वारा दर्भ के अग्रभाग के पत्रों से पवित्री-बनाकर पुटकों में पवित्री स्थापित करें। तत्पश्चात् श्रीरामगायत्री एवं 'शन्नो देवी...' इस मन्त्र को पढकर प्रत्येक पुटक में जल भरे। इसके वाद यवोऽसि...इस मन्त्र से प्रत्येक पुटक में यव स्थापित करें। एवं प्रत्येक पुटक में गन्ध पुष्प मौन रहकर ही डालें। इसके वाद प्रथम पुटक को उठाकर बायाँ हाथ में व्यवस्थित रखकर उसमें विद्यमान पवित्री को विश्वेदेव के भोजन पात्र में स्थापितकर आगे कहा जाने वाला मन्त्र पढकर दूसरा जल भी उस पुटक में पुनः डालकर पवित्री के ऊपर कुछ जल प्रदान करें। एवं पुटक को पूर्ववत् स्थापित कर दें। पुनः त्रिकुशा यव एवं जल दाहिना हाथ में लेकर पूर्वक्रम से ही या दिव्या आपः...इस मन्त्र से सभी को अर्घ प्रदान में पढकर क्रमशः प्रत्येक पुटक को बायाँ हाथ में रखकर पवित्री दैव आदि श्राद्धीय देवताओं के भोजनपात्र में निकाल

ओमद्य पञ्चमवर्गीयाणां पृथिव्यादिपञ्चभूतानां नान्दीमुखानां एष वो हस्तार्घो नमः । ओमद्य षष्ठवर्गीयाणां कव्यादिपितृणां नान्दीमुखानां एष वो हस्तार्घो नमः । ओमद्य सप्तमवर्गीयाणां लक्ष्म्यादिमातृणां नान्दीमुखानां एष वो हस्तार्घो नमः । ओमद्य अष्टमवर्गीयस्य परमात्मन आत्मनः नान्दीमुखस्य एष ते हस्तार्घो नमः ।

ततोऽवशिष्टजलपवित्रयुतं प्रथमं देवार्घपात्रमादाय "ॐविश्वेभ्यः देवेभ्यः स्थानमसि" इति देवासनदक्षिणभागे उत्तानमेवार्घपात्रं स्थापयेत् । एवं सर्वत्र अवशिष्टजलपवित्रयुतं पात्रमादाय-

ॐअष्टश्राद्धीयदेवेभ्यः स्थानमसि । उत्तानमेवार्धपात्रं स्यापयेत् ।

ततः गन्धादिकं दद्यात्-गन्धादिकं दत्वा संकल्पं कुर्यात्-

ओमद्य श्रीवैष्णवसंन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धीयानामष्टवर्गाणां नान्दीमुखानां श्राद्धसम्बन्धिनः सत्यवसुसंज्ञकाः विश्वेदेवाः एतानि गन्धपुष्प धूपदीपताम्बूलयज्ञोपवीतवासांसि वो नमः । ओमद्य श्रीवैष्णवसंन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धीयाष्टवर्गीयाणां देवर्षिदिव्यपितृमातृकमानुषभौतिकात्मानां नान्दीमुखानायेतानि गन्धादीनि वो नमः ।

अन्नपरिवेषणम्-

ततः विश्वेदेवस्थाने अष्टसु स्थानेषु च जलेन चतुष्कोणमण्डलं कुर्यात्-

यथा बाणायुधो रामः त्रैलोक्यम्परिरक्षति ।
एवं मण्डलतोयन्तु सर्वभूतानि रक्षतु ॥

कर रख दें । पुटक में थोडा दूसरा जल डालकर क्रमशः दैव से लेकर आत्म पर्यन्त श्राद्धीय देवताओं के पात्र में अर्घ प्रदान करें एवं कुछ अवशिष्ट जल सहित पुटक को यथापूर्व रख दें । प्रत्येक अर्घ प्रदान में अलग-अलग त्रिकुश यव एवं जल लेना चाहिये तथा उसमें से पवित्री निकालकर देवान्नपात्र में रखकर पुटक में जलान्तर प्रदान करना एवं अर्घ देना अपेक्षित है । अवशिष्ट जल से युक्त तथा पवित्री से युक्त देवार्घ पात्र को "ॐ विश्वेभ्यः देवेभ्यः स्थानमसि" यह कहकर देवासन के दक्षिण भाग में उत्तान ही रखना चाहिये एवं अन्य अष्टश्राद्धीय देवताओं के लिये भी "अष्टश्राद्धीय देवेभ्यः स्थानमसि" उत्तान ही अर्घपात्रों को उन देवताओं के आसन के समक्ष रखें।

ततः सर्वस्मात् पिण्डद्रव्यात् किञ्चित्-किञ्चित् निःसार्य सजले पुटकादौ हस्तेनैव सघृतमन्नमादाय पुटकस्थद्वयजले ॐ अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा ॐ सोमाय पितृमते स्वाहा आहुतिद्वयं जुहुयात् ।

ततः अपसव्येन दक्षिणाभिमुखः पातितवामजानुः मोटकतिल जलान्यादाय किञ्चिदन्नासं गृहीत्वा ॐ इदमन्नमेतद् भूस्वामी पितृभ्यो नमः" इति भूस्वामी पितृभ्यः दद्यात् ।

ततः सव्यं कृत्वा प्राङ्मुखः आचम्य सर्वत्र नवसु स्थानेषु परिवेषणं तत्र अष्टवस्वाद्यारभ्य अष्टसु स्थानेषु फलम् नीवारस्य दध्योदनम्, यवचूर्णम् दध्योदनम्, दध्योदनम्, क्षीरम्, क्षीरम्, किलाटः (मावा) यथाक्रमेण श्रीरामगायत्र्या परिवेषणं कुर्यात् । घृतं जलञ्च तत्रोपनीय-ॐ मधुवाता ऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः माध्वीर्नः सन्तोषधीः । मधुनक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिव७ रजः । मधुद्यौरस्तुनः पिता । मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ २ अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः । ॐ मधु मधु मधु इति ऋक्त्रयं श्रावयित्वा भोजनपात्रं स्पृशेत् ।

तद्यथा-उत्तानपाणिभ्याम्-

ॐ"पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्य मुखेऽअमृतेऽअमृतं जुहोमि स्वाहा । ॐ इदं विष्णुर्व्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पा७सुरे स्वाहा । ॐ कृष्णहव्यमिदं रक्षमदीयम्" ॥ इति पठित्वा अंगुष्ठनिवेसनम्- "ॐ इदमन्नम्" इत्यन्ने । "ॐ इमा आपः" इति जले । ॐ इदमाज्यमिति घृते । ॐ इदं हविः इति पुनरन्ने । ॐ यवोसि यवयास्मद्द्वेषो यवयारातीः" इति यवान्निक्षिप्य ।

एवं मौन रहकर ही गन्धपुष्प आदि अर्पित करें । तत्पश्चात् पुनः संकल्प करें । हाथ में पूर्ववत् त्रिकुशा यव एवं जल लेकर उन-उन देवताओं के उद्देश्य से विश्वेदेव से लेकर आत्म पर्यन्त देवताओं को संकल्प पूर्वक गन्धपुष्प एवं वस्त्रों का उत्सर्ग (दान) करें।

पुनः उन विश्वेदेव से लेकर परमात्मा पर्यन्त देवताओं के पात्र में अन्न परोशने

यवजलान्यादाय ओमद्य श्रीवैष्णवसंन्यासग्रहणाङ्गष्टश्राद्धीयाष्टवर्गीयाणां देवर्षिदिव्यपितृमातृकमानुषभौतिकात्मनां नान्दीमुखानां इदमन्नं सोपकरणं वो नमः ।

ततः बद्धकरसम्पुटः-ओम् अन्नहीनं क्रियाहीनं विधिहीनं च यद्भवेत् । तत्सर्वमच्छिद्रमस्तु । इति जपेत् । ततः श्रीरामगायत्रीं त्रिर्जपित्वा । ॐ मधु मधु मधु इति । ॐ मधुवाता...अन्यानि पुरुषसूक्तादीनि जपेत् जापयेद्वा । विकरदानम् ततः कुशानास्तीर्य जलेन प्रोक्ष्य सयवधृतमन्नमादाय-
ॐअग्निदग्धाश्च ये जीवा येऽप्रदग्धाः कुले मम ।
भूमौ दत्तेनतृण्यन्तु तृप्ता यान्तु परांगतिम् ॥

इति मन्त्रेण कुशोपरि विकिरदानं कुर्यात् । ततः आचम्य हरिं स्मृत्वा श्रीरामगायत्रीं त्रिर्जपेत् । ततः उत्तरोत्तरक्रमेण प्रादेशमात्राणि अष्टौ स्थण्डिलानि पिण्डार्थं कृत्वा सर्वत्र प्रागग्रां रेखां दर्भमूलेन-

ॐ अपहता असुरा रक्षाᳫसि वेदिसदः, इति मन्त्रेण कुर्यात् । ततः रेखायाः उपरिप्रत्येकम्-

ॐ ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमानाऽअसुराः सन्तः स्वधयाचरन्ति । परापुरोनिपुरो ये भरन्त्यग्निष्टांल्लोकात्प्रणुदात्यस्मात् ॥

इतिमन्त्रेण अंगारां भ्रामयेत् । ततः रेखोपरि प्रत्येकं कुशत्रयमास्तीर्य श्रीरामगायत्रीं त्रिर्जपित्वा, अष्टौ अवनेजनपात्राणि जलयवगन्धपुष्पयुतानि स्थापयेत् । ततः प्रतिवेद्यां सावशेषमवनेजनं कुशोपरिदद्यात् ।
के पहले सभी वेदी को जल से चतुष्कोण मण्डल बनाकर घेर दें । तथा प्रार्थना करे कि जिसप्रकार धनुर्बाण आयुध धारी भगवान् श्रीरामजी तीनों लोकों का सभी तरह से संरक्षण करते हैं उसी प्रकार यह मण्डल का जल प्राणी मात्र की रक्षा करे । तत्पश्चात् सभी पिण्ड द्रव्यों से थोडा-थोडा निकालकर जल सहित दशवाँ पुटक में हाथ से ही घी सहित अन्न को लेकर दो पुटकों के जल में "ओम् अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा एवं सोमाय पितृमते स्वाहा" इन मन्त्रों को पढकर दो आहुति प्रदान करें । ये तीनों ही पुटक पूर्ववर्णित पुटकों से अतिरिक्त होंगे । तत्पश्चात् अपसव्य होकर (दाहिना कन्धा

(१) ओमद्य प्रथमवर्गीयाः अष्टवस्वेकादशरुद्रद्वादशादित्या देवता नान्दीमुखाः श्रीवैष्णवसंन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डस्थाने अत्रावने निग्ध्वं वो नमः ।

(२) ओमद्य द्वितीयवर्गीयाः मरीच्यादिदशर्षयः नान्दीमुखाः संन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डस्थाने अत्रावने निग्ध्वं वो नमः ।

(३) ओमद्य तृतीयवर्गीयौ हिरण्यगर्भादिदिव्यनान्दीमुखयोः श्रीवैष्णवसंन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डस्थाने अत्रावने निक्ष्वेथां वां नमः ।

(४) ओमद्य चतुर्थवर्गीयाः सनकादिसप्तमनुष्याः नान्दीमुखाः श्रीवैष्णवसंन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डस्थाने अत्रावने निग्ध्वं वो नमः ।

(५) ओमद्य पञ्चमवर्गीयाः पृथिव्यादयः पञ्चभूताः नान्दीमुखाः श्रीवैष्णवसंन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डस्थाने अत्रावने निग्ध्वं वो नमः ।

(६) ओमद्य षष्ठवर्गीयाः कव्यवाडादयः पितरः नान्दीमुखाः श्रीवैष्णवसंन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डस्थाने अत्रावने निग्ध्वं वो नमः ।

(७) ओमद्य सप्तमवर्गीयाः लक्ष्म्यादयः मातरः नान्दीमुख्यः श्रीवैष्णवसंन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डस्थाने अत्रावने निग्ध्वं वो नमः ।

(८) ओमद्य अष्टमवर्गीयः परमात्मन्नात्मनः नान्दीमुखः श्रीवैष्णवसंन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डस्थाने अत्रावनें निक्ष्व ते नमः ।

पर एवं वायाँ बाहु के नीचे जनेऊ होता है उसको अपसव्य कहते हैं) दक्षिण दिशा की ओर मुँह करके बायाँ जाँघ गिराकर मोटक तिल एवं जल लेकर थोडासा अन्न का हिस्सा उठाकर इदमन्नमेतद्...मन्त्र पढकर भू-स्वामी के पितरों को अन्न प्रदान करें।

मूल सहित तीन दर्भ को लेकर दो का मूल एकतरफ एक का मूल दूसरे तरफ करके तीनों दर्भों को बराबर रखकर ढाइवार ऐंठकर एकके मूल से सभी मुडे हुये कुशों को ढाइवार लपेटकर बान्धते हैं उसे मोटक कहा जाता है।

तत्पश्चात् पुनः सव्य होकर (अर्थात् बायाँ कन्धा पर एवं दाहिना बाहु के नीचे यज्ञोपवीत को करके) पूर्वाभिमुख होकर आचमन करके सभी नौ भोजन पात्रों में भोजन परोसकर उनमें आठ वसुओं से लेकर परमात्मा पर्यन्त आठों पात्रों में प्रथम

पिण्डदानम्-ततः प्रथमवेदिकायां कदलीफलेन देवेभ्यः पिण्डदानम्। तद्यथा-हस्ते जलयवत्रिकुशांश्च गृहीत्वा-

ओमद्य प्रथमवर्गीयाः अष्टवस्वेकादशरुद्रद्वादशादित्या देवता नान्दीमुखाः श्रीवैष्णवसंन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे एष वः पिण्डो नमः। द्वितीय पिण्डं तूष्णीमेव तत्पूर्वतो दद्यात्।

ततः द्वितीयवेदिकायां दधिमिश्रितनीबारेण ऋषिभ्यः-

ओमद्य द्वितीयवर्गीयाः मरीच्यादिदशर्षयः नान्दीमुखाः श्रीवैष्णव संन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे एष वः पिण्डो नमः। द्वितीयपिण्डं तूष्णीमेव तत्पूर्वतो दद्यात्।

ततः तृतीयवेदिकायां यवपिष्टेन दिव्याभ्याम्-

ओमद्य तृतीयवर्गीयौ हिरण्यगर्भादिदिव्ययोः नान्दीमुखयोः श्रीवैष्णव संन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे एष वां पिण्डो नमः। द्वितीयपिण्डं तूष्णीमेव तत्पूर्वतो दद्यात्।

ततः चतुर्थवेदिकायाः मनुष्येभ्यः दध्योदनाभ्याम्। ओमद्य चतुर्थ वर्गीयाः सनकादिसप्तमनुष्याः नान्दीमुखाः श्रीवैष्णवसंन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे एष वः पिण्डो नमः। द्वितीयपिण्डं तूष्णीमेव तत्पूर्वतो दद्यात्।

ततः पञ्चमवेदिकायां भूतेभ्यः दधिमिश्रिततण्डुलेन ओमद्य पञ्चमव र्गीयाः पृथिव्यादयः पञ्चभूताः नान्दीमुखाः श्रीवैष्णवसंन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे एष वः पिण्डो नमः। द्वितीयपिण्डं तूष्णीमेव तत्पूर्वतो दद्यात्।

ततः षष्टवेदिकायां पितृभ्यः हविषा-

में फल, द्वितीय में निवार, तृतीय में दही भात, चतुर्थ में जौ का आटा, पाँचवाँ में दही भात, छठा में दही भात, सातवाँ एवं आठवाँ में दूध भात एवं नौवाँ में मावा यह विश्वेदेव से लेकर परमात्मा पर्यन्त पात्रों में प्रतिपात्र में श्रीरामगायत्री पढकर परोसे। सभी पात्रों में घृत एवं जल रखकर ओम् मधुव्वाता...इस मन्त्र को पढकर प्रत्येक भोजन पात्र का स्पर्श करें। पुनः एक-एक पात्र में दोनों ही उत्तान हाथों को लगाकर "ओम् पृथिवी ते पात्रम्"...आदि पढकर ओम् कृष्णकव्यमिदं रक्षमदीयम् तक उच्चारण करके बायाँ हाथ उत्तान की अवस्था में पूर्ववत् रखे हुये दाहिना हाथ की

ओमद्य षष्ठवर्गीयाः कव्यवाडादयः पितरो नान्दीमुखाः श्रीवैष्णव संन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे एष वः पिण्डो नमः। द्वितीयं पिण्डं तूष्णीमेव दद्यात् ।

ततः सप्तमवेदिकायां मातृभ्यः हविषा-

ओमद्य सप्तमवर्गीयाः लक्ष्म्यादयः मातरो नान्दीमुख्यः श्रीवैष्णव संन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे एष वः पिण्डो नमः। द्वितीयपिण्डं तूष्णीमेव तत्पूर्वतो दद्यात् ।

ततः अष्टमवेदिकायां आत्मनः दुग्धपिण्डेन-

ओमद्य अष्टमवर्गीयः परमात्मन्नात्मनः नान्दीमुखः श्रीवैष्णवसंन्यास ग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे एष ते पिण्डो नमः । ततः द्वितीयपिण्डं तूष्णीमेव तत्पूर्वतो दद्यात् ।

ततः दर्भमूले करं प्रोक्ष्य आचम्य श्रीरामगायत्रीं त्रिर्जपित्वा-

ॐ अत्रपितरो मादयध्वं यथाभाग मा वृषायध्वं, इति उत्तराभिमुखो श्वासं नियमयन् तेन पथा यथा पूर्वं मुखं परिवर्तयन् "ॐ अमीमदन्तपितरो यथा भागमावृषायिष्ट । इति पठन् श्वासं विसृतेत् ।

ततः अवनेजनावशिष्टजलेन प्रत्यवनेजनं दद्यात् ।

ओमद्य प्रथमवर्गीया अष्टवसवैकादशरुद्रद्वादशोदित्यदेवता नान्दी मुखाः श्रीवैष्णवसंन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डोपरिप्रत्यवने निग्ध्वं वो नमः।

अंगूठा को अन्न में लगाकर "ओम् इदमन्नम्" यह उच्चारण करे। तत्पश्चात् जल में लगाकर "ओम् इमा आपः" एवं घृत में "इदमाज्यम्" तथा इदं हविः कहकर पुनः अन्न में दाहिना अंगूठा से स्पर्श करे तथा अन्न के ऊपर ओम् यवोसि...यह पढकर जौ, अन्न पर विखेरे। यह व्यवहार प्रत्येक अन्नपात्र में इन्हीं मन्त्रों से तथा इसी क्रमसे करें।

पुनः यव एवं जल लेकर सभी पात्र का उत्सर्ग करे। तत्पश्चात् हाथ जोडकर ओम् अन्नहीनम्...आदि मन्त्र पढकर तीनवार श्रीरागायत्री जपकर ओम् मधु, मधु, मधु, मधुव्वाता० तथा पुरुषसूक्त का पाठकरे अथवा किसी दूसरे के द्वारा पाठ करावें। पुनः वेदियों के आस पास में दर्भ विखेर कर जलसे सिञ्चितकर जौ एवं घृत सहित अन्न लेकर ओम् अग्निदग्धां...आदि मन्त्र पढकर पूर्व में विखेरे हुये कुश के ऊपर अन्न को विखेरे।

ओमद्य द्वितीयवर्गीयाः मरीच्यादिदशर्षयः नान्दीमुखाः श्रीवैष्णव संन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डोपरि प्रत्यवने निग्ध्वं वो नमः ।

ओमद्य तृतीयवर्गीयौ हिरण्यगर्भादिदिव्यौ नान्दीमुखौ श्रीवैष्णव संन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डोपरि प्रत्यवने निजातं वां नमः ।

ओमद्य चतुर्थवर्गीयाः सनकादिसप्तमनुष्याः नान्दीमुखाः श्रीवैष्णव संन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डोपरि प्रत्यवने निग्ध्वं वो नमः ।

ओमद्य पञ्चमवर्गीयाः पृथिव्यादिपञ्चभूताः नान्दीमुखाः श्रीवैष्णव संन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डोपरि प्रत्यवने निग्ध्वं वो नमः ।

ओमद्य षष्ठवर्गीयाः कव्यवाडादिपितरो नान्दीमुखाः श्रीवैष्णवसंन्यास ग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डोपरि प्रत्यवने निग्ध्वं वो नमः ।

ओमद्य सप्तमवर्गीयाः लक्ष्म्यादि मातरो नान्दीमुख्यः श्रीवैष्णवसंन्यास ग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डोपरि प्रत्यवने निग्ध्वं वो नमः ।

ओमद्य अष्टमवर्गीयः परमात्मन्नात्मनः नान्दीमुखः श्रीवैष्णवसंन्यास ग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डोपरि प्रत्यवने निक्ष्व ते नमः ।

तत्पश्चादाचम्य प्राणानायम्य श्रीरामगायत्रीं त्रिं जपित्वा श्राद्धीय देवादीन् प्रणम्य क्रमेण सर्वेभ्यः पिण्डेभ्यः सूत्रमादाय वेदिकायाः पिण्डोपरि सूत्रं दद्यात् वक्ष्यमाणं मन्त्रं पठन् सूत्रं दद्यात् ।

पुनः आचमन करके हरिस्मरण कर तीनवार श्रीराम गायत्री जपकरे । पुनः उत्तर-उत्तर क्रमसे एक-एक प्रादेश के आठ स्थण्डिल पिण्ड दान के लिये बनाकर सभी स्थण्डिलों पर पूर्व दिशा में जिसका अग्रभाग है अर्थात् पश्चिम से पूर्व दिशा की ओर दर्भमूल से रेखा खींचे । यह रेखा आठों स्थण्डिलों पर होना चाहिये । तथा रेखा खींचने में "अपहता असुरा रक्षाꣳसि वेदिषदः" इस मन्त्र से रेखा करें । तत्पश्चात् रेखा के ऊपर अंगार किसी साधन से पकडकर "ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमानाः"...इस मन्त्र को पढकर प्रत्येक रेखा पर जलता हुआ अंगार घुमावें । आग का अंगार घुमाने के पश्चात् प्रत्येक रेखा पर तीन-तीन कुश विछाकर तीनवार श्रीरामगायत्री को जप करे। पुनः आठ पुटकों में अवनेजन हेतु जल, यव, गन्ध, पुष्प, स्थापित करके प्रत्येक वेदी के ऊपर पूर्व में दिया गया अर्घ से अवशिष्ट अवनेजन दर्भ के ऊपर प्रदान करें।

"ॐ नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरः शोषाय नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो मन्यवे नमो वः पितरः पितरो नमो वा गृहान्नः पितरो दत्तसतोवः पितरो देष्म ॥" एतद्वः पितरो वासाः । एतद्वो देवावासः । एतद्वो ऋषयोवासः । एतद्वां दिव्यौवासः । एतद्वो मनुष्यावासः । एतद्वो भूतावासः । एतद्वो पितरो वासः । एतद्वो मातरोवासः । एतत्ते आत्मन् वासः ।

ततः कुशत्रय यवजलान्यादाय-वक्ष्यमाणैः संकल्पवचनैः पिण्डेषुवासं उत्सृजेत्-

ओमद्य प्रथमवर्गीयाः अष्टवस्वेकादशरुद्रद्वादशादित्यदेवताः नान्दी मुखाः श्रीवैष्णवसंन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डयोः एतद्वोवासो नमः ।

ओमद्य द्वितीयवर्गीयाः मरीच्यादिदशर्षयः नान्दीमुखाः श्रीवैष्णव संन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डयोः एतद्वोवासो नमः ।

ओमद्य तृतीयवर्गीयौ हिरण्यगर्भादिदिव्यौ श्रीवैष्णवसंन्यासग्रहणा ङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डयोः एतद्वांवासो नमः ।

ओमद्य चतुर्थवर्गीयाः सनकादिसप्तमनुष्याः नान्दीमुखाः श्रीवैष्णव संन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डयोः एतद्वोवासो नमः ।

ओमद्य पञ्चमवर्गीयाः पृथिव्यादिपञ्चभूता नान्दीमुखाः श्रीवैष्णव संन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डयोः एतद्वोवासो नमः ।

ओमद्य षष्ठवर्गीयाः कव्यवाडादिपितरो नान्दीमुखाः श्रीवैष्णवसंन्यास ग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डयोः एतद्वोवासो नमः ।

ओमद्य सप्तमवर्गीयाः लक्ष्म्यादिमातरो नान्दीमुखाः श्रीवैष्णव संन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डयोः एतद्वोवासो नमः ।

तथा अवनेजन दिये गये उन-उन संकल्प मन्त्रों को पढें । इसतरह एक से लेकर आठ स्थण्डिलों पर इसी क्रम से प्रयोग करें । प्रत्येक स्थण्डिल पर मन्त्र पढकर अवनेजन प्रदान करने के पश्चात् पिण्ड प्रदान करें ।

॥ पिण्डदान ॥

पहली वेदी पर कदली आदि किसी शुद्ध फल से देवताओं के लिये पिण्डदान

ओमद्य अष्टमवर्गीयः परमात्मन्नात्मनः नान्दीमुख्योः श्रीवैष्णव संन्यासग्रहणाङ्गष्टश्राद्धे पिण्डयोः एतद्वोवासो नमः ।

ततो गन्धपुष्पधूपवस्त्रताम्बूलादिभिः तूष्णीमेव पिण्डान् पूजयेत् । तत्पश्चा च्चटोपरि "ॐ शिवा आपः सन्तु" इति जलम्, ॐ सौमनस्यमस्तु इति पुष्पम्, ॐ अक्षताञ्चारिष्टिञ्चास्तु इति तण्डुलान् निक्षिप्य कुशत्रय यवजलान्यादाय-

ओमद्य श्रीवैष्णवसंन्यासग्रहणाङ्गष्टश्राद्धीयाष्टवर्गीयाः देवर्षिदिव्य पितृमातृकमानुषभौतिकात्मनः नान्दीमुखाः दत्तैतदन्नपानादिः प्रीयन्ताम् । ततः प्रतिवेदिपिण्डोपरि अक्षय्योदकं प्रदाय जलधारां दद्यात् । तत्र जलधारा प्रदाने वक्ष्यमाणाः मन्त्रा सन्ति ।

ॐ अघोराः देवाः सन्तु, ॐ अघोराः ऋषय सन्तु, ॐअघोरौ दिव्यौ स्याताम् । ॐ अघोराः मानुषा सन्तु, ॐ अघोराणि भूतानि सन्तु, ॐ अघोराः पितरः सन्तु, ॐ अघोराः मातरः सन्तु, ॐ अघोरः आत्मा अस्तु ।

ततो बद्धकरसम्पुटः सन् आशिषः प्रार्थयेत् । ॐ गोत्रन्नोवद्‌र्धतां, दातारो नोऽभिवद्‌र्धन्ताम् । वेदाः सन्ततिरेव च । श्रद्धा च नो माव्यगमद् बहुदेयं च नोऽस्तु । अन्नं च नो बहुभवेत् । अतिथींश्च लभेमहि । याचिता रश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कञ्चन । एताः सत्याः आशिषः सन्तु ।

करें । तथा हाथ में जस यव एवं त्रिकुशा को लेकर ओमद्य प्रथमवर्गीयाः इत्यादि मन्त्र पढकर पिण्डदान करें । एवं दूसरा पिण्ड मौन रहकर ही दे । पुनः द्वितीय वेदिका में दही से मिश्रित नीवार से बनाहुआ ऋषियों को पिण्डदान करें । एवं ओमद्य द्वितीयवर्गीयाः...इत्यादि मन्त्र पढें । दूसरा पिण्ड मौन होकर ही दे । इसके वाद तीसरी वेदी पर पिसा हुआ यव से दिव्यों को ओमद्य तृतीयवर्गीयौ...इत्यादि मन्त्र पढकर पिण्डदान करें । तथा दूसरा पिण्ड मौन रहकर ही दें । चौथी वेदी पर मनुष्यों के लिये दहीभात के पिण्ड लेकर ओमद्य चतुर्थवर्गीयाः आदि मन्त्र पढकर पिण्डदान करें । एवं दूसारा पिण्ड मौन रहकर ही दें । तत्पश्चात् पञ्चम वेदी पर भूत के लिये दही मिला हुआ चावल के पिण्ड से ओमद्य पञ्चमवर्गीयाः... आदि मन्त्र पढकर पिण्ड प्रदान करें । एवं दूसरा पिण्ड मौन रहकर प्रदान करें । तत्पश्चात् छठी वेदी पर हविष्यान्न से

ततः प्रतिपिण्डं सपवित्रं कुशत्रयं दत्वादक्षिणाग्रां जलधारां दद्यात् । तत्रचायं मन्त्रः । ॐ ऊर्जं वहन्तीरमृतम् घृतम् पयः कीलालम् परिश्रुतम् स्वधास्य तर्पयत मे पितृन् । ततः किञ्चिन्नम्रीभूय पिण्डान् आघ्राय, उत्थाप्य पिण्डाधारकुशानुल्मुकञ्चाग्नौ क्षिप्त्वा, अर्घपात्राणि सञ्चाल्य, पुरोहिताय ब्राह्मणाय देयं दक्षिणा द्रव्यं दद्यात्-तत्र संकल्पः, ओमद्य श्रीवैष्णव संन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धीयानामष्टवर्गीयाणां देवर्षिदिव्यमानुषभौतिकपितृ मातृकात्मनां नान्दीमुखानां विश्वेषां देवानां कृतैतत् श्राद्धकर्मप्रतिष्ठार्थं मनसोद्दिष्टां दक्षिणां यथा नामगोत्राय श्रीवैष्णवाय दातुमहमुत्सृजे ।

ओमद्य श्रीवैष्णवसंन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धीयानामष्टवर्गीयाणां नान्दीमुखानां कृतैतत् श्राद्धकर्मप्रतिष्ठार्थं सम्भवस्थापितामिमां दक्षिणां यथानाम गोत्राय श्रीवैष्णवाय दातुमहमुत्सृजे ।

ततः सर्वान् स्वश्रेष्ठलोकान् सम्प्रदायानुसारेण प्रणम्य क्षमध्वमि त्युच्चार्य विसृज्य, दीपं निर्वाप्य आचम्य, श्रीरामगायत्रीं त्रिः जपित्वा वदेत् ।

प्रमादात् कुर्वतां कर्मप्रच्यवेताध्वरेषु यत् ।
स्मरणादेव दद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादितिश्रुतिः ॥
यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्योवन्दे तमच्युतम् ॥

पितरों को ओमद्य षष्ठवर्गीयाः आदि मन्त्र पढकर पिण्डदान करें । एवं दूसरा पिण्ड मौन रहकर दें । इसके वाद सप्तम वेदी पर मातृकाओं को हविष्यान्न से ओमद्य सप्तमवर्गीयाः आदि मन्त्र पढकर पिण्डदान करें । एवं मौन रहकर दूसरा पिण्ड उससे पूर्व दिशा में दें । तत्पश्चात् अष्टमवेदी के ऊपर आत्मदेवता के लिये खोवा का पिण्ड लेकर ओमद्य अष्टमवर्गीयाः आदि मन्त्र पढकर पिण्डदान करें एवं उससे पूर्व दिशा में मौन रहकर दूसरा पिण्ड दें । तत्पश्चात् दर्भ के जड में हाथ पोंछकर आचमन करके तीनवार श्रीरामगायत्री जपकर उत्तर दिशा की ओर मुँह घुमाता हुआ श्वास को नियंत्रित करता हुआ ओम् अत्र पितरोमाद्यध्वम् आदि मन्त्र को पढकर पुनः उसी क्रम से मुडता हुआ ओम् अमीमदन्त पितरः आदि मन्त्र को पढता हुआ श्वास छोडे । इसके वाद अवनेजन जलदान से बचाहुआ जलसे प्रत्येक पिण्ड पर उन-उन मन्त्रों से अवनेजन

ततः पूर्वोपकल्पितं त्रिदण्डं कुशासनोपकल्पितवेदिकायां संस्थाप्य शतकृत्वः मूलमन्त्रेण स्नापयित्वा षोडशोपचारेण पूजयेत् ।

ॐ सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात् ।

सभूमि७सर्वतः स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ इति आवाहनम् नमस्कारं समर्पयामि ।

पुरुष एवेद७सर्वं यद्भूतं यच्चभाव्यम् ।

उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ इति आसनं दद्यात्-आसनं समर्पयामि ॥

एतावानस्य महिमातोज्यायांश्चपूरुषः ।

पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ इति पाद्यम्-पाद्यं समर्पयामि ।

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोस्येहाभवत्पुनः ।

ततो विष्वङ्व्यक्रामत् साशनानशने अभि ॥ इत्यर्घम्-अर्घ्यं समर्पयामि ॥

ततो विराडजायतविराजो अधिपुरुषः ।

स जातो अत्यरिच्यतपश्चाद्भूमिमथोपुरः ॥ इत्याचमनीयम्-आचमनीयं समर्पयामि ।

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः सम्भृतम् पृषदाज्यम् ।

पशूंस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्यान्ग्राम्याश्च ये ॥ इति स्नानम्-स्नानीयं समर्पयामि ।

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः समानि जज्ञिरे ।

छन्दा७सि यज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ इति वस्त्रम्-वस्त्रं समर्पयामि ।

तस्मादश्वा अजायन्त ये केचोभयादतः ।

गावोह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः। इतियज्ञोपवीतम्-यज्ञोपवीतं समर्पयामि

प्रदान करें एवं आठों पिण्डों पर भिन्न-भिन्न मन्त्र पढकर अवनेजन देकर आचमन, प्राणायाम एवं तीनवार श्रीरामगायत्री जपकर श्राद्धीय दैव आदि आठों देवताओं को प्रणाम करके कच्चा सूत लेकर सभी पिण्डों के लिये वेदी पिण्डों के ऊपर सूत्रदान करें। वह सूत्रदान आगे पढा जानेवाला मन्त्रों को पढता हुआ ही करें। इस सूत्र दान क्रिया में "ओम् नमो वः पितरो रसाय" आदि मन्त्र पढकर विश्वेदेव से लेकर आत्म पर्यन्त नौ देवताओं के लिये वस्त्र के लिये मुडा हुआ कच्चा धागा प्रदान करें। इस क्रिया को सम्पन्न करने के पश्चात् त्रिकुशा यव एवं जल लेकर आगे कहे जानेवाले संकल्प वचनों से प्रत्येक पिण्डों पर प्रथमवर्गीयाः, द्वितीयवर्गीयाः आदि कहकर वस्त्र उत्सर्ग करें।

तं यज्ञं बर्हिषिमौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥ इति गन्धम्-गन्धं समर्पयामि ।
यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधाव्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्यासीत् किम्बाहू किमूरू पादावुच्येते ॥ इति पुष्पम्-पुष्पंसमर्पयामि।
ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद्बाहूराजन्यकृतः ।
ऊरुतदस्य यद्वैस्याः पद्भ्याँशूदो अजायत ॥ इति धूपम्-धूपं समर्पयामि ।
चन्द्रमामनसोजातश्चक्षोः सूर्योऽजायत ।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥ इति दीपम्-दीपं समर्पयामि ।
नाभ्या आसीदन्तरिक्षँशीर्ष्णो द्यौ समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकान्नकल्पयन् ॥ इति नैवेद्यम्-नैवेद्यं समर्पयामि
यत्पुरुषेण हविषा देवा यद्यज्ञमतन्वत ।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म ईध्मशरद्धविः ॥ इति मुखशुद्धिं-मुखशुद्धिं समर्पयामि
सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्तसमिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अवध्नन् पुरुषं पशुम् ॥ इति प्रदक्षिणा-प्रदक्षिणां समर्पयामि
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
तेहनाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥ इति न०-न० समर्पयामि
अत्र षोडशोपचारपूजने प्रतिमन्त्रे

तत्पश्चात् गन्ध पुष्प धूप वस्त्र ताम्बूल आदि मौन रहकर ही सभी पिण्डों पर देकर पिण्डों की पूजा करें। इसके वाद चट के ऊपर "ओम् शिवा आपः सन्तु" कहकर पुष्प, अक्षतं चारिष्टं चास्तु कहकर चावल त्रिकुशा यव एवं जल लेकर ओमद्य श्रीवैष्णवसंन्यास ग्रहण आदि मन्त्र पढकर प्रत्येक वेदी के पिण्ड के ऊपर अक्षय्योदक देकर जलधारा प्रदान करें। इस जलधारा प्रदान में आगे कहे जानेवाला "अघोरा देवास्सन्तु से लेकर अघोरः आत्मा अस्तु" पर्यन्त आठों वेदीयों पर जलधारा प्रदान करने का अलग-अलग मन्त्र निर्दिष्ट है।

पिण्डों पर जलधारा देने के पश्चात् दोनों हाथ जोड़कर सावधान होकर आशीर्वाद के लिये प्रार्थना करें कि हमारी गोत्र परम्परा सम्बर्धनशील हो हमारे कुल में दान देनेवालों की ज्ञानियों की एवं सन्तति की अभिवृद्धि हो हमारी श्रद्धा कभी

ॐ भूर्भुवः स्वः त्रिदण्डाधिदेवाय नमः इदं ध्यानं पुष्पं समर्पयामि-
इत्यादीनि प्रति उपचारं वदेत् ।

तत्पश्चाद् वक्ष्यमाणैः मन्त्रैः त्रिदण्डाधिदैवतं प्रार्थयेत् ।

अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्तताग्रे ।
तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधाविजायते ।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन् हतस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥

यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः ।
पूर्वोयो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥

कम न हो हमें बहुत अधिक मात्रा में अन्न हो तथा समय-समय पर अतिथिगण उपलब्ध होते रहें । हमलोगों से याचना करनेवाले लोग हों तथा हम सव किसी से याचना नहीं करें । ये उपर्युक्त आशीर्वाद सत्य हों ।

तत्पश्चात् प्रत्येक पिण्ड पर पवित्री सहित त्रिकुशा रखकर दक्षिण दिशा की ओर जानेवाली जलधारा प्रदान करें । एवं जलधारा प्रदान करने में ऊर्ज्जं वहन्ति...इत्यादि मन्त्र को पढें । जलधारा प्रदान करने के पश्चात् थोडा झुककर पिण्डों को सूँघकर तथा क्रमशः पिण्डों को उठाकर पिण्ड के नीचे रखा हुआ दर्भ एवं पूर्व में रेखाओं के ऊपर घुमाये जानेवाले अंगार को आग में डालकर अर्घ पात्रों को थोडासा हिलाकर पुरोहित ब्राह्मण के लिये दातव्य दक्षिणा धन प्रदान करें तथा ओमद्य आदि दोनों दक्षिणा के संकल्प को पढकर उत्सर्ग करें । इस श्राद्ध क्रिया को सम्पन्न करने के पश्चात् अपने से श्रेष्ठ लोगों को अपनी सम्प्रदाय परम्परा के अनुसार दण्डवत् प्रणाम करके आप सव क्षमा करें यह कहकर उन्हें विसर्जन करके रक्षादीप को बुझाकर श्रीरामाय नमः आदि मन्त्रों से आचमन करके श्रीरामगायत्री को तीनवार जप करके अग्रिम मन्त्रों को पढें ।

कर्म करनेवाले पुरुषों के द्वारा असावधानी वश जो यज्ञों में किसी तरह की त्रुटि हो जाती है वह सव भगवान् विष्णु-सर्वेश्वर श्रीरामजी के स्मरण मात्र से ही

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन् ।

यस्त्वेवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा असन्वशे ॥

श्रीश्चते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रेपार्श्वे नक्षत्राणिरूपमश्विनौ व्यात्तम् । इष्णन्निषाणमुम्म इषाण सर्वलोकम्म इषाण ॥ ॐभूर्भवः स्वः त्रिदण्डादि देवताभ्यो नमोनमः प्रार्थनां समर्पयामि ॥१६॥

इति श्रीआनन्दभाष्यसिंहासनासीन

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्यकृतौ श्रीवैष्णवसंन्यास मीमांसायां त्रिदण्डनिर्माण एवं पूजनविधिः सम्पन्नः

卐 श्रीरामः शरणं मम 卐

॥ अथ संन्यासविधिः ॥

卐 ॐ नमः परमात्मने श्रीब्रह्मणे पुराणपुरुषोत्तमाय श्रीरामाय 卐

अथ संन्यासाधिकारसिद्धये कृच्छ्रचतुष्टयं, तप्तकृच्छ्रमेकं प्राजापत्यं वा

सम्पूर्ण हो जाता है इसप्रकार का वेद वचन है। जिसके स्मरण और नामोच्चारण के द्वारा तपस्या यज्ञ क्रिया आदि में न्यूनता सम्पूर्णता को प्राप्त करती है उस अच्युत परब्रह्म सर्वेश्वर श्रीरामजी को मैं प्रणाम करता हूँ।

तत्पश्चात् पूर्वकाल में बनाये गये त्रिदण्ड कमण्डलु आदि में से त्रिदण्ड को लेकर व्यवस्थित रखकर १०० वार ब्रह्मतारक श्रीराम मन्त्र से त्रिदण्ड का स्नान कराकर पुरुषसूक्त के प्रत्येक मन्त्र पढकर षोडशोपचार से त्रिदण्ड का पूजन करें। निर्दिष्ट मन्त्रों के द्वारा त्रिदण्ड में अधिदेवता का आवाहन, आसनदान, पाद्य, अर्घ्य आदि षोडशोपचार से पूजन करके अद्भ्यः सम्भृतः आदि श्रीश्चते पर्यन्त छवों मन्त्रों से त्रिदण्ड के अधिदेवता भगवान् श्रीरामजी की स्तुति करें।

इसप्रकार श्रीआनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्व रानन्दाचार्यजी की कृति श्रीवैष्णवसंन्यास मीमांसा में त्रिदण्ड निर्माण एवं पूजन विधि सम्पन्न हुआ ॥१६॥

श्रीवैष्णव संन्यास विधान

ॐनमः परमात्मने श्रीब्रह्मणे पुराणपुरुषोत्तमाय श्रीरामाय

इसके वाद संन्यास ग्रहण करने अधिकार सिद्धि के लिये चार कृच्छ्र व्रत या

व्रतं सम्प्रदायानुसारेणान्यद् वा व्रतं परिसमाप्य संन्यासयोग्यता भवति। तदाह कात्यायनः-कृच्छ्रचतुष्टयमनाश्रमिभिः कार्यम्, कृच्छ्रमेकमाश्रमिभिः। द्वादश्यां पौर्णमास्यां वा सङ्कल्प्यवपनं कृत्वा, देवश्राद्धम् प्रथमम्, ऋषिश्राद्धं द्वितीयं दिव्यश्राद्धं तृतीयं, पित्र्यं चतुर्थं, मातृकं पञ्चम्, मानुषं षष्ठं, भौतिकं सप्तमम्, आत्मनीनञ्चाष्टममिति। अत्र संन्यासिनां साधनविषये आह श्रीबोधायनाचार्य यष्टयः शिक्यं कमण्डलुं जलपवित्रं पात्रमित्येतानि।

श्रीवशिष्ठस्तुः-त्रिदण्डमासनं कन्थां शिक्यं पात्रं कमण्डलुम्।
षण्णां परिग्रहं कुर्यात् शेषं वित्तं त्यजेद्बुधः॥
द्रव्यत्यागं प्रकुर्वाणो मलशुद्धिविधीयते।
अत्यागे पुत्रवित्तानां संन्यासं नैव कारयेत्॥

कात्यायनमते तु-त्रिदण्डजलपवित्रशिक्यपात्रकौपीनकाषायवस्त्राण्यग्निसंन्निधौ संस्थाप्यानग्निमानग्निमुत्पादयेदिति। एवमादिधर्मशास्त्रकर्तृणां सिद्धान्तं विविच्याभिधीयते। संन्यासग्रहणात् पूर्वं देवतायतने ग्रामे ग्रामसीमान्ते नदीपुलिनेऽन्यस्मिन् वा पुण्यस्थाने विहितदैवादिश्राद्धक्रियो मुमुक्षुः परमविरक्तः श्रीवैष्णवसंन्यासग्रहणमहंकरोमीति सङ्कल्पं विधाय, षोडशोपचारैरन्योपचारैश्च श्रीहनुमन्तं सम्पूज्य-

यो वारांनिधिमल्पपल्वलमिवोल्लंघ्य प्रतापान्वितो
वैदेही घनतल्पशोकहरणो वैकुण्ठभक्तप्रियः।
अक्षाद्यूर्जितराक्षसेश्वरमहादर्पापहारी रणे
सोऽयं वानरपुङ्गवोऽवतु सदा चास्मान् समीरात्मजः॥

एक तप्तकृच्छ्र अथवा प्राजापत्य व्रत अपनी सम्प्रदाय परम्परा के अनुसार अन्य कोई व्रत को परिपूर्ण कर संन्यास ग्रहण करने की योग्यता होती है। इस विषय वस्तु को कात्यायन कहते हैं कि "विना आश्रम वाले मुमुक्षुओं के द्वारा चार कृच्छ्र व्रत किया जाना चाहिये। आश्रमवासी के द्वारा एक कृच्छ्र व्रत किया जाना चाहिये। द्वादशी अथवा पौर्णमासी को संकल्प करके क्षौरकर्म कराकर पहले देवश्राद्ध, द्वितीय ऋषिश्राद्ध, तृतीय दिव्यश्राद्ध, चतुर्थ पितृश्राद्ध, पाँचवाँ मातृश्राद्ध, छठा मनुष्य श्राद्ध, सातवाँ भौतिक श्राद्ध, एवं आठवाँ आत्महित के लिये श्राद्ध करके इस विषय में

ॐअन्वग्निरुषसामग्रमवख्यदन्वहानि प्रथमोजातवेदाः ।
अनुसूर्यस्य पुरुत्रा चशमीननुद्यावा पृथिवीऽआतर्तथ ॥

इतिमन्त्रेण ब्रह्मचारी लौकिकाग्नीं, विरक्तो ॐकारसहितेन श्रीराम मन्त्रेण अग्निमानीय ''ॐ पृष्टोदिवि पृष्टोऽअग्निं पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीराविवेश । वैश्वानरः सह सापृष्टोऽअग्निं सनो दिवासरिषस्पातु नक्तम्'' इति मन्त्रेण वेद्यां अग्नीं संस्थाप्य तेनैव मन्त्रेण प्रज्वालयेत् । ॐ तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् । ॐ तां सवि तुर्वरेण्यस्य चित्तामाहं वृणेसुमतीं विश्वजन्याम्, यामस्य कायोऽअदुहत् प्रपीनां सहस्रधारा मासासामहीङ्गाम ॥ ॐविश्वानिदेव सवितुर्दुरितानि परासुव यद्भद्रं तन्न आसुव'' इति त्रिभिः मन्त्रैः तिस्रः समिधः अग्नौ संस्थाप्य । रक्षादीपं प्रज्वाल्य, पवित्रेस्थो इति मन्त्रेण पवित्रधारणं विधाय ।

ॐश्रीरामाय नमः ॐश्रीरामभद्राय नमः, ॐश्रीरामचन्द्राय नमः, इति मन्त्रैः त्रिराचम्य ॐराघवेन्द्राय इति हस्तप्रक्षालनं विधाय । ॐअपवित्रः पवित्रो वा...इति मन्त्रेण पूजाद्रव्याणि स्वात्मानं चाभिषिच्य । हस्ते पुष्पाण्यादाय-भद्रसूक्तं पठेत्-ॐआनोभद्राः क्रतवोयन्तु व्विश्वतो दब्ब्धासोऽअपरीतासऽउद्भिदः । देवानोयथा सदमिद्वृधेऽअसन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे ॥ देवानाम्भद्रासुमतिर्ऋजूयतान्देवानाꣳरातिरभिनो निवर्तताम् । देवानाꣳसक्ख्यमुपसेदिमाव्वयन्देवा नऽआयुः प्रतिरन्तुजीवसे ॥ तान्पूर्व्वंयानिविदाहूमहेव्वयम्भगम्मित्रमदितिन्दक्षमस्त्रिधम् । अर्य्यमणं व्वरुणꣳसोममश्विनासरस्वतीनः सुभगामयस्करत् ॥ तन्नोव्वातोमयोभुव्वातुभे

संन्यासियों के उपकरण के विषय में आचार्य श्रीबौधायनजी कहते हैं कि ''दण्ड, शिक्य, कमण्डलु, जल पवित्री एवं पात्र ये सव संन्यासी के साधन होते हैं'' । श्रीवशिष्ठजी तो कहते हैं कि त्रिदण्ड, आसन, कन्था, शिक्य, पात्र एवं कमण्डलु, इन छः वस्तुओं का संन्यासी परिग्रह करे । इससे अतिरिक्त सभी धनों को समझदार संन्यासी परित्याग कर दे । पुत्र एवं धन आदि का विना त्याग किये संन्यास ग्रहण नहीं करना चाहिये । कात्यायन के सिद्धान्तानुसार तो त्रिदण्ड, जल पवित्र, शिक्य, पात्र, कौपीन एवं काषाय वस्त्र को अग्नि के समीप में रखकर जो आहिताग्नि व्यक्ति नहीं

षजन्तन्मातापृथिवी तत्पिता द्यौः । तद्ग्रावाणः सोमसुतोमयोभुवस्त दश्विनाश्रृणुतन्धिष्ण्ययायुवम् ॥ तमीशानञ्जगतस्तस्थुषस्पतिन्धि यञ्जिन्वमवसे हूमहेव्वयम् । पूषानो यथा व्वेद सामसद्वृधे रक्षितापायुरदब्धः स्वस्तये ॥ स्वस्तिनऽइन्द्रोव्वृद्धश्रवाः स्वस्तिनःपूषाव्विश्ववेदाः । स्वस्तिनस्तार्क्ष्योऽअरिष्टनेमिः स्वस्तिनो बृहस्पतिर्द्दधातु ॥ पृषदश्वामरुतः पृश्निमातरः शुभँय्यावानो व्विदथेषु जग्मयः । अग्निजिह्वामनवः सूरचक्षसो व्विश्वेनोदेवाऽअवसागमन्निह । भद्रङ्कर्णेभिः शृणुयामदेवाः भद्रम्पश्येमाक्षभिर्य्यजत्राः । स्थिरैरङ्गै स्तुष्टुवाᳪसस्तनूभिर्व्व्यशेमहि देवहितंय्यदायुः । शतमिन्नुशरदोऽअन्तिदेवा यत्रानश्च्चक्राजरसन्तनूनाम् । पुत्रासोयत्रपितरो भवन्तिमानोमद्ध्यारीरिषतायुर्ग्गन्तोः ॥ अदितिर्द्यौर दितिरन्तरिक्षमदितिर्म्माता सपितासपुत्रः । व्विश्वेदेवाऽअदितिः पञ्चजनाऽअ दितिर्ज्जातमदितिर्ज्जनित्वम् ॥ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षᳪशान्तिः पृथिवीशान्ति रापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिसर्व्वᳪशान्तिः शान्तिरेवशान्तिः सामाशान्तिरेधि । यतो यतः समीहसे ततो नोऽअभयं कुरु । शन्नः कुरुप्रजाब्भ्यो भयन्नः पशुब्भ्यः ॥ ॐशान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

ततः सङ्कल्पं कुर्यात्-ओमद्य विष्णुर्विष्णुर्हरिर्हरिः-भगवतः परमात्मनः परब्रह्मणः पुराणपुरुषोत्तमस्य श्रीरामस्याज्ञया साकेताधिनाथस्य नित्य पार्षदत्वप्राप्तिकामनया श्रीवैष्णवसंन्यासग्रहणकर्मणि अर्घ्य पाद्य आचम नीय स्नान वस्त्रोपवस्त्र यज्ञोपवीतगन्धपुष्प धूपदीप नैवैद्य ऋतुफल ताम्बूल दक्षिणादिभिः श्रीहनुमत्पूजनमहं करिष्ये ।

है वह अग्नि स्थापन करे । इत्यादि धर्मशास्त्रकारों के सिद्धान्त का विवेचन कर संन्यास ग्रहण करने के विषय में कहा जाता है । संन्यास ग्रहण करने से पहले देव मन्दिर, गाँव, ग्राम सीमान्त, नदीतट, अथवा अन्य किसी पुण्यजनक पवित्र स्थान पर जिसने दैव आदि आठ श्राद्धों को सम्पन्न करलिया है ऐसा मुमुक्षु परम विरक्त व्यक्ति श्रीवैष्णव "संन्यास ग्रहण मैं कररहा हूँ" इसप्रकार संकल्प करके षोडशोपचार अथवा अन्य उपचार से श्रीहनुमानजी की सम्यक् पूजा करके-

ततः षोडशोपचारेण श्रीहनुमत्पूजनानन्तरं पुण्याहवाचनं कुर्यात् । प्राग ग्रान्दर्भान् धान्यराशौ संस्तीर्य, तेषु सूत्रवेष्टितकुम्भं निधाय, तस्मिन् शुद्धजलं ॐभूर्भुवः स्वरोम् इति व्याहृतिभिरापूर्यकलशाधारस्थलं संस्कुर्यात् । ॐमहीद्यौः पृथिवीचन इमं यज्ञमिमिक्षताम् । पितृतान्नोभरीमभिः ।

ततः धान्यपुञ्जं विकिरेत्-

ॐधान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणायत्वोदानायत्वा व्यानायत्वा । दीर्घामनुप्रसीतिमायुषेधान्देवो वः सविताहिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषेत्वा महीनाम्पयोसि ।

ततः कलशं संस्थापयेत्-

ॐआजिघ्रकलशं मह्यात्वा विशन्त्विन्दवः । पुनरुर्जानिवर्त्तस्वसानः सहस्त्रं धुक्ष्वोरुधारा पयस्वतीपुनर्मा विशताद्रयिः ।

ततः जलं पूरयेत्-

ॐवरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्यस्कम्भसर्जनीस्थो वरुणस्यऽऋत सदन्यसि वरुणस्यऽऋतसदनमसि वरुणस्यऽऋतसदनमासीद । ततः कलशे गन्धं प्रक्षिपेत्-ॐ त्वां गन्धर्वा अखनं स्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः । त्वामोषधे सोमो राजा विद्वान्यक्ष्मादमुच्यत । ततः कलशे सर्वोषधी निदध्यात्-ॐ याऽओषधिः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगम्पुरा । मनैनुषभ्रुणामहꣳशतन्धा मानि सप्त च । ततः कलशे दूर्वाः निरध्यात्-ॐकाण्डात् काण्डात्प्ररोहन्ति पुरुषः परुषस्परि। एवानो दूर्वे प्रतनु सहस्त्रेण शतेन च । (एक विंशति कुशनिर्मितं कूर्चं कलशे प्रक्षिपेत्)

जो महान पराक्रम सम्पन्न बानर श्रेष्ठ पवनतनय समुद्र को छोटा जलाशय के समान लाँघकर जनकतनया श्रीसीताजी के महान् शोक शल्या को निवारण करनेवाले भगवान् श्रीरामजी के भक्तों का प्रिय अक्षय कुमार आदि महान् पराक्रमी के घातक राक्षसराज के युद्ध में उसके गर्व का अपहरण करनेवाले हैं वे ये श्रीहनुमानजी जो बानर श्रेष्ठ पवनतनय हैं वे हम सभी की रक्षा करें ।

तत्पश्चात् ॐअन्वग्नि...इस मन्त्र से ब्रह्मचारी एवं विरक्त पुरुष ओंकार सहित श्रीराममन्त्र से अग्नि का आवाहन कर ॐ पृष्टोदिवि...इस मन्त्र से वेदी के ऊपर

कूर्चाग्रराक्षसाङ्धाराञ् छिन्धि कर्मविघातिनः ।
त्वामर्पयामि कुम्भेऽस्मिन् साफल्यं कुरुकर्मणि ॥

ततः कलशे पञ्चपल्लवान् निदध्यात्-

वृक्षराजसमुद्भूता शाखायाः पल्लवन्त्वचः ।
युष्मान् कुम्भेष्वर्पयामि सर्वपापानुपत्तये ॥

ततः कलशे सप्तमृत्तिकाः निदध्यात्-

ॐस्योनापृथिवी नो भवानृक्षरानिवेशनि । यच्छानः शर्म स प्रथाः ॥

ततः कलशे पूलीफलं निदध्यात्-

याः फलनीर्याऽअफलाऽअपुष्पायाश्च पुष्पिणीः ।
बृहस्पतिप्रसूतास्तानो मुञ्चत्वꣳहसः ॥

ततः कलशे पञ्चरत्नानि निदध्यात्-

ॐपरिवाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत । दधद्रत्नानि दाशुषे ।

ततः कलशे हिरण्यं निदध्यात्-

ॐहिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत् ।
सदाधारपृथिवीं द्यामुतेमा कस्मैदेवाय हविषा विधेम ॥

ततः वस्त्रेण कलशं वेष्टयेत्-

ॐसुजातो ज्योतिषा सहशर्मवरुथमासदत्स्वः ।
वासोऽअग्ने विश्वरूपꣳसम्व्ययस्व विभावसो ॥

ततः पूर्णपात्रस्थापनम्-

संस्थापित कर उसी मन्त्र से अग्नि को प्रज्वलित करें । "ॐतत्सवितुवरेण्यम् यहाँ से लेकर ॐविश्वानिदेव सवितः" पर्यन्त तीनों मन्त्रों से तीन काष्ठों को संस्थापित कर, रक्षाद्वीप को प्रज्वलित कर पवित्रेस्थो...इस मन्त्र से पवित्र धारण करके ॐरामाय नमः आदि मन्त्रों से तीनवार आचमन एवं हस्त प्रक्षालन करके 'ॐअपवित्रः पवित्रो वा...इस मन्त्र से पूजा के उपकरण एवं स्वयं को अभिषिक्त कर हाथ में पुष्प लेकर "ॐआनोभद्रा से आरम्भकर ॐशान्तिः शान्तिः पर्यन्त भद्रसूक्त का पाठकरे। तत्पश्चात् संकल्प कर श्रीहनुमानजी का षोडशोपचार द्वारा पूजन करके पुण्याह वाचन करावे। पूर्व दिशा में जिनका अग्र भाग है ऐसे दर्भों को अनाज के ढेर पर विछाकर उन दर्भों

ॐपूर्णादर्विपरापतसुपूर्णापुनरापत । वस्वेव विक्रीणा वहाऽइषमूर्जं शतक्रतो ।

ततः नारिकेलं संस्थापयेत्-

ॐश्रीश्चते लक्ष्मीश्चपत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् । इष्णन्निषाणामुम्मइषाण सर्वलोकम्म इषाण ।

ततः कलशमध्ये श्रीरामस्य धनुर्बाणावावाह्य पञ्चोपचारैः पूजयेत् ।

असुराणां घातकौसुराणां भयनाशकौ प्रपन्नमोक्षप्रदौ श्रीरामधनुर्वाणौ इहागच्छतमिहतिष्ठतम् । सर्वोपचारार्थम् गन्धाक्षतपुष्पाणि समर्पयामि ।

स्वचिह्नबाहुमूलेभ्यः सीतारामाङ्घ्रिभक्तिदौ ।
श्रीराममुष्टिशोभाप्तौ धनुर्वाणौ नमाम्यहम् ॥

पुण्याह वाचनम्

ततो दर्भहस्तान् चतुः संख्याकान् श्रीवैष्णवान् ब्राह्मणान् स्वपुरतः संप्रतिष्ठाप्य तन्मुखेन पुण्याहवाचनं कारयेत् ।

ततो जलाक्षतगन्धपुष्पताम्बूलदक्षिणादिभिः तान् पूजयेत् ते च यजमानवचनानुसारेणानुकूलानि प्रतिवचनानि बदेयुः ।

यजमानः ॐशिवा आपः सन्तु-इति तेषां हस्तेषु जलं दद्यात् ।

श्रीवैष्णवाः-सन्तु शिवा आपः । इति प्रतिपदेयुः ।

यज० ॐसौमनस्यमस्तु-इति पुष्पम्...

श्रीवैष्णवाः-अस्तु सौमनस्यम् (इतिप्रतिवचनम्)

के ऊपर सूत्र जिसमें लपेटा हुआ है ऐसे घटको स्थापित करके "ॐभूर्भुवः स्वरोम्" इस व्याहृति मन्त्र के द्वारा पवित्र जलसे भरकर कलशाधार स्थान को अग्रिम मन्त्र के द्वारा सुसंस्कृत करे ।

तत्पश्चात् 'धान्यमसि धिनुहिदेवान्...इस मन्त्र के द्वारा धान्यराशि को फैलावे । पुनः आजिघ्र कलशं मह्यात्वा...इस मन्त्र के द्वारा कलश को संस्थापित करे । ॐवरुणस्योत्तम्भनमसि...इस मन्त्र के द्वारा कलश में पवित्र जल भर दे । त्वां गन्धर्वा अखनं स्त्वा...इस मन्त्र के द्वारा कलश में गन्ध चन्दनादि डाले । याऽओषधिः...इस मन्त्र के द्वारा कलश में सर्वौषधि रखे । काण्डात्काण्डातप्ररोहन्ति...के द्वारा २१ दर्भो

यज. ॐअक्षतञ्चारिष्टञ्चास्तु-इति अक्षतान्...

श्रीवैष्णवाः-सन्तु अक्षतमरिष्टं च (प्रति.)

यज. ॐगन्धाः पान्तु...इति तेषां हस्तेषु गन्धदानम्

श्रीवैष्णवाः-सौमङ्गल्यञ्चास्तु (प्रतिवचनम्)

यजमानः-ॐअक्षताः पान्तु...हस्तेषु अक्षतदानम्

श्रीवैष्णवाः-आयुष्यमस्तु-(प्रति.)

यजमानः-ॐपुष्पाणि पान्तु-पुष्पदानम्

श्रीवैष्णवाः-सौश्रियमस्तु-(प्रति.)

यजमानः-ॐसफलानि ताम्बूलानि पान्तु-ताम्बूलादिदानं

श्रीवैष्णवाः-ऐश्वर्यमस्तु-प्रतिवचनम्

यजमानः-ॐदक्षिणाः पान्तु-दक्षिणादानम्

श्रीवैष्णवाः-बहुदेयञ्चास्तु...प्रतिवचनम्

यजमानः-भो भो श्रीवैष्णवा अस्मिन् पुण्याहवाचनकर्मणि भवतां मनः समाधीयताम्। समाहितमनसः स्मः, इति श्रीवैष्णवानां प्रतिवचनम्। यजमानः-प्रसीदन्तु भवन्तः, श्रीवैष्णवा-प्रसन्नाः स्मः, यजमानः-भवद्भिरनुज्ञातः पुण्यं पुण्याहं वाचयिष्ये, श्रीवैष्णवाः-वाच्यताम्। ततः कुम्भं वामहस्ते निधायदक्षिणेनाच्छाद्य-यजमानः-भो भो श्रीवैष्णवाः-भगवदाज्ञया भगवतः श्रीरामस्यनित्यकैङ्कर्यलक्षणस्य श्रीवैष्णवसंन्यासाख्यस्य कर्मणः पुण्याहं भवन्तो व्रुवन्तु। श्रीवैष्णवाः-पुण्याहमस्तु (इति वारत्रयं व्रूयुः)

से बना हुआ कूर्च कलश में स्थापित करे। एवं कूर्चाग्रराक्षसाड्धाराञ् इत्यादि के द्वारा कूर्च की स्तुति करे। वृक्षराज समुद्भूता...इस मन्त्र के द्वारा कलश में पञ्चल्लवों को स्थापित करे। ॐस्योनापृथिवीनो...इस मन्त्र के द्वारा कलश में सप्तमृत्तिकाओं को स्थापित करे। याः फलनीर्याऽअफलाः इस मन्त्र के द्वारा कलश के अन्दर सुपारी रखे। ॐपरिवाजपतिः इत्यादि मन्त्र द्वारा कलश में पञ्चरत्नों को स्थापित करे। ॐ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे...इस मन्त्र के द्वारा कलश के अन्दर सुवर्ण रखे। ॐसुजातो ज्योतिषा० इस मन्त्र के द्वारा कलश को वस्त्र से लपेट दे। ॐपूर्णादर्वि परापत...इस मन्त्र के द्वारा कलश के ऊपर पूर्ण पात्र स्थापित करे। ॐश्रीश्चते लक्ष्मीश्च पत्न्या...इस

यज. भो भो श्रीवैष्णवाः भगवदाज्ञया भगवतः श्रीरामस्य नित्यकैङ्कर्यलक्षणस्य श्रीवैष्णवसंन्यासाख्यस्य कर्मणः कल्याणं भवन्तो ब्रुवन्तु । श्रीवै. कल्याणमस्तु (इति वारत्रयं ब्रूयुः) यज. भो भो श्रीवैष्णवाः भगवदाज्ञया भगवतः श्रीरामस्य नित्यकैङ्कर्यलक्षणस्य श्रीवैष्णवसंन्या साख्यस्य कर्मणः ऋद्धिरस्त्विति भवन्तो ब्रुवन्तु । श्रीवैष्णवाः-ऋद्धिरस्तु कर्मऋद्ध्यताम् (वारत्रयम्) यज. भो भो श्रीवैष्णवाः भगवदाज्ञया भगवतः श्रीरामस्य नित्यकैङ्कर्यलक्षणस्य श्रीवैष्णवसंन्यासाख्यस्य कर्मणः स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्तु । श्रीवैष्णवाः-स्वस्त्यस्तु (वाचत्रयम्) यज. भो भो श्रीवै ष्णवाः भगवदाज्ञया भगवतः श्रीरामस्य नित्यकैङ्कर्यलक्षणस्य श्रीवैष्णवसंन्या साख्यस्य कर्मणः पुण्याहे समृद्धिरस्तु शिवं कर्मास्तु प्रजापतिः प्रीयताम् इति भवन्तो ब्रुवन्तु श्रीवैष्णवाः-अस्तु प्रीयताम् भगवान् प्रजापतिः (वारत्रयम्) तदनन्तरं दर्भकूर्चेन पल्लवेन च पर्णपुटे जलं अधोनिर्दिष्टैः मन्त्रैः क्षिपन्तःब्रुयुः-

शान्तिरस्तु पुष्टिरस्तु, तुष्टिरस्तु, ऋद्धिरस्तु, अविघ्नमस्तु, आयुष्यमस्तु, आरोग्यमस्तु, धनधान्यसमृद्धिरस्तु गोभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च शुभम् भवतु । तत अरिष्टनिरसनमस्तु । इत्युक्त्वा जलं त्यजेत्-आग्नेय्यां दक्षिणस्यां च यत् पापं तत् प्रतिहतमस्तु पुनः-पर्णपुटे-उत्तरेकर्मणि अविघ्नमस्तु । उत्तरोत्तरमभि वृद्धिरस्तु, सर्वं शोभनमस्तु । सर्वाः सम्पदः सन्तु ।

तदनन्तरं पर्णपुटस्थितं जलं अधोलिखितं वाक्यं त्रिरुच्चार्य कुम्भे निक्षिपेत्-ॐशुभानि वर्द्धन्ताम् । ॐशान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

ततः पूर्वोक्ताः चत्वारः श्रीवैष्णवाः कुशेन जलं स्पृशन्तः अधोलि खितान् शुद्धिमन्त्रान् सावधानतया पठेयुः ।

मन्त्र को पढकर पूर्णपात्र के ऊपर नारिकेल (श्रीफल) संस्थापित करे। तत्पश्चात् कलश के मध्य में सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के धनुष और वाण का आवाहन करके पञ्चोपचार से उनकी पूजा करे। और असुराणां घातकौ...आदि दोनों मन्त्रों से उनकी प्रार्थना करें। जो दैत्यों का विनाश करनेवाले हैं एवं देवताओं के भयका निवारण करनेवाले हैं एवं शरणागत को मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं ऐसे भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के धनुष और बाण इस कलश के मध्य आकार विराजमान होवें ।

शुद्धयेस्तु परोदेवो वासुदेवोऽस्तु शुद्धये ।
सङ्कर्षणः शुद्धयेस्तु प्रद्युम्नश्चास्तु शुद्धये ॥
शुद्धयेस्त्वनिरुद्धोऽपि केशवश्चास्तु शुद्धये ।
नारायणोऽस्तु विश्वेशः शुद्धये सर्वकर्मसु ॥
शुद्धयेमाधवश्चास्तु सर्वलोकहितेरतः ।
गोविन्दः शुद्धये चास्तु परमात्मा सनातनः ॥
शुद्धये विष्णुरस्त्वाद्यः शुद्धये मधुसूदनः ।
सर्वलोकहितोदेवः शुद्धयेऽस्तु त्रिविक्रमः ॥
वामनः शुद्धये चास्तु श्रीधरश्चास्तु शुद्धये ।
शुद्धयेऽस्तु हृषीकेषः पद्मनाभोऽस्तु शुद्धये ॥
सदा दामोदरो देवः शुद्धयेऽस्तु जगत्पतिः ।
शुद्धये पद्मनाभोऽस्तु शुद्धयेऽस्तु सदा ध्रुवः ॥
अनन्तः शुद्धये चास्तु शक्त्यात्मा चास्तु शुद्धये ।
सर्वकर्मसु चैवास्तु शुद्धये मधुसूदनः ॥
सदा विद्याधिदेवोऽस्तु शुद्धये कपिलस्तथा ।
शुद्धये विश्वरूपोऽस्तु शुद्धयेऽस्तु विहङ्गमः ॥
क्रोडात्मा शुद्धये चास्तु शुद्धये वडवानलः ।
शुद्धयेऽस्तु सदाधर्मश्चास्तु वागीश्वरस्तथा ॥
देव एकार्णवशयः शुद्धयेऽस्तु निरन्तरम् ।
शुद्धयेऽस्तु सदा देवः कूर्मः पातालधारकः ॥

जो धनुष बाण अपने से चिह्नित बाहुमूल वाले भक्त मानवों जनकनन्दनी श्रीसीताजी सहित भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में भक्ति भावना प्रदान करनेवाले हैं । और जो भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की मुठ्ठी का सम्पर्क पाने के कारण सुशोभित हुए हैं । ऐसे श्रीरामजी के धनुष बाणों को मैं प्रणाम करता हूँ ।

तत्पश्चात् हाथ में दर्भ (कुश) धारण किये हुए चार श्रीवैष्णव ब्राह्मणों को, संन्यास ग्रहण करने के लिये दीक्षित मुमुक्षु यजमान अपने आगे सम्यक् प्रकार से आसन पर वैठाकर उनके मुँह से पुण्याह वाचन करावें । तत्पश्चात् जल अक्षत गन्ध

वराहः शुद्धयेचास्तु नारसिंहोऽस्तु शुद्धये ।
अमृताहरणश्चास्तु शुद्धये सर्वकर्मणाम् ॥
श्रीपतिः शुद्धयेचास्तु शान्तात्मा चास्तु शुद्धये ।
शुद्धये राहुजिच्चास्तु कालनेमिघ्न एव च ॥
पारिजातहरश्चास्तु लोकनाथोऽस्तु शुद्धये ।
सर्वत्र शुद्धयेचास्तु दत्तात्रेयोमहाप्रभुः ॥
न्यग्रोधशायी भगवान् शुद्धयेचास्तु सर्वदा ।
एकशृङ्गतनुश्चास्तु वामनश्चापि शुद्धये ॥
त्रिविक्रमः शुद्धयेऽस्तु शुद्धयेऽस्तु नरः सदा ।
नारायणः शुद्धयेऽस्तु हरिकृष्णश्च शुद्धये ॥
ज्वलत्परशुधृग्रामः शुद्धयेऽस्तु धनुर्धरः ।
रामश्च शुद्धयेचास्तु वेदविद्भगवाँस्ततः ॥
शुद्धयेऽस्तु सदा कल्की सर्वदोषक्षयंकरः ।
शुद्धयेऽस्तु सदा देवः पातालशयनः प्रभुः ॥
शुद्धये सन्तु सर्वेषां सर्वे सर्वत्र सर्वदा ।
एते सर्वे सदा देवाः शान्तये सन्तु पूजिताः ॥
ऋद्धये पुष्टये सन्तु सिद्धये भक्तयेऽपि च ।
शिवाय मुक्तये सन्तु वृद्धये सर्वकर्मणाम् ॥
मन्त्राणां देशिकानाञ्च स्थानानामपि सर्वदा ।
पुत्रमित्र कलत्राणां दासीदासगवामपि ॥

पुष्प ताम्बूल दक्षिणा आदि से मन्त्र पाठ पूर्वक उनचारो श्रीवैष्णव ब्राह्मणों की पूजा करें। एवं अपने प्रार्थना के अनुकूल उन से प्रति वचन बोलावे। शिवा आपः सन्तु आदि संकेतित मन्त्रों को उच्चारण करे एवं संकेतित प्रत्युत्तर उनसे कहलावे। साथ ही गन्ध आदि निदिष्ट वस्तु प्रदान करें। यह क्रम दक्षिणा पान्तु, बहुदेयञ्चास्तु पर्यन्त करें।

तत्पश्चात् यजमान ब्राह्मणों को प्रार्थना करे कि हे श्रीवैष्णव ब्राह्मणो इस पुण्याह

वेदशास्त्रागमादीनां व्रतानामिष्टसम्पदाम् ।
मनोरथानां सर्वेषां हितानां सन्तु सर्वदा ॥
आयुष्यारोग्यमेधानांधनधान्यादि सम्पदाम् ।
पुण्यानामणिमादीनां गुणानांश्रेयसामपि ॥
राज्ञोजनपदस्यापि यजमानस्य मन्त्रिणाम् ।
वैष्णवानां विशेषेण परत्रहितमिच्छताम् ॥
पञ्चकालविशुद्धानां सत्वस्थानांशुभात्मनाम् ।
स्वस्त्यस्तु च शिवं चास्तु शुभं चास्तु पुनः पुनः ॥
अविघ्नमनिशं चास्तु दीर्घमायुष्यमस्तु वै ।
समाहितं मनश्चास्तु सम्पदश्चोत्तरोत्तरम् ॥
पुण्याहं शुद्धयेचास्तु वासुदेवादिमूर्त्तयः ।
शङ्खचक्रगदापद्मयुक्तः सर्वेश्वरेश्वरः ॥
प्रीयतां भगवान्देवो लाङ्गली प्रीयतां सदा ।
प्रद्युम्नः प्रीयतां नित्यमनिरुद्धः सुरेश्वरः ॥
नारायणः सुरेशोऽपि कर्मणां पूरणाय च ।
न्यूनाधिकानां शान्त्यर्थं प्रीयतां प्रीयतां विभुः ॥

तदनन्तरं कुम्भे वरुणस्वरूपिणम्भगवन्तं साकेताधिनाथं श्रीरामचन्द्रं सप्रार्थनमावाह्य-पुरुषसूक्तेन षोडशोपचारेण च सम्पूज्य मूलमन्त्रेणाष्टोत्तर शतेनाभिमन्त्रयेत् । तज्जलेन च समस्तसंन्याससम्भारान् स्वात्मानञ्च प्रोक्षयेत् । तन्मन्त्रं यथा-

वाचन कर्म में आप सभी का मन एकाग्र होवे । एवं ब्राह्मण एकाग्रचित्त हैं ऐसा प्रत्युत्तर देवें । इसीतरह प्रसन्नां स्मः पर्यन्त प्रति वचन के वाद पुनः प्रार्थना करे कि हे श्रीवैष्णव ब्राह्मणो आप सभी से अनुमत होकर शरणागत परिपालक भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा से श्रीरामजी के नित्य कैङ्कर्य स्वरूप श्रीवैष्णव संन्यास धारण नामक कर्म का पुण्याह आपलोग कहें । इस प्रार्थना के वाद तीनवार पुण्याहमस्तु यह उच्चारण करें । इसीप्रकार कल्याण ऋद्धि स्वस्ति समृद्धि आदि वाचन की प्रार्थना

ॐवास्तोस्पते प्रतिजानी ह्यास्मान् स्वावेशोऽनमवोभवानः । यत्वेमहे प्रतितन्नो जुषस्वशन्नो भव द्विपदेशञ्चतुष्पदे ।

ॐवास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्कानो गोभिरश्वेभिरिन्दो । अजरासस्ते सख्येस्यामः पितेव पुत्रान्प्रति तन्नो जुषस्व । शन्नो भव द्विपदे शञ्चतुष्पदे ।

ॐवास्तोष्पते शग्मया संसदाते सक्षीमहिरण्मयागातुमत्या । आवहक्षेम उत योगेवरन्नो यूयं पातस्वस्तिभिः सदा नः ॥

ॐअमीवहा वास्तोष्पते विश्वारूपाण्याविशन् सखा सुखा सुशेव एधिनः ॥

ॐस्वस्तिन इन्द्रो वृद्धश्रवाः । स्वस्तिनः पूषाविश्ववेदाः । स्वस्तिनस्तार्क्ष्योऽअरिष्टनेमिः स्वस्तिनो बृहस्पतिर्दधातु ॥

तत्पश्चात् ॐआपोहिष्ठामयोभुवः ॐतानऊर्जे दधातन, इति द्वाभ्यां मन्त्राभ्यां श्मश्रुलोमनखान् नियोजयित्वा वपनं कारयेत् । तदुक्तं कात्यायन स्मृतौ–

आपोहिष्ठा इति द्वाभ्यां श्मश्रुलोमनखानि च ।
गोदानकविधानेन सर्वमन्त्रान्नियोजयेत् ॥
ततः समाचरेत्स्नानं हेमरुप्यकुशाम्भसः ।
कृत्वा तु वपनं विद्वान् भवेन्मुण्डोऽथवा शिखी ॥
स्नानमब्देवतैः कृत्वा तर्पयेत्पितृदेवताः ।
ऋषीं छन्दांसि वेदांश्च मनुष्यांश्च यथा विधि ॥

करे। एवं तीन तीन वार उत्तर में ब्राह्मण प्रत्युच्चारण करें। एवं भगवान् प्रजापति प्रसन्न हों यह तीन वार उच्चारण करें ।

इसके वाद दर्भ (कुश) से बनाहुआ कूर्च के द्वारा एवं पल्लव के द्वारा पत्ता के दोना में जल टपकावें एवं मन्त्रों का ब्राह्मण उच्चारण करते जायें एवं उक्त साधनों से जल टपकाते रहें । पुनः उन्ही साधनों से दोना के बाहर ईशान कोण में अरिष्ट निरसनमस्तु कहकर जल प्रक्षिप्त करे। एवं आग्नेय कोण तथा दक्षिण दिशा में "यत् पापं तत् प्रतिहतमस्तु कहकर जल प्रक्षेप करें। पुनः पत्ता के दोना में जल प्रक्षिप्त

इति वचनमनुसृत्यमुण्डनानन्तरं स्नात्वा पितॄन् देवानृषीन् छन्दांसि वेदान्मनुष्यांश्च तर्पयित्वा कुत्रचिद्देवमन्दिरे ग्रामे नदीत्स्टे वने वा उपविश्य दक्षिणजानोः उपरि उत्तानं वामहस्तं निधाय तत्र द्वे पवित्रे स्थापयित्वा, पवित्रोपरि उत्तानेन दक्षिणपाणिना विधानं कुर्यात् । इत्थं ब्रह्माञ्जलिं विधाय ब्रह्मणे नमः, इन्द्राय नमः, सूर्याय नमः, आत्मने नमः, परमात्मने नमः, इति मन्त्रं जपेत् । ततः आचम्य प्राणानायम्य मूलमन्त्रं जपेत् ।

तत्पश्चात् ओङ्कारोच्चारणेन सह सक्तुमुष्टीं मुक्त्वा आचम्य त्रिभिः मन्त्रैः नाभिमभिमन्त्रयेत् । ते च मन्त्राः ॐआत्मने स्वाहा, ॐअन्तरात्मने स्वाहा, ॐप्रजापतये स्वाहा इति ।

ततः "त्रिवृदसि त्रिवृतेत्वा" इति मन्त्रेण पयोदधिघृतानि प्रथमं प्राश्नीयात् । पुनः प्रवृदसि प्रवृत्तेत्वा इतिमन्त्रेणपयोदधिघृतानि प्राश्नीयात् । पुनश्च विवृदसि वृवृतेत्वा इति मन्त्रेण तृतीयवारंप्राश्नीयात् । तत्पश्चात्- ॐआपः पुनन्तु पृथिवीं पृथिवी पूता पुनातु मां पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मपूता पुनातु मां यदुच्छिष्टमभोज्यञ्च यद्वा दुश्चरितं मम सर्वं पुनन्तु मा मापोऽसतां च प्रतिग्रहं स्वाहा इति मन्त्रेण उदकं प्राश्नीयात् । ततः उपवासस्य संकल्पं विधाय सावित्रीं प्रविशेत् । तदुक्तं श्रीबोधायनेन ग्रामान्ते ग्रामसीमान्तेऽग्न्यगारे वा आज्यं पयोदधि संयुतं त्रिः प्राश्योपवसेत् । त्रिवृदसीति त्रिभिर्मन्त्रैः प्राश्नीयात् सकृदप "आपः पुनन्त्विति" पय आज्यालाभेऽअपः प्राश्नीयात् ।

करते हुये "उत्तरोत्तरमभिवृद्धिरस्तु" यह उच्चारण करें । एवं सर्वं शोभनमस्तु यह उच्चारण करें । एवं सर्वाः सम्पदः सन्तु यह उच्चारण करें ।

इसके वाद पत्ते के दोना में विद्यमान जल को अधोलिखित वाक्य को तीनवार उच्चारण करके घट में रख देवे । एवं ॐशुभानि वर्द्धन्ताम् ॐशान्तिः शान्तिः शान्तिः यह मन्त्र पढें । तत्पश्चात् पुण्याह वाचन करनेवाले पूर्व वर्णित चारों श्रीवैष्णव ब्राह्मण कुश से जल का स्पर्श करते हुये, अर्थात् कुश स्पृष्ट जल से यजमान को अभिषिक्त करते हुए अधोलिखित शुद्धिकारक मन्त्रों को पढें । परमात्मा परब्रह्म परमेश्वर शुद्धि जनक हों वासुदेव सङ्कर्षण एवं प्रद्युम्न यजमान के शुद्धिकारी होवें । भगवान् अनिरुद्ध शुद्धि के लिये हों एवं केशव भी शुद्धि जनक हों समस्त भुवनों के अधिनायक मानवों

श्रीबोधायनोक्तदिशा सावित्रीप्रवेशस्वरूपं यथा..."ॐभूः सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यं" ॐभुवः सावित्रीं प्रविशामि भर्गोदेवस्य धीमहि" "ॐस्वः सावित्रीं प्रविशामि धियो यो नः प्रचोदयात्"। ॐभूर्भुवः स्वः सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

सावित्रीप्रवेशानन्तरं किञ्चनापः प्राश्य, ब्रह्माणमुपवेश्य, ब्रह्मान्वाधानं कुर्यात् । तत् श्रीमताबोधायनाचार्येण निरूपितं यथा-पुरादित्यस्तमयाद् गार्हपत्यमुपसमाधायान्वाहार्यपचनमाहृत्यज्वलन्तमाहवनीयमुद्धृत्य गार्हपत्य माज्यं विलाप्योत्पूयसुचिचतुर्गृहीत्वा समिद्धेह्याहवनीये पूर्णाहुतिं जुहोत्यों स्वाहा इत्येतद् ब्रह्मान्वाधानमिति विज्ञायते ।

तत्पश्चात् सन्ध्यावन्दनं विधाय सवितरि अस्तमिते स्वयं स्वाग्नौ पुरुषसूक्तेन होमं कुर्यात् । पुरुषसूक्तेन हवनक्रिया सम्पादनानन्तरं सायं अग्निहोत्रे हुते उत्तरस्यां गार्हपत्यानि तृणानि संस्तीर्य तदुपरि त्रिदण्डपात्रादीनि संस्थाप्य कन्थां वासः कौपीनादिकं च संस्थाप्य दक्षिणस्यां दिशि च आहवनीयं ब्रह्मायतने कुशान् आस्तीर्य कृष्णाजिनमन्तर्धायैतां रात्रीं जागर्तीति श्रीबौधायनवचनम् । दत्तात्रेयस्मृतावप्युक्तम्-

के एक मात्र गति भगवान् श्रीनारायण समस्त क्रिया कलाप में शुद्धि शुद्धि के लिये हों । समस्त चराचर जगत का कल्याण करने में तत्पर माधव शुद्धिकारी हों । सनातन परमात्मा गोविन्द शुद्धि जनक हों । आदि विष्णु समस्त भुवनों में कण कण में व्यास रहनेवाले शुद्धिकारक हों तथा मधुसूदन शुद्धिकारी हों । सभी लोकों का हितैषी देवता त्रिविक्रम शुद्धिजनक हों, वामन शुद्धि के लिये हों एवं अज शुद्धि के लिये हों श्रीधर शुद्धि के लिये हों । सदैव देव दामोदर हृषीकेश (समस्त इन्द्रियों के स्वामी) एवं पद्मनाभ शुद्धिकारक होवें । शुद्धि के लिये पद्मनाभ हो तथा ध्रुव शुद्धि के लिये हों । अनन्त देव शुद्धि के लिये हों एवं शक्त्यात्मा शुद्धि के लिये हों । और समस्त कर्मों में शुद्धि के लिये मधुसूदन हों । विद्याओं के अधिदेवता भगवान् कपिल हर समय शुद्धि के लिये हों । विश्वरूप शुद्धि के लिये हों, तथा आकाश चारी विहङ्गम शुद्धि के लिये हों । शूकरावतारधारी वाराह विष्णु शुद्धि के लिये हों । तथा समुद्री वडवानल

होमं दत्वा तथासायं कुशान् कृष्णाजिनं ततः ।
ब्रह्मस्थाने समास्तीर्य ब्रह्मभावेन संस्थितः ॥
ब्रह्मरात्रीं ततो दत्वा विष्णौ संन्यस्यमानसम् ।
समभ्यर्च्यहृषीकेशं जपन्नेकाक्षरं परमिति ॥

श्रीबौधायनस्मृतावप्युक्तम्-य एवं विद्वान् ब्रह्मरात्रीमुपोष्य ब्राह्मणोऽग्नीन् समारोप्य वा प्रमीयते सर्वं पाप्मानं तरति तरति ब्रह्महत्याम् ॥ तत्पश्चाद् ब्राह्मेमुहुर्ते उत्थाय सन्ध्यावन्दनान्तं नित्यकृत्यं परिसमाप्य, आहिताग्निश्चेत् प्राजापत्येष्टिं कुर्यात् एकाग्निश्चेदाग्नेयीम् । दत्तात्रयेनाप्यभिहितम्-

ब्रह्मरात्री ततो दद्यात् पौर्णमास्यां द्विजोत्तमः ।
प्रातर्हुत्वा स्वकल्पेन कृत्वास्नानादिकां क्रियाम् ॥
प्राजापत्यां प्रतिपदि कृत्वेष्टिं तु यथा विधि ।
ततो विप्राय दद्यात्तु सर्ववेदसदक्षिणाम् ॥

शुद्धिकारी हों सदैव धर्म शुद्धि के लिये हों, तथा वागीश्वर शुद्धि के लिये हों। प्रलयकाल में समस्त भूमण्डल समुद्र जल से आप्लावित हो जाने के कारण एक मात्र समुद्र स्वरूप भुवन मण्डल हो जाता है, वे एकार्णवात्माभिरन्तर भगवान् शुद्धि के लिये हों पाताल को धारण करनेवाले कूर्म स्वरूप भगवान् विष्णु सदैव शुद्धिकारी हों। और वाराह भगवान् शुद्धि के लिये हों एवं नृसिंह भगवान् शुद्धि के लिये होवें। अमृत का आहरण करनेवाले सर्वेश्वर सभी कर्मकलापों की शुद्धि के लिये होवें। और लक्ष्मी नायक भगवान् शुद्धि के लिये हों एवं शान्तात्मा शुद्धि के लिये हों। राहु के ऊपर विजय प्राप्त करनेवाले शुद्धि के लिये हों तथा कालनेमि का वध करनेवाला भगवान् शुद्धिकारी हों। एवं पारिजात हरण करनेवाले भगवान् शुद्धिजनक हों तथा लोकनाथ शुद्धि के लिये हों तथा सभी स्थानों पर शुद्धि के लिये महाप्रभु दत्तात्रेय हों। वट पत्र पर शयन करनेवाले भगवान् मुकुन्द हर समय शुद्धि के लिये हों। एक श्रृंग शरीरधारी मत्स्यावतारी विष्णु शुद्धि के लिये हो, तथा भगवान् वामन भी शुद्धि के लिये हों। भगवान् त्रिविक्रम शुद्धि के लिये हों तथा नर-नारायण और हरिकृष्ण शुद्धि के लिये हों। जाज्वल्यमान फरसा को धारण करनेवाले परशुराम शुद्धि के लिये हों

पुनश्च अग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं पुरोडाशं निर्वपति, प्राजापत्यं चरुं वैष्णवं नवकपालं च । पुरुषसूक्तेन हुत्वा अग्निमुपतिष्ठेत् सहस्त्रशीर्षेत्य नेनानुवाकेनेति ।

ततः "आयुर्दा अग्ने हविषो जुषाम" इति मन्त्रेण अग्निं समीपे स्थापयित्वा प्रक्षाल्य प्राश्नाति, सहस्त्रशीर्षा इत्युनुवाकेनप्राश्य आचम्य- "ब्रह्मयज्ञानम्प्रथमंपुरस्ताद् विसीमतः सुरुचोव्वेन आबः, सबुध्न्याऽउप माऽअस्य विष्ठाः सतश्चयोनिमसतश्चविव्वः" इति मन्त्रेण अग्निद्रव्यमग्नौ प्रक्षिप्य ।

"सं मासिञ्चन्तु मरुतः समिन्द्रः संबृहस्पतिः संमायमग्निं सिञ्चत्वायुषा च बलेन चायुमन्तं करोतु माम्" इति मन्त्रं जपित्वा "या ते अग्ने यज्ञियास्त नूस्तयेह्यारोहात्मानमच्छा वसूनि कृण्वन्न स्मेनर्यी पुरुणि यज्ञोभूत्वा यज्ञमासीद स्वां योनिं जातवेदो भुव आ जायमानः सक्षय एहि" इति मन्त्रेण त्रिः आत्मनि अग्नीन् समारोप्य । तत्पश्चात् "अयं ते योनिर्ऋत्विजो यतो जातः प्राणादरोचथाः । तं प्राणं जानन्नग्न आरोहाया नोवर्धय रयिम्" इत्यनेन मन्त्रेणाग्निमाजिघ्रेत् । ततो मोक्षमन्त्रं जपेत् ।

एवं धनुर्धारी श्रीरामजी तथा वेद ज्ञानी भगवान् शुद्धि के लिये हों । समस्त दोषों का संहार करनेवाले भगवान् कल्कि सदैव शुद्धिजनक होवे तथा पाताल में शयन करनेवाले सर्व सामर्थ्य सम्पन्न देव शुद्धि के लिये हों । सभी का सभी स्थानों पर हर समय उपयुक्त देवगण शुद्धि के लिये हों । तथा ये सभी देवता पूजित होकर शान्ति कारक होवें । एवं ऋद्धि-पुष्टि-सिद्धी, भक्ति, कल्याण एवं मुक्ति के लिये सहायक हों तथा सभी कर्मों की अभिवृद्धि के लिये सहायक हों । मन्त्रों का आचार्यों का और स्थानों का तथा हर समय पुत्र, मित्र, स्त्री, दासी, दास, गो-धन, वेद, शास्त्र, आगम आदि तथा व्रतों अभिष्ट सम्पत्तियों हितकारी समस्त अभिलाषाओं का सदैव पूर्ण करनेवाले हों । आयुष्य आरोग्य मेधा धन धान्य आदि सम्पत्ति पुण्य अणिमा आदि सिद्धियाँ गुण समुदाय एवं कल्याणों का भी तथा राजा जनपद यजमान एवं मन्त्रधारी वैष्णवों का विशेष रूपसे परलोक में कल्याण चाहनेवाले पाँचों कालों में विरुद्ध होनेवाले प्राणियों एवं शुभकारी आत्माओं का स्वस्ति परं कल्याण एवं पुनः पुनः शुभ

"य एष हवा अग्नेर्योनिर्यः प्राणः प्राणं गच्छ स्वाहा" इत्येवमेवैतदाह। ग्रामादग्निमाहृत्य पूर्ववदग्निमाघ्रापयेत्। यदि अग्निं नलभेत् तदा अप्सु जुहुयात्। "आपो वै सर्वादेवताः, सर्वादेवताः, सर्वाभ्यो देवताभ्यो जुहोमि स्वाहा" इति मन्त्रेण जले हुत्वा साज्यं हविः उद्धृत्य प्राश्नीयात्। "अयं मोक्षमन्त्रः त्रय्या" इति वदेत्। ततः पूर्वाश्रमस्य यज्ञोपवीतं हस्ते गृहीत्वा जलेन आर्द्रीकृत्य-वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगात् यतयः शुद्धसत्वाः। ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे" इति मन्त्रेण अप्सु जुहुयात्। पुनश्च-एकैकमुपवीतं स्याद् यतीनां ब्रह्मचारिणाम्। इति सिद्धान्तमनुरुध्य शुक्लमेकं यज्ञोपवीतं विधिवत् धारयेत्। तदुक्तम्-

श्वेता दन्ता नखाः श्वेताः श्वेताः श्रीदण्डमुद्रिकाः।
यज्ञसूत्रं दण्डवस्त्रं पञ्चश्वेताः प्रकीर्तिताः॥

हों। दिन-रात सभी समय में विविधता हो, दीर्घायुष्य युक्त जीवन हो। सदैव मन एकाग्र रहे। उत्तरोत्तर ऐश्वर्यों में अभिवृद्धि हो एवं वासुदेव आदि त्रिमूर्ति पुण्यों एवं शुद्धि के लिये हों। शङ्ख चक्र गदा पद्मयुक्त सर्वेश्वर विष्णु प्रसन्न हों। भगवान् बलराम जो हल नामक अस्त्र को धारण करते हैं वे सदा प्रसन्न रहें भगवान् प्रद्युम्न नित्य प्रसन्न रहें तथा देवनायक अनिरुद्ध प्रसन्न हों। देवाधिदेव नारायण कर्मों को पूर्ण करनेवाले हों। एवं सर्वत्र व्यापक परमात्मा विष्णु न्यून-अधिक दोषों की शान्ति के लिए सदैव प्रसन्न रहें।

तत्पश्चात् कुम्भ (घट) में वरुण स्वरूपधारी साकेतलोकाधिनायक श्रीरामचन्द्रजी को प्रार्थना पूर्वक आवाहन करके पुरुषसूक्त के मन्त्रों से अर्ध्य पाद्यादि षोडशोपचार पूजन विधि से श्रद्धा भक्ति पूर्वक पूजा करके कुम्भ को ब्रह्मतारक श्रीराममन्त्र से एक सौ आठ वार मन्त्र पढकर अभिमन्त्रित करें। तत्पश्चात् घट के जल से समस्त संन्यास धारण करने की साधन सामग्री एवं यजमान स्वयं को अभिसिञ्चित करें। अभिसिञ्चित करने के मन्त्र "ॐवास्तोस्पते प्रतिजानिः"..."ॐवास्तोस्पते प्रतरणोन"..."ॐवास्तोस्पते शगभया"..."ॐअमीवहा वास्तोस्पते"...इन उपर्युक्त मन्त्रों से संन्यास सामग्री एवं स्वयं को अभिषिक्त करने के पश्चात् "ॐआपोहिष्ठामयो भुवः, ॐतान ऊर्जे दधातन" इन दोनों मन्त्रों से दाढी मूछ आदि को जल से सिक्तकर यजमान क्षौर कर्म करावें। इस वात को कात्यायन स्मृति में कहा गया है कि

ततो गुरुः भगवतो परब्रह्मस्वरूपस्य साकेताधिनाथस्य श्रीरामचन्द्रस्य स्वरूपं विचिन्त्य चरणद्वयावलम्बिनं शरणागतं "ॐआप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथोबलमिन्द्रियाणि च । सर्वाणि सर्वं ब्रह्मोपनिषदं माहं ब्रह्मनिराकुर्यां मामा ब्रह्मनिराकरोदनिराकरणमस्तु अनिराकरणमस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु" इति मन्त्रमुच्चारयन्तम् उपसंगृह्य द्वादशधा ब्रह्मतारक श्रीराममन्त्रं मनसा समुच्चार्य तेनैव जलमभिमन्त्र्य शिष्यञ्चाभिषिच्य वक्ष्यमाणं शान्तिमन्त्रं पठेत् ।

ॐशंनो मित्रः शंवरुणः, शंनो भवत्वर्यमा, शं न इन्द्रो बृहस्पतिः, शंनो विष्णुरुरुक्रमः, ॐनमो ब्रह्मणे, नमस्ते वायो, त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि, त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मवदिष्यामि, ऋतं वदिष्यामि । सत्यं वदिष्यामि, तन्मामवतु, तद्वक्तारमवतु, अवतु मां, अवतु वक्तारम् ॥" "ॐभद्रं कर्णेभिः श्रृणुयामदेवाः भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः, स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमदेव हितं यदायुः ।" "स्वस्ति न इन्द्रो बृद्धश्रवाः, स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः, स्वस्तिनस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमिः, स्वस्तिनो बृहस्पतिर्दधातु ॥" ॐशान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥"

इति शान्तिपाठानन्तरं शिष्यशिरसि दक्षिणहस्तं दत्वा पुरुषसूक्तं पठित्वा "मम व्रते हृदयं ते दधामि" इत्युच्चार्य उत्तराभिमुखः दक्षिणे कर्णे प्रणवादिकम् उपदिश्य तदर्थमपि बोधयेत् ।

"आपोहिष्ठा" इन दो मन्त्रों से श्मश्रु लोम एवं नखों को गोदानक विधान से सभी मन्त्रों को जोडे । तत्पश्चात् सुवर्ण स्वरूप दर्भ के जल से स्नान आदि क्रिया सम्पन्न करें। क्षौर कर्म कराकर आत्मोद्धार का इच्छुक मुण्डि हो अथवा शिखाधारी हो जलीय देवताओं से स्नान करके पितृदेवों का तर्पण करें । तथा शास्त्रीय विधान के अनुसार ऋषि छन्द वेद एवं मनुष्यों का तर्पण करें । इन वचनों के अनुसार मुण्डन कराने के पश्चात् स्नान कस्के पितरों देवताओं ऋषियों, छन्दों वेदों एवं मनुष्यों का तर्पण कर लेने के पश्चात् कहीं पर मन्दिर गाँव नदी का किनारा अथवां वन में वैठकर दाहिना जाँघ के ऊपर उत्तान वाँया हाथ रखकर उस उत्तान हाथ के ऊपर दो पवित्री स्थापित करके पवित्री के ऊपर उत्तान दाहिना हाथ रखकर पवित्री को ढक दें । इस प्रक्रिया

ततः गुरुः सर्वलोकाभिमतं यथा सम्प्रदायं शिष्यस्य नामकरणं कुर्यात्। तच्च भगवन्नामसम्बद्धम् भवेदिति प्रयतेत। तत्पश्चात् तेनैव नाम्ना तम् आहूयात्।

पुनः शिष्यः भगवन्तं श्रीरामचन्द्रं मनसि ध्यात्वा प्रैषोक्तिमन्दमध्यम तारस्वरेण क्रमेण उच्चारयेत्। "ॐभूर्भुवः स्वः संन्यस्तं मया, संन्यस्तं मया, संन्यस्तं मया।" "पुत्रेषणायाश्च वित्तेषणायाश्च लोकेषणायाश्च सर्वभूतेभ्यश्च व्युत्थितोऽहं स्वाहा" इत्युत्वा अग्नौ अप्सु वा जुहुयात्। ततः "अभयं सर्वभूतेभ्योमत्तः स्वाहा" इत्यभिधाय बद्धाञ्जलिः प्राङ्मुखः उदङ्मुखो वा श्रीरामस्मरणं कृत्वा यथाधिकारं त्रिदण्डकमण्डलुप्रभृतिं गृहीत्वा संन्यासोचितं काषायवस्त्रादिकं च धारयित्वा श्रीरामं प्रार्थयेत्-दत्त्वातोयाञ्जलिं विप्रो भक्त्या सम्प्रार्थयेद्धरिम्। सर्वदेवात्मके तोये तोयाहुतिमहं हरे। दत्वा सर्वैषणां त्यक्त्वा युष्मच्छरणमागतः। त्राहि मां सर्वलोकेश गतिरन्या न विद्यते। संन्यस्तं भो जगन्नाथ पाहि मां मधुसूदन। त्राहि मां सर्वदेवेश रघुनाथ ? सनातन ?। संन्यस्तं मे जगद्योने पुण्डरीकाक्ष ? मोक्षद ?। अहं सर्वाभयं दत्वा भूतानां परमेश्वर ?॥ युष्मच्छरणमापन्नस्त्राहि मां पुरुषोत्तम ?। इति यमस्मृतिः। पूर्वं यद् दण्डादिधारणम् उक्तम् तेषां धारणे वक्ष्यमाणमन्त्रं पठेत्। तैस्तैरेवमन्त्रैः दण्डादीन् धारयेत्।

"इन्द्रस्य वज्रोऽसि वार्त्रघ्नः सर्वं मे यच्छ यत्पापं तन्निवारय।" इति मन्त्रेण दक्षिणे पाणौ त्रिदण्डं धारयेत्।

को ब्रह्माञ्जलि कहते हैं। इसप्रकार ब्रह्माञ्जलि बनाकर ब्रह्मणे नमः-से लेकर परमात्मने नमः पर्यन्त मन्त्रों को जपें। उपर्युक्त मन्त्रों को जपने के पश्चात् पूर्व निर्दिष्ट मन्त्रों से आचमन करके प्राणायामकर मूल मन्त्र का जप करें।

तत्पश्चात् ॐकार का उच्चारण करने के साथ-साथ एक मुट्ठी सत्तु को खाकर आचमन करके तीन मन्त्रों से जो ऊपर कहे गये हैं। उन आत्मने स्वाहा अन्तरात्मने स्वाहा आदि से अपनी नाभि को अभिमन्त्रित करें।

तत्पश्चात् त्रिविदसित्रिवृतेत्वा...इस मन्त्र को पढकर दूध दहि घी का प्रासन करें। पुनः प्रवृदसि प्रवृतेत्वा...इस मन्त्र से दूध दहि एवं घी का प्राशन करें। फिर

"ॐभूः ॐभुवः ॐस्वः ॐमहः ॐजनः ॐतपः ॐसत्यम् ॥" इति सप्तव्याहृतीः प्रणवेन सह समुच्चार्य कमण्डलुं धारयेत् ।

"ॐयुवा सुवासाः परिवीत् आगात् सउश्रेयाभवति जायमानः । तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसादेवयन्तः ॥" इति मन्त्रमुच्चार्य कौपीनं बहिर्वासान्श्च धारयेत् तदुक्तं बोधायनस्मृतौ-अथ दण्डमादत्ते सखा मां गोपा

तीसरे वार विवृदसि वृवृतेत्वा...इस मन्त्र से दूध दहि एवं घी का प्राशन करें तत्पश्चात् "ॐआपः पुनन्तु पृथिवीं पृथिवी...इस मन्त्र के द्वारा जल का प्राशन करें । तत्पश्चात् उपवास करने के लिये संकल्प करके सावित्री में प्रवेश करें । जैसा कि सम्प्रदाय के आचार्य प्रवर श्रीबोधायनजी के द्वारा कहा गया है कि गाँव के अन्तिम छोरपर अथवा गाँव की सीमा के पास या अग्निशाला में घृत दूध दहि से मिश्रित हविष को तीनवार खाकर उपवास करें । त्रिविदसि आदि मन्त्रों से तीनवार प्राशन करें एवं आपः पुनन्तु इस मन्त्र से एकवार जल का प्राशन करें । यदि घृत आदि उपलब्ध न हो तो केवल जलका प्राशन करें ।

इसप्रकार सम्प्रदायाचार्य आचार्य श्रीबोधायनजी के कथनानुसार आगे निर्दिष्ट किया जानेवाला सावित्री प्रवेश का मन्त्र स्वरूप है । वह "ॐभूः सवित्रीं प्रविशामि" से लेकर धियो योनः प्रचोदयात् पर्यन्त निर्दिष्ट मन्त्रों को यजमान स्वयं अपने मुख से उच्चाण करें सावित्री प्रवेश करलेने के पश्चात् थोडा सा जल प्राशन करके यज्ञ के ब्रह्मा को अपने पास वैठाकर ब्रह्मान्वाधान करें । यह श्रीमान् बोधायनाचार्यजी के द्वारा प्रतिपादित किया गया है जैसे कि भगवान् दिवाकर को अस्ताचल पर जाने से पहले गार्हपत्य अग्नि को लाकर अन्वाधान करके पुनः अग्नि को प्रज्वलित कर हवनीय वस्तु घृत आदि गार्हपत्य अग्नि में डालकर चार समिधाओं को प्रज्वलित आहवनीय अग्नि में घी से भीगाकर ॐस्वाहा ऐसा कहकर पूर्णाहुति दें इसी को ब्रह्मान्वाधान कहते हैं ।

तदनन्तर सन्ध्यावन्दन आदि क्रियाओं का सम्पादन कर सूर्य का अस्त हो जाने पर स्वयं ही अग्नि में पुरुषसूक्त के द्वारा हवन करें ।

पुरुषसूक्त के द्वारा हवन करलेने के पश्चात् सायंकालीन अग्नि होत्र क्रिया को सम्पन्न करके उत्तर दिशा की ओर अर्थात् संस्थापित अग्नि से उत्तर भाग में कुश को

येति । मैत्रायणी श्रुतिश्च कथयति-इन्द्रस्य वज्रोसीति त्रीन्वैणवान् दण्डान् दक्षिणे पाणौधारयेत् ततः परिव्राज्ये गृहीते सर्वान् बान्धवांस्त्यजेत् । "येन देवाः पवित्रेण आत्मानं पुनते सदा । तेन सहस्त्रधारेण पावमान्यः पुनन्तु माम् ॥" इति मन्त्रेण पवित्रीं धारयेत् ।

विछाकर जो गार्हपत्य तृण कहा जाता है उसके ऊपर त्रिदण्ड आदि साधनों को सम्यक् प्रकार से रखकर एवं कन्था, वस्त्र कौपीन आदि को भी रखकर, और दक्षिण दिशा में आहवनीय ब्रह्मायतन में अर्थात् ब्रह्मा के क्षेत्र में कुश को एवं हवनीय वस्तु को रखकर कालामृग चर्म से उसे ढककर इस रात्रि में जागरण करते हैं । ऐसा आचार्य श्रीबोधायनजी का मत है ।

दत्तात्रेय स्मृति में भी कहा गया है कि सायं काल में हवन करके कुश मृग चर्म को विछाकर ब्रह्म स्थान में ब्रह्मभाव से सम्यक् प्रकार से वैठा रहे । भगवान् श्रीरामजी में अपने मनको लगाकर भगवान् श्रीरामजी की पूजा करके प्रणव का जप करता हुआ ही सम्पूर्ण रात्रि जागरण करें ।

जो विद्वान् इसतरह ब्रह्मरात्रि का उपवास कर अग्नि को समारोपित कर संन्यास ग्रहण करता हैं वह ब्रह्महत्या आदि समस्त पापों को दूर करदेता है । तत्पश्चात् ब्राह्ममुहूर्त में उठकर सन्ध्या वन्दन पर्यन्त समस्त नित्य कर्म का सम्पादन करके यदि आहिताग्नि हो तो प्राजापत्य इष्टि करे यदि एकाग्नि हो तो आग्नेयी इष्टि करे । दत्तात्रेय के द्वारा भी कहा गया है कि इसके वाद श्रेष्ठ ब्राह्मण को पूर्णिमा की ब्रह्मरात्रि में दान देकर प्रातःकालीन हवन करके अपनी सम्प्रदाय परम्परा के अनुसार स्नानादि क्रिया सम्पन्न कर प्रतिपदा तिथि को विधान के अनुसार प्राजापत्य इष्टि सम्पन्न कर तत्पश्चात् ब्राह्मण के दक्षिणा सहित समस्त वेदों का दान दें । पुनः बारह कपालों में पुरोडाश पकाकर वैश्वानर अग्नि के लिए प्रदान करते हैं । एवं विष्णु देवता सम्बन्धि हविष्य नौ कपालों में पकाकर प्राजापत्य इष्टि सम्पन्न करते हैं । पुनः पुरुषसूक्त के द्वारा हवन करके सहस्त्रशीर्षा इस अनुवाक से अग्नि की उपासना करें इसके वाद आयुर्दा...इस मन्त्र से अग्नि को समीप में रखकर प्रक्षालित कर प्राशन करता है । सहस्त्रशीर्षा...इस अनुवाक से प्राशन कर आचमन करके ब्रह्मजज्ञानं प्रथमं...इस मन्त्र से अग्नि सम्बन्धि द्रव्यों को अग्नि में डालकर सं भा सिञ्चन्तु मरुतः आदि सक्षम एहि पर्यन्त मन्त्र के द्वारा स्वयं में सभी अग्नियों को समारोहित कर तत्पश्चात् अयं

ॐ"यदस्य पारे रजसः शुक्रं ज्योतिरजायत ।
तं नः पर्षदतिद्विषोऽअग्ने वैश्वानर स्वाहा ॥" इति मन्त्रेण शिक्यं धारयेत् ।

ततः त्रिदण्डादिकं धारयित्वा जलाशयसमीपम् उपगम्य स्नात्वा पितृन् तर्पयित्वा अष्टोत्तरसहस्त्रमूलमन्त्रं जपेत् । तत्र मन्त्राः-"ॐउदुत्यं जातवेदसंदेवं ते योनिऋत्विजो इस मन्त्र को पढकर अग्नि को सूंघे । "एष हवा अग्नेर्योनिर्यः...इस मन्त्र को पढकर गाँव से अग्नि लाकर पूर्ववत् अग्नि को सूंघे । यदि कथञ्चित् अग्नि उपलब्ध न हो सके तो जल में हवन करदे । एवं "आपो वै सर्वादेवता ...इन मन्त्रों को पढकर जल में से हवनीय द्रव्य एवं घी को निकालकर थोडा सा हविष्य भोजन करें । वेद में मोक्ष मन्त्र इसीप्रकार है ऐसा जावालोपनिषद् में कहा गया है । यही मोक्ष मन्त्र वेद का है यही उच्चारण करें ।

तत्पश्चात् पूर्वाश्रम के यज्ञोपवीत को हाथ में रखकर जल से आप्लावित कर वेदान्त विज्ञान सुनिश्चितार्थाः इत्यादि सम्पूर्ण मन्त्र को पढकर उस यज्ञोपवीत का परित्याग कर फिर संन्यासी एवं ब्रह्मचारी का एक-एक यज्ञोपवीत होता है । इस सिद्धान्त का अनुसरणकर एक सफेद यज्ञोपवीत को विधि के अनुसार धारण करें । श्वेत यज्ञोपवीत के विषय में कहा गया है कि संन्यासियों के सफेद दाँत होते हैं सफेद नख, श्रीदण्ड मुद्रा सफेद, यज्ञोपवीत सफेद, एवं त्रिदण्ड का वस्त्र सफेद इसप्रकार पाँच वस्तु सफेद कहे गये हैं ।

इसके वाद आचार्य गुरु परब्रह्म स्वरूप साकेताधिनायक श्रीरामचन्द्रजी के स्वरूप का ध्यान करके अपने दोनों चरणों को पकडे हुए जो ॐआप्यायन्तु ममाङ्गानि...आदि मन्त्र को पढरहा है, उसे पकडकर ब्रह्मतारक श्रीराममन्त्र को मन ही मन बारह-वार उच्चारण करके तथा उस श्रीराममन्त्र से ही जलको अभिमन्त्रित कर एवं शिष्य को अभिषिक्त करके आगे कहा जानेवाला ॐशंनो मित्रः शंवरुणः इत्यादि मन्त्रों को ॐशान्तिः शान्तिः...पर्यन्त आचार्य पढें ।

इसप्रकार शान्तिपाठ करलेने के पश्चात् गुरु शिष्य के शीर पर दाहिना हाथ रखकर पुरुषसूक्त को पढकर मम व्रते हृदयं ते दधामि यह उच्चारण करके उत्तर दिशा की ओर मुंह करके शिष्य के दाहिना कान में प्रणव आदि मन्त्रों का उपदेश करके उसका अभिप्राय शिष्य को समझावें । तत्पश्चात् गुरु समस्त जनता के अभिमत अपनी सम्प्रदाय परम्परा के अनुसार शिष्य का नामकरण करे वह नाम भगवान् के नामसे

वहन्ति केतवः दृशे विश्वाय सूर्य्यम् ॥" "ॐचित्रं देवानामुदगादनीकश्च क्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः । आप्राद्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ।" ॐतच्चक्षुर्देवहितम् पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेमशरदः शतं श्रृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ।" "ॐहंशः शुचिषद्वसुरन्तरिक्ष सद्धोतो वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् । नृषद्वरसद्वतसद्व्योम सदब्जा गोजा ऋतजा सम्बद्ध हो यह प्रयास करें। नामकरण करलेने के पश्चात् उसी नामसे अपने संन्यस्त शिष्य को उसी नामसे आह्वान करें ।

तत्पश्चात् शिष्य भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को मन ही मन ध्यान करके प्रैषोक्ति को "मन्द, मध्य, एवं तार, स्वर से क्रमशः उच्चारण करें। ॐभूर्भुवः स्वः संन्यस्तं मया इस मन्त्र को तीनवार मन्द मध्य, तथा उच्च स्वर से वोले तथा पुत्रेषणा वित्ते षणा, एवं लोकेषणा और सर्वभूतों से मैं व्युत्थित हो गया हूँ। मुझसे संसार के समस्त प्राणियों को अभय दान है, यह कहकर हाथ जोडकर पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख होकर श्रीराम स्मरण करके अपने अधिकार के अनुसार त्रिदण्ड आदि एवं वस्त्र आदि धारण करें । और तत्पश्चात् भगवान् की प्रार्थना करें । ब्राह्मण जलाञ्जलि देकर भक्तिपूर्वक भगवान् श्रीरामजी की प्रार्थना करें। सर्वदेव स्वरूप जलमें "मैं जल की आहुति भगंवान् विष्णु को देता हूँ" संसार की समस्त इच्छाओं को परित्याग करता हूँ। सव परित्याग कर मैं आपके शरण में आ गया हूँ। हे सर्व लोकशरण अव इस संसार में मेरा कोई सहारा नहीं है। हे जगन्नाथ मुझसे सर्व त्याग रूप संन्यास ग्रहण करलिया गया है। हे मधुसूदन आप मेरा संरक्षण करें। हे सर्वदेवेश रघुनाथ जगद्योनि पुण्डरीकाक्ष मैं समस्त प्राणियों के लिये अपने से अभय दान देकर हे परमेश्वर आपके शरणागत हुआ हूँ। हे पुरुषोत्तम मुझ शरणागत की आप रक्षा करें।

इसप्रकार संन्यास ग्रहण के सम्बन्ध में यमस्मृति में कहा गया है । तदनुसार आगे कहे जानेवाले उन-उन मन्त्रों से दण्ड आदि संन्यासी के अनुरूप साधनों को धारण करें। "इन्द्रस्य वज्रोऽसि"...इस मन्त्र को पढकर संन्यासी अपने दाहिना हाथ में त्रिदण्ड को धारण करें। ॐभूः ॐभूवः आदि सात व्याहृति मन्त्रों को ओंकार के साथ उच्चारण करके कमण्डलु को धारण करें। ॐयुवा सुवासाः परिवीत...इस

अद्रिजा ऋतं बृहत्" इति मन्त्रमुच्चार्य स्नात्वा । ॐआपो हिष्ठामयोभुवस्तान ऊर्जेदधातन, महेरणाय चक्षसे, यो वः शिव तमो रसः, तस्य भाजयते हनः, उशतीरिव मातरः, तस्मा अरंगमामव, यस्यक्षयाय जिन्वथ, आपो जन यथा च नः । इति मन्त्रैः मार्जयित्वा, अष्टोत्तरशतकृत्वः अधमर्षणं प्राणायामं च विधाय, सूर्योपस्थानान्तरं, अङ्गन्यासपूर्वकमष्टोत्तरसहस्तं मूलमन्त्रं जपेत् । एवमेव यथा सम्प्रदायं नियमान् पालयेत् ।

इतिआनन्दभाष्यसिंहासनासीनस्य जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्व रानन्दाचार्यस्य कृतौ श्रीवैष्णवसंन्यासमीमांसायां, श्रीवैष्णवसंन्यासे त्रिदण्ड धारणविधिः परिपूर्णः ॥१७॥

मन्त्र को उच्चारित करके कौपीन काषाय वस्त्र आदि बाह्य वस्त्रों को धारण करें। इसी विषय वस्तु को बोधायन स्मृति में कहा गया है कि इसके वाद दण्ड धारण करता है "सखा मां गोपाय"...इस मन्त्र से । और मैत्रायणी स्मृति में कहते हैं कि इन्द्रस्य वज्रोऽसि...आदि से बाँस से बना हुआ त्रिदण्डों को दाहिना हाथ में धारण करें। परित्यज्य सर्वं व्रजति इति परिव्राट् तस्य भाव कर्म वा पारिव्राज्यम् इस व्युत्पत्ति के अनुसार संन्यास ग्रहण करलेने के पश्चात् समस्त सगे सम्बन्धियों का परित्याग करदें । येन देवाः पवित्रेण...इस मन्त्र के द्वारा पवित्री को धारण करें तथा यदस्य पारेरजसः ...इस मन्त्र के द्वारा शिक्य को धारण करें। तत्पश्चात् संन्यास के अनुरूप त्रिदण्ड आदि समस्त साधनों को धारण करके जलाशय के आस-पास में जाकर स्नान करके पितरों का तर्पण करके १००८ मूलमन्त्र का जप करें। स्नानादि करने के लिये अधोनिर्दिष्ट मन्त्र हैं ।

चित्रं देवानामुदणात्...इस मन्त्र से प्रारम्भ कर गोजा ऋतजा अदृजा ऋतं वृहत्पर्यन्त समस्त मन्त्रों का उच्चारण कर स्नान करके ॐआपोहिष्ठा मयो भुवः आदि तीन ऋचाओं को पढकर उक्त मन्त्र से मार्जन करके १०८ अघमर्षण जप एवं प्राणायाम करके सूर्योपस्थान के वाद अङ्ग न्यास पूर्वक १००८ मूलमन्त्र जपें । इसीप्रकार अपने सम्प्रदाय के अनुरूप नियमों का पालन करें ॥१७॥

इसप्रकार आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दा चार्यजी की कृति श्रीवैष्णव संन्यास मीमांसा में श्रीवैष्णव संन्यास एवं त्रिदण्ड धारण विधि परिपूर्ण हुआ ।

卐 ॐ 卐

☫ श्रीचरणपादुकापूजनम् ☫

श्रीवैष्णवश्रीरामानन्दीयपरम्परायामेवं विधः पारम्परिको व्यवहारो वर्तते यत्, मन्त्रे मन्त्रप्रदे गुरौ समभीष्टेदेवे चैक्यं भावयेत् । त्रयाणामपि तुल्यं माहात्म्यं न तु वैषम्यम्, तदुक्तम्-

नमो गुरुभ्यो गुरुपादुकाभ्यो, नमः परेभ्यः परपादुकाभ्यः ।
आचार्यसिद्धेश्वरपादुकाभ्यो, नमोस्तु सीतापति पादुकाभ्यः ॥

सिद्धान्तमिमनुसृत्य यथैव सकललोकाधिनाथस्य परब्रह्मस्वरूपिणो भगवतः श्रीरामचन्द्रस्य चरणपादुका यजनेन यावान् पुण्यराशिरूपचीयेत, तावानेव सपरिकरानन्दभाष्यकारश्रीचरणश्रीमतो मन्त्रप्रदस्य च गुरोः श्रीच-

☫ श्रीचरण पादुका पूजन विधि ☫

श्रीवैष्णव श्रीरामानन्दीय परम्परा में इस तरह का परम्परागत व्यवहार है जो गुरु परम्परा क्रम से व्यवहार परिपाटि देखने में आता है कि-गुरु महाराज द्वारा प्रदत्त ब्रह्म तारक षडक्षर श्रीराममहामन्त्र, एवं पञ्चसंस्कार करने के साम्प्रदायिक नियम परिपालन पूर्वक मन्त्र प्रदान करनेवाले गुरु महाराज एवं उपास्य देव के रूपमें अभीष्ट सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी इन तीनों में एक रूपता की भावना करें। मन्त्र, मन्त्र प्रदाता एवं अभीष्ट देव इन तीनों का ही महात्म्य समान है । किसी में भी न्यूनाधिक्य नहीं है । अतः तीनों में प्रभावगत विषमता नहीं है । यही वात कर्मकाण्ड प्रकरण में कही जाती है- परमपूजनीय गुरुजी महाराज को प्रणाम है । एवं गुरुजी के श्रीचरण पादुका को प्रणाम, परम गुरु तथा परात्पर गुरु महाराज को प्रणाम है । और उन गुरुओं की चरणपादुकाओं को भी प्रणाम है । आचार्य एवं सिद्धराजों के चरणपादुकाओं को प्रणाम है, तथा श्रीसीतानाथ श्रीमर्यादापुरुषोत्तम परब्रह्म परमेश्वर श्रीरामचन्द्रजी की श्रीचरणपादुकाओं को मेरा प्रणाम है ।

इस सिद्धान्त का अनुसरण करके जिस तरह निखिल ब्रह्माण्ड गत सभी लोकों के अधिनायक परब्रह्म स्वरूप साकेतलोकाधीश श्रीरामचन्द्रजी की चरणपादुका की पूजा करने से जितनी पुण्य राशि संग्रहीत होती है श्रीरामावतार आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी का परिकर-बारह प्रधान शिष्यों के साथ पूजन करने

रणपादुकापूजनेन पुण्योपचयो भवति । तस्मात् श्रीचरणपादुकायाः पूजन स्य विधिरवश्यमेव निरूपणीयतामेति । तत्र शास्त्रेषु पूजनस्य वहवः प्रकारा दरीदृश्यन्ते । यथा पञ्चोपचारः, षोडशोपचारः, त्रिंशोपचारः, राजोपचारः, मान सोपचारश्चेति । उपचारेष्वेतेषु षोडशोपचारस्य प्राधान्यमस्ति तथैवानन्दभाष्य कारश्रीचरणनिर्देशात् तस्मात् श्रीचरणपादुकायाः षोडशोपचारात्मिका पूजाविधिरुच्यते, तत्र श्रीपादचिह्ने श्रीचरणपादुकायां वा नाकृतिमात्रत्वमपि तु तत्र अधिदेवत्वमस्ति। तस्माद्ध्यानावाहनादयः सम्भवन्ति।तत्र षोडशोपचाराः→

आवाहनासनाभ्यां च पादाद्याचमनैस्तथा ।
स्नानवस्त्रोपवीतैश्च गन्धपुष्पसुधूपकैः ॥
दीपनैवेद्यताम्बूलप्रदक्षिणविसर्जनैः ।
षोडशर्चाप्रकारैस्तमेतैरर्चेत् सदा सुधीः ॥१८॥

से होती है तथा उतनी ही पुण्य राशि श्रीमान् ब्रह्मतारक श्रीराममन्त्र प्रदान करनेवाले गुरु महाराज की श्रीचरण पादुका का पूजन आदि करने से पुण्य पुञ्ज सञ्चित होता है। तीनों में न्यूनाधिक्य नहीं है। इसलिये श्रीचरणपादुका का पूजन करने का विधान को आवश्यक रूपसे प्रतिपादन अवश्य ही करना चाहिये। तत्तत् शास्त्रों में पूजा करने का बहुत से प्रकार अधिक मात्रा में वार-वार देखने में आते हैं। जैसे कि पञ्च उपचारों से पूजन, सोलह उपचारों से तीस उपचारों से एवं राजोपचार से पूजन और मानस उपचार से पूजन आदि इन समस्त उपचारों में सोलह उपचारों की प्रधानता है। अधितर लोग षोडशोपचार पूजन करते हैं। इसलिये श्रीचरणपादुका का षोडशोपचार पूजन करने का विधि विधान इस ग्रन्थ में प्रदर्शित किया जाता है आनन्दभाष्यकारजी ने श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर के ५/१३-१४ श्लोकों से षोडशोपचार का ही आदेश दिया है। श्रीचरण का चिह्न, अथवा श्रीगुरु महाराज की पादुका को केवल आकृति विशेष ही नहीं मान लेना चाहिये, क्योंकि उसमें अधिदेवता विशेष का निवास होता है। अतः उसमें देवत्व है। इसलिये ध्यान आवाहन आदि समस्त उपचार सम्भव है। जैसे कि अधोलिखित सोलह उपचार कहे गये हैं। आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, गन्ध पुष्प धूप दीप नैवेद्य ताम्बूल प्रदक्षिणा एवं विसर्जन इन सोलह अर्चा (पूजन) प्रकारों से बुद्धिमान् पुरुष सदैव उपासना करें॥१८॥
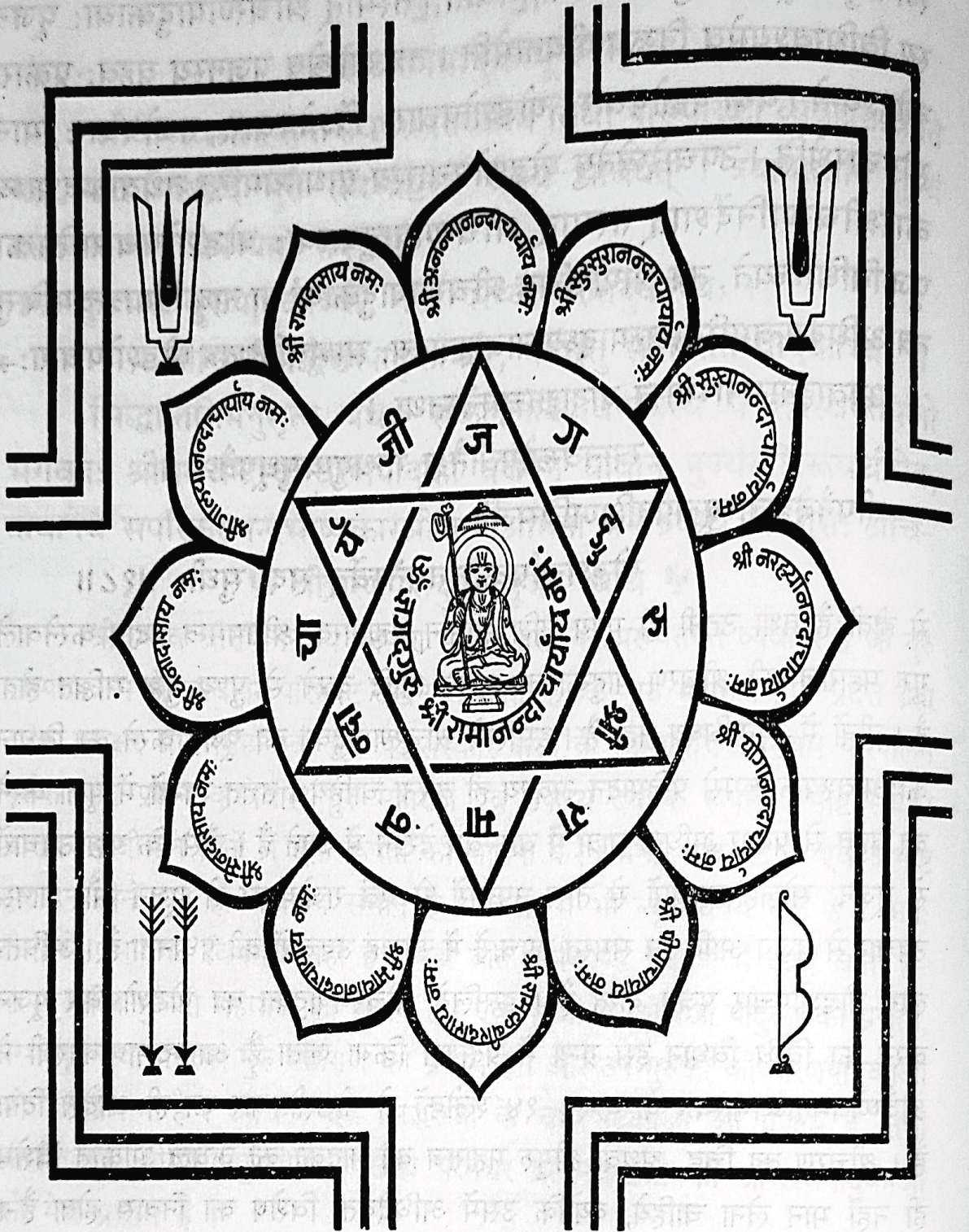
पुरुषसूक्तप्रकारेण षोडशोपचारैः श्रीरामाभिन्नसर्वेश्वरीश्रीसीतायुत सर्वेश्वरश्रीरामं सभक्तिभावं सम्पूज्य "रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो

महीतले" इत्यागमप्रामाण्यात् सर्वेश्वरश्रीरामस्वरूपप्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकार जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यचरणं यथोक्तविधिना सम्पूज्य श्रीहनुमत्प्रभृति समस्तपूर्वाचार्यान् संस्तुत्य अकारणकरुणावरुणालयस्य संसारसिन्धु संशोषणरामबाणायितस्य स्वगुरोः श्रीचरणपादुके सावधानेन स्वर्णपात्रे रजत पात्रे वा संस्थाप्य चेतसाविभाव्य, अञ्जलौ ध्यानपुष्पमादाय, अग्रे शुभासने गुरोः चरणारविन्दलक्ष्मासानुरागं निधाय-पठेत्

हरिः ॐ सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात् ।

सभूमि ऽसर्वतस्पृत्वा त्त्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१॥

मोहान्धकार विनिवारणकर्मदक्षे, वैराग्यरागरसिके करुणानिधाने ।

श्रीमद्गुरोः परमपावनपादुके द्वे-आवाहयामि निजभक्तजनैः सुसेव्ये ॥१॥

ॐभूर्भुवः स्वः इदं ध्यानपुष्पं श्रीचरणपादुकयोः समर्पयामि ।

पुरुषसूक्त में निर्दिष्ट विधान के अनुसार षोडशोपचार से सर्वेश्वर श्रीरामजी की अभिन्न स्वरूपा सर्वेश्वरी श्रीसीताजी के साथ सर्वेश्वर श्रीरामजी की पूर्ण भक्तिभावना के साथ सविधि पूजाकर "स्वयं श्रीरामजी श्रीरामानन्दाचार्यजी के रूपमें ४४०० कलियुग व्यतीत होने पर प्रयाग राज में अवतरित हुये" इस आगम वचन से बोधित आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी को भक्तिभाव पूर्वक सविधि षोडशोपचार से पूजनकर श्रीहनुमानजी प्रभृति सभी पूर्वाचार्यों को संक्षेपतः स्तवन एवं पूजन करने के वाद विना किसी हेतु के ही प्राणी मात्र के प्रति करुणा के सागर जन्म मरण परम्परा स्वरूप संसार सागर का सम्यक् प्रकार से शोषण करने के लिये श्रीराम बाण के समान आचरण करनेवाले अपने श्रीगुरु महाराज के चरणपादुकाओं को सावधान मन से विशेष रूपसे चिन्तन करके अञ्जलि में ध्यान करने के लिये पुष्प लेकर अपने पवित्र सोने अथवा चांदी के आसन पर गुरु महाराज के चरणकमल या चिह्न को अनुराग पूर्वक सम्यक् प्रकार से स्थापित करके आगे कहा जानेवाला मन्त्र पढना चाहिये-सांसारिक मोह ममता स्वरूप अज्ञानान्धकार को विशेष रूपसे दूर करने में परम निपुण, तथा वैराग्य में

पुरुषएवेद ँसर्वंयद्भूतंय्यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्त्वस्येशानोयदन्नेनातिरोहति ॥२॥
विद्योतमानं महिमानिधानं शुभासनं तेऽत्र विराजनीयम् ।
हे दीनवन्धो परमार्थतत्वे, मतिर्मदीयाऽस्तु नमोस्तु भूयः ॥२॥
ॐभूर्भुवः स्वः इदं पुष्पासनं श्रीचरणपादकयोः समर्पयामि ।
एतावानस्यर्महिमातोज्ज्यायां श्च पूरुषः ।
पादोस्यव्विश्श्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतन्दिवि ॥३॥
नाथ त्वदीयचरणाम्बुजदीयमानं पाद्यं निपीय विबुधा ह्यमरा बभूवुः ॥
रम्यं हृतं सकलतीर्थजलं पवित्रं पाद्यं ददामि कृपया ह्युरुरीकुरुष्व ॥३॥
ॐभूर्भुवः स्वः इदं पाद्यं सलिलं श्रीचरणपादुकयोः समर्पयामि ।
त्रिपादूद्ध्र्वऽउदैत्पुरुषः पादोस्येहाभवत्पुनः ।
ततोविष्ष्वङ्व्यक्क्रामत्त्साशनानशनेऽअभि ॥४॥

अनुराग पैदा करने के अनुरागी अपने शिष्यगण सहित प्राणियों पर करुणा पूर्ण भावना के आगार श्रीमान् गुरुवर के परम पावन दोनों पादुकाओं को आवाहन करता हूँ। जो चरणपादुका अपने भक्तजनों के अच्छी तरह से सेवा करने योग्य हैं ॥१॥

ॐ...आदि मन्त्र को पढकर ध्यान पुष्प श्रीचरणपादुकाओं को समर्पण करता हूँ ।

हे दीन वन्धु समस्त महिमाओं का आगार आगम के साथ वैठने योग्य यह विशेष रूप से प्रकाशमान परम मङ्गल जनक आप के लिये आसन है, हे अनाथों के नाथ मेरी बुद्धि परमार्थ तत्व में संलीन हो एतदर्थ आपको भूयो भूयः प्रणाम है ॥२॥
यह पुष्प का आसन श्रीचरण पादुकाओं के लिये समर्पित करता हूँ ।

हे नाथ आपके चरणकमलों में दिया जाता हुआ, चरण प्रक्षालन जलका पान करके अनेकानेक देवगण दीयमान चरणामृत का पान का विशेष तत्वों के ज्ञानी देवत्व को प्राप्त किये । अत्यन्त रमणीय समस्त तीर्थों से सञ्चित परम पवित्र पाद प्रक्षालनार्थ जलको आप अङ्गीकार करें ॥३॥
यह पाद प्रक्षालनार्थ श्रीचरणपादुकाओं के लिये समर्पित करता हूँ ।

यह श्रीचरणपादुकाओं के अधिदेवता के हाथों के प्रक्षालन के लिये दिया जाता

निर्णेजनाथ करयोरिदमर्ध्यमाणं तीर्थाम्बुसेकसलिलं महिमानिधानम् ।
अर्घ्यं गृहाण सकलाघहरं दयालो ? संसारसागरभवं हर दुःखपुञ्जम् ॥४॥
ॐभूर्भुवः स्वः इदमर्घ्यं श्रीचरणपादुकयोः समर्पयामि ।
ततोव्विरडजायतव्विराजोऽअधिपुरुषः ।
सजातोऽअत्त्यरिच्च्यत पश्च्चाद्भूमिमथोपुरः ॥५॥
यत्त्वं ददासि निजभक्तजनाय दिव्यं, स्थानं मया सकलपापविनाशदक्ष ।
तस्याशया सुखदमाचमनं प्रदत्तं, प्रीत्यर्पितं ननु गृहाण परं पवित्रम् ॥५॥
ॐभूर्भुवः स्वः इदमाचननीयं श्रीचरणपादुकयोः समर्पयामि ।
तस्माद्यज्ञात्सर्व्वहुतः सम्भृतम्पृषदाज्ज्यम् ।
पशूंस्तांश्च्चक्क्रे व्वायव्व्यानारण्ण्यागग्राम्म्याच्श्चये ॥६॥
संसारजं सकलशत्रुचमुं प्रकीर्णं हन्तुं प्रवृत्तमनिशं सततं नमस्यम् ।
पञ्चामृतेन सलिलेन च शीतशीतम् स्नानाय तेऽर्पितमिदं कमनीयनीरम् ॥६॥
ॐभूर्भुवः स्वः इदं स्नानीयं सलिलं श्रीचरणपादुकयोः समर्पयामि ।

हुआ, विविध प्रकार के महिमाओं का आगार तीर्थ जलों का सिञ्चन के कारण रमणीय जल जो समस्त जन्म जन्मान्तर सञ्चित पापों का निवारण में सक्षम है ऐसे अर्घ्य जलको स्वीकार करें एवं इस संसार सागर में होनेवाला समस्त दुःख समुदाय का हे दयालु आप निवारण करें ॥४॥
यह अर्घ्य...श्रीचरणपादुकाओं को समर्पण करता हूँ ।

हे श्रीचरणपादुकाधिदेव जो आप अपने आत्मीय जनको अलौकिक दिव्य पद प्रदान करते हैं । उसी दिव्य पद को प्राप्त करने की अभिलाषा से मुझसे परमानुराग पूर्वक यह आचमनीय जल प्रदान किया गया है । अतः हे पाप विनाश दक्ष ? यह परम पवित्र आचमनीय आप स्वीकार करें ॥५॥
...यह आचमनीय श्रीचरणपादुकाओं के लिये समर्पित है ।

समस्त प्राणी के अनुराग को उत्पन्न करने वाला यह पञ्चामृत संसार में फैला हुआ संसार जनित समस्त शत्रु समुदाय को निवारण करने तत्पर अहर्निश प्राणी मात्र के लिये प्राणम्य यह कमनीय पञ्चामृत आपके स्नान के लिये समर्पित है ॥६॥

तस्मादृयज्ञात्सर्व्वहुतऽऋचः सामानिजज्ञिरे ।
छन्दाᳩसि यज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥७॥
लोकानुरागजननं सदनं सुखानां कार्पाससूत्रजनितं महितं मनुष्यैः ।
वस्त्रं ददामि कमनीयमिदं सुसूक्ष्मं प्रीत्या गृहाण परिपाहि सुशिष्यलोकम् ॥७॥

ॐभूर्भुवः स्वः इदं परिधानीयं वस्त्रं श्रीचरणपादुकयोः समर्पयामि ।

तस्मादश्वाऽअजायन्तयेकेचो भयादतः ।
गावोह जज्ञिरे तस्माज्जाताऽअजावयः ॥८॥
कार्पासजातं सुपुनीतरूपं यज्ञोपवीतं परमं पवित्रम् ।
देवैर्मनुष्यैः परिपूजनीयं गृहाण यज्ञोचितसूत्रमेतत् ॥८॥

ॐभूर्भुवः स्वः इदं यज्ञोपवीते बृहस्पतिदैवते श्रीचरणपादुकयोः समर्पयामि ।

तं यज्ञम्बर्हिषि प्प्रौक्षन्पुरुषञ्जातमग्ग्रतः ।
तेन देवाऽअयजन्त साद्ध्या ऋषयश्चये ॥९॥
सद्भक्तदुःखपरिशीलनखिन्नचेतः सद्भक्तरक्षणविधौ परिलब्धकीर्तिः ।
सद्गन्धचन्दनमहं परितोऽर्पयामि, तुष्ट्या गृहाण शरणागतपालनाय ॥९॥

ॐभूर्भुवः स्वः इदं चन्दनं श्रीचरणपादुकयोः समर्पयामि ।

...यह स्नानीय जल श्रीचरणपादुकाओं के लिये समर्पित है ।

प्राणी मात्र के अनुराग को पैदा करनेवाला सभी सुखों का आगार समस्त मानवों से परिपूजित कपास के सूत से वना हुआ अत्यन्त पतला अत्यन्त सुन्दर वस्त्र आपको देता हूँ। हे श्रीचरणपादुके आप स्नेह पूर्वक इसे स्वीकार करें एवं अपने शिष्य समूह को सर्वतोभावेन रक्षा करें ॥७॥

...यह परिधानीय वस्त्र श्रीचरणपादुका के लिये समर्पित है ।

कपास से बना हुआ अत्यन्त पवित्रतम स्वरूप वाला परम पवित्र यह यज्ञोपवीत (जनेऊ) जो देवताओं एवं मानवों द्वारा सर्वतोभावेन सम्मान करने योग्य है, ऐसे यज्ञ के लिये समुचित यह यज्ञ सूत्र आप स्वीकार करें ॥८॥

...ये दो यज्ञोपवीत जिनके वृहस्पति देवता हैं वे ये श्रीचरणपादुकाओं के लिये मैं समर्पण करता हूँ ।

अपने प्रशंसनीय भक्तजन के दुःख समुदाय के परिशीलन करने के कारण

यत्पुरुषंव्व्यदधुः कतिधा व्यकल्प्पयन् ।

मुखङ्किमस्यासीत्किम्बाहू किमूरूपादा उच्च्येते ॥१०॥

श्रयन्ति देवा मुनयः सुसिद्धाः सद्गन्धपूर्णानि मनोहराणि ।

पुष्पाणि दत्तानि दयानिधान गृहाण मह्यं परिपातु भूयः ॥१०॥

ॐभूर्भुवः स्वः एतानि सुगन्धीनि पुष्पाणि श्रीचरणपादुकयोः समर्पयामि ।

ब्राह्मणोस्य मुखमासीद्बाहूराजन्न्यः कृतः ।

ऊरुतदस्य यद्वैश्श्यः पद्भ्याᳪशूद्रोऽजायत ॥११॥

वनस्पतिरसो दिव्योगन्धाढ्यः सुमनोहरः ।

आघ्रेयः सर्वदेवानां धूयोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥११॥

ॐभूर्भुवः स्वः एष धूपः श्रीचरणपादुकयोः समर्पितः राराजताम् ।

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्योऽजायत ।

श्रोत्राद्वायुश्चप्प्राणश्चमुखादग्निरजायत ॥१२॥

जिनका चित्तखेद युक्त है एवं सद्भक्तों का संरक्षण करने में जिन्हें अनन्त कीर्ति प्राप्त है उन श्रीचरणपादुकाओं के लिये मैं सुन्दर प्रशंसनीय सुगन्धि युक्त चन्दन मैं सभी प्रकार से समर्पण करता हूँ ॥९॥

...यह चन्दन श्रीचरणपादुकाओं को समर्पण करता हूँ ।

जिन अच्छे गन्धों से परिपूर्ण मानस को अत्यन्त आकर्षित करनेवाले जिन पुष्पों को देवगण तथा मानव समुदाय आश्रयण करते हैं । वे सत्पुष्प आपके लिये समर्पित हैं । हे दयानिधान ? आप इन पुष्पों को स्वीकार करें एवं मुझे पुनः पुनः सभी प्रकार से परिपालित करें ॥१०॥

...ये सुगन्धि युक्त पुष्प श्रीचरणपादुकाओं के लिये समर्पित है ।

यह सुगन्धियों का धनवान् उत्तम गन्ध युक्त वनस्पतियों का रस स्वरूप समस्त देवतागण के लिये सभी तरह से घ्राण द्वारा ग्रहण योग्य धूप आपके द्वारा स्वीकार किया जाय ॥११॥

...यह धूप श्रीचरणपादुकाओं के लिये समर्पित है । यह अत्यन्त सुशोभित हो ।

हे तीनों लोकों के अज्ञानान्धकार को निवारण करनेवाले स्वामी वर्तिका से

आज्यं सवर्तिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया ।

दीपं गृहाण हे स्वामिन् त्रैलोक्यतिमिरापह ॥१२॥

ॐभूर्भुवः स्वः एष दीपः श्रीचरणपादुकाभ्यां नमः ।

नाब्भ्याऽआसीदन्तरिक्षꣳशीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत ॥

पद्भ्याम्भूमिर्दिशः श्श्रोत्रात्तथालोकां ऽअकल्पयन् ॥१३॥

अन्नं चतुर्विधं स्वादुरसैः षड्भिः समन्वितम् ।

मया निवेदितं भक्त्या नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥१३॥

ॐभूर्भुवः स्वः इदं नैवेद्यं श्रीचरणपादुकयोः समर्पयामि ।

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।

व्वसन्तोस्यासीदाज्ज्यङ् ग्रीष्मऽइद्मः शरद्धविः ॥१४॥

एलादिकर्पूरयुतं रसाढ्यं, सुस्वादु पुगीफलसंयुतं च ।

ताम्बूलमारोग्यकरं मुखस्य गृहाण दत्तं कृपया दयालो ॥१४॥

ॐभूर्भुवः स्वः इदं ताम्बूलं श्रीचरणपादुकयोः समर्पयामि ।

युक्त यह घृत मुझसे अग्नि से संयुक्त करदिया गया है, अर्थात् प्रज्वलित करदिया गया है, अतः इस दीप को आप स्वीकार करें ॥१२॥

...यह दीप श्रीचरणपादुकाओं को समर्पित करता हूँ ।

भक्ष्य लेह्य चोष्य पेह्य भेद से चार प्रकार का अन्न आस्वादन करने योग्य रसों जो मधुर अम्ल कटु कषाय तिक्त भेद से ख्यात हैं । उन से परिपूर्ण नैवेद्य मुझसे समर्पित किया गया है, इसे आप कृपाकर स्वीकार करें ॥१३॥

...यह नैवेद्य श्रीचरणपादुकाओं के लिये समर्पित है ।

इलाँयची कर्पूर आदि रखने के कारण स्वाद्य रसों से परिपूर्ण अत्यन्त स्वादिष्ट पूगी फल से सम्यक् प्रकार से मिश्रित, मुखके आरोग्य को उत्पन्न करने वाला इस ताम्बूल को हे दयालु कृपा करके मुझसे दिया गया इस पान को आप स्वीकार करें ॥१४॥

...यह ताम्बूल श्रीचरणपादुकाओं को समर्पण करता हूँ ।

सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्तसमिधः कृताः ।
देवायद्यज्ञन्तन्वानाऽअबध्नन्पुरुषम्पशुम् ॥१५॥
काञ्चनं रजतोपेतं नानारत्न समन्वितम् ।
दक्षिणां कृपया श्रीमन् गृहाण करुणानिधे ॥१५॥
ॐभूर्भुवः स्वः इयं दक्षिणा श्रीचरणपादुकयोः समर्पयामि ।
यज्ञेन यज्ञमयजन्तदेवास्तानिधर्म्माणि प्रथमान्यासन् ।
तेहनाकम्महिमानः सचन्तयत्रपूर्वेसाद्ध्याः सन्ति देवाः ॥१६॥
अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं समस्तावरणार्चनम् ॥१६॥
ॐभूर्भुवः स्वः एष पुष्पाञ्जलिः श्रीचरणपादुकयोः समर्पयामि ॥१९॥

इत्यानन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्यस्य कृतौ श्रीचरणपादुका पूजनं परिपूर्णम् ।

ॐश्रीराम

☬ यतीनांदिनचर्यानिरूपणम् ☬

प्रातर्नमामि करुणावरुणालयस्य श्रीरामचन्द्रमहनीयगुणालयस्य ।
संसार-ताप-विनिवारणसद्व्रतस्य वैदेहिप्रीतिनिलयौ चरणौ दयालोः ॥१॥

नाना प्रकार के रत्नों से परिपूर्ण रजत (चान्दी) के सहित यह सुवर्ण दक्षिणा स्वरूप में आपको समर्पित है हे करुणा निधान इसे आप कृपाकर स्वीकार करें ॥१५॥

...यह दक्षिणा श्रीचरणपादुकाओं को समर्पण करता हूँ ।

हे शरणागत भक्तजन के लिये परम वात्सल्य भाव सम्पन्न ? मेरी अभिमत कामनाओं की सफलता को आप प्रदान करें । मैं भक्तिभाव परिपूर्ण होकर आपके समस्त आवरणों का अर्चन सम्पन्न करता हूँ ॥१६-१९॥

...यह पुष्पाञ्जलि श्रीचरणपादुकाओं को समर्पण करता हूँ ।

इसप्रकार आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी कृत श्रीचरणपादुका का षोडशोपचार पूजन परिपूर्ण हुआ ।

☬ श्रीवैष्णव संन्यासियों की दिनचर्या का प्रदिपादन ☬

अहैतुकी करुणा पारावार परम पूजनीय गुणों के आगार, संसार में होनेवाले

श्रीरामचन्द्रचरणौ सततं नमामि श्रीराघवेन्द्रचरणाम्बुरुहं स्मरामि ।
श्रीकोशलेन्द्रशरणं सततं श्रयामि सर्वेश्वराङ्घ्रिगुणजातमहं भजामि ॥२॥
श्रीराम राम रघुनन्दन राम राम श्रीराम राम भरताग्रज राम राम ।
श्रीराम राम रणकर्कश राम राम श्रीराम राम शरणं भव राम राम ॥३॥

दक्षिणे लक्ष्मणो यस्य वामे तु जनकात्मजा ।
पुरतो मारुतिर्यस्य तं वन्दे रघुनन्दनम् ॥४॥

अथ श्रीवैष्णवसंन्यासिनां दिनचर्या निरुप्यते । तत्र श्रीबोधायनः आह-
अथैतानि व्रतानि भवन्ति । अक्रोधो गुरुशुश्रूषाऽप्रमादः शौचमाचारश्चेति ।

यथादित्योयमोराजा यतीनां भावितात्मनाम् ।
जगाद विहितान्धर्मान् वेद संन्यासिनामपि ॥

दैहिक दैविक तथा भौतिक सन्तापों का विशेष रूपसे निवारण ही परम सुन्दर जिनका व्रत है। जनक नन्दिनी श्रीसीताजी के उत्कृष्ट स्नेह का आश्रय जिनका श्रीचरण कमल हैं ऐसे परम दयालु भगवान् सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में मैं प्रातःकाल में प्रणाम करता हूँ ॥१॥

भगवान् सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के चरणों को मैं सदैव प्रणाम करता हूँ। भगवान् श्रीराघवेन्द्रजी के चरणकमलों को मैं सदैव स्मरण करता हूँ, आजीवन सदैव मैं श्रीकोशलेन्द्र भगवान् श्रीरामजी का शरणागत होता हूँ। तथा सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के गुण समुदाय का मैं सर्वदा परम पूज्य भावसे सेवन करता हूँ ॥२॥

हे रघुकुलनन्दन, श्रीभरतजी के ज्येष्ठ-भ्राता, संग्राम भूमि में शत्रुओं के प्रति अत्यन्त कठोर हे श्रीरामचन्द्रजी परब्रह्म परमेश्वर आप मुझ अपने सेवक का आश्रय हों ॥३॥

जिन भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के दक्षिण भाग में परम प्रिय अनुज श्रीलक्ष्मणजी हैं, एवं वाम भाग में परम प्रेयसी जनक नन्दिनी श्रीसीताजी हैं एवं अग्र भाग में पवनतनय श्रीहनुमानजी उन श्रीरघुकुल नन्दन सर्वेश्वर को मैं प्रणाम करता हूँ ॥४॥

इसके पश्चात् श्रीवैष्णव संन्यासियों के दिनचर्या का प्रतिपादन किया जाता है। दिनचर्या के सम्बन्ध में श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णव-श्रीसम्प्रदाय के मूर्धन्य आचार्य श्रीबोधायनजी कहते हैं→श्रीवैष्णव संन्यासियों के ये सभी व्रत होते हैं→क्रोध का

अहिंसा सत्यमक्रोधो ब्रह्मचर्यं तपः श्रुतम् ।
अस्तेयाव्यभिचारौ च धर्मोदश विधः स्मृतः ॥
तपसो वाङ्मनः कायभेदेन भिन्नत्वाद्दशविधत्वम् ।
सन्तोषो गुरुशुश्रूषा ह्यप्रमादक्षमादयः ।
मौनमाहारशुद्धिश्च शौचमष्टौ व्रतानि च ॥

एते आश्रमधर्माः सन्ति ब्रह्मचर्याश्रमादारभ्य संन्यासाश्रमपर्यन्तं यस्मिन्कस्मिंश्चिदपि आश्रमे वसतां मनुष्याणामयं साधारणो धर्मः । तेन नियमेन एषामनुपालनं विधेयम् । हिंसा दशविधा भवति तेन अहिंसायाऽऽपि दशविधत्वमुचितम् । तथाहि-उद्वेगकरणम्, सन्तापकरणम्, रुजाकरणम्, शोणितोत्पादनम्, पैशुन्यम्, सुखापनयनम्, अतिक्रमः, सङ्कोचः, हितप्रतिषेधः, वध इति । अक्रोधत्वेन क्रोधसिद्धानां कार्याणां निषेधः- सर्वथा अभाव, गुरुजनों की सेवा, प्रमाद का अभाव असावधानी को प्रमाद कहा जाता है। अतः अपने उपास्य के प्रति निरन्तर जागरुकता, एवं पवित्रता पूर्ण समस्त आचार विचार ।

जैसा कि भावितात्माओं संन्यासियों के लिये भगवान् दिवाकर के पुत्र यमराज से विधान किये गये धर्मों के विषय में कहे हैं, वे ही धर्म वेद संन्यासियों के लिये भी कहे गये हैं । मन वचन काया से हिंसा नहीं करना, सत्य क्रोध नहीं करना, ब्रह्मचर्य, तपस्या, शास्त्रज्ञान, चोरी नहीं करना एवं व्यभिचार नहीं करना ये दशप्रकार के धर्म कहे गये हैं। तपस्याओं का वाणी मन एवं काया के द्वारा भिन्न-भिन्न होने के कारण ये दश प्रकार के तपस्याएं है। सन्तोष, गुरु की सेवा, सतत जागरुकता, क्षमा आदि मौन एवं आहार की पवित्रता ये आठ प्रकार के शौच व्रत भी हैं । ये सभी ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास सभी आश्रमों के धर्म हैं। ब्रह्मचर्याश्रम से लेकर संन्यासाश्रम पर्यन्त जिस किसी भी आश्रम में निवास करनेवाले मानवों का यह सर्व साधारण धर्म है। उस नियम के अनुसार इन समस्त धर्मों का अनुपालन सभी को करना चाहिये। हिंसा का अर्थ प्राण वियोग के अनुकूल यत्न कहा जाता है वह हिंसा दश तरह की होती है इससे अहिंसा का भी दश प्रकार का होना संगत

हन्ताचैवानुमन्ता च विशस्ता क्रयविक्रयी ।
संस्कर्त्ता चैव कर्त्ता च खादकश्चाष्टपातकाः ॥

सत्यविषये वायुराह-न धर्ममनृतं हिनस्तीति मनीषिणाम् ।
तथापि तन्न वक्तव्यं प्रसङ्गोऽप्येष दारुणः ॥

अस्तेयमपिवायुरेव न्यरूपयत्-
असद्वादो न कर्त्तव्यो यतिना धर्मलिप्सुना ।
न चैवापद्गतेनापि स्तेयं कार्यं कदाचन ॥

ब्रह्मचर्यन्तु-स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ।
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृतिरेव च
एवं मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

एवं अष्टविधमैथुनपरित्यागपूर्वकभगवदनुध्यानं ब्रह्मचर्यमुच्यते ।
शौचन्तु बाह्याभ्यन्तरशुचिता स्वाध्यायन्तु-
जपेनापि नयेत् कालं ध्यानश्रान्तो यतिस्तथा ।
ध्यानेन जपविश्रान्तः पुनर्ध्यायेत् पुनर्जपेत् ॥

ही है। जैसे कि उद्वेग पैदा करना, घवराहट पैदा करना, घायल करना, खून निकाल देना, चुगलखोरी करना, सुख को दूर करना, अतिक्रमण करना, संकोच करना, किसी के हित में बाधा डालना और मार डालना ये सव हिंसायें कही जाती हैं। कुछ तो साक्षात् हिंसा हैं एवं कुछ पारम्परिक हैं। इनका अभाव अहिंसा है। अक्रोध का अर्थ है क्रोध के कारण होनेवाले कार्यों का निषेध । जैसे कि मारनेवाला, समर्थन करनेवाला, काटनेवाला, खरीदने तथा वेचनेवाला, पकानेवाला, या मारने की क्रिया करनेवाला तथा खानेवाला, आठों हिंसा का पातकी है। सत्य के विषय में भगवान् वायु कहते हैं कि मनीषियों के धर्मको असत्य विनष्ट नहीं करता तथापि असत्य नहीं बोलना चाहिये असत्य का यह प्रसङ्ग भी अत्यन्त भयङ्कर होता है। वायु ही चोरी नहीं करने के सम्बन्ध में प्रतिपादन किये हैं धर्मकी अभिलाषा करनेवाले संन्यासियों के द्वारा अप्रसंशनीय वाद-विवाद नहीं करना चाहिये तथा विपत्ति ग्रस्त होने पर भी किसी भी परिस्थिति में कभी भी चोरी नहीं करना चाहिये। आठ प्रकार के मैथुनों

चत्वारः पाकयज्ञास्तु विधियज्ञसमन्विताः ।
ते सर्वे जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥
अपरिग्रहस्तु-संस्कृतां नवदेद्वाणीं बालवन्मूकवच्चरेत् ।
न द्रव्यसंचयं कुर्यात् मात्रामप्यन्यकालिकीम् ॥

एवमादिलक्षणलक्षितानां दशविधानां धर्माणामनुपालनम् सर्वेषां कर्तव्यम् । इत्थं धर्मानुपालनपूर्वकम् व्यवहरन् ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय स्वाभीष्टदेवं स्मृत्वा आसनं परित्यजेत् । तदुक्तम् विश्वामित्रेण-

उषःकाले समुत्थाय शौचं कृत्वा विधानतः ।
दन्तकाष्ठमथाचम्य पर्ववर्जमतन्द्रितः ॥
कृतस्नानोजपेत्तावद् यावदादित्यदर्शनम् ॥

देवलस्तु-ध्याने दैवतपूजायां भोजनेदन्तधावने ।
अवश्यकार्ये स्नाने च मौनं षट्सुविधीयते ॥

मूत्रपूरीषोत्सर्गसमये दक्षिणे कर्णे यज्ञोपवीतं त्रि वेष्टयित्वा प्रातः सायं दिवसे वा उत्तराभिमुखो रात्रौ दक्षिणाभिभूत्वा, काष्ठ लौह पत्रतृणादिभि रात्मानं तिरस्कृत्य वस्त्रेण शिरः देहं चावगुष्ठ्य वाचं नियम्य मलमूत्रत्यागं कुर्यात् । निषिद्धस्थानेषु च मलमूत्रत्यागं न कुर्यात् । तदुक्तं मनुना-

का परित्याग पूर्वक भगवान् का अनुचिन्तन करना ब्रह्मचर्य कहा जाता है । स्मरण, कीर्त्तन, अर्थात् कामिनी का नामोच्चारण, केलि, कामिनी को देखना, गोपनीय चर्चा करना, कामविषयक संकल्प करना, निश्चय करना, एवं संभोग क्रिया को पूर्ण करना ये आठ प्रकार के मैथुन हैं इनका सर्वथा परित्याग ब्रह्मचर्य है । बाहरी तथा आन्तरिक सभी तरह की पवित्रता को शौच कहते हैं । स्वाध्याय के विषय में कहा गया है कि ध्यान करते-करते थका हुआ संन्यासी भगवान् के नाम जपकर भी समय वितावे । जप से थककर ध्यान से समय वितावें इसप्रकार पुनः-पुनः जप एवं पुनः-पुनः ध्यान से ईश्वर, समर्पित मति होना स्वाध्याय है । क्योंकि शास्त्रों में जपका अतिशय महत्व बताया गया है । विधि यज्ञ से युक्त चारों ही पाक यज्ञ मिलकर सभी जप यज्ञ की सोलहवीं कला को भी तुलना नहीं करसकते । अपरिग्रह के सम्बन्ध में कहा गया

न मूत्रं पथि कुर्वीत न भस्मनि न गोव्रजे ।
फालकृष्टे न च जले न चित्यां न च पर्वते ॥
न जीर्णदेवायतने न वल्मीके कदाचन ॥
न ससत्वेषु गर्तेषु न गच्छन्नापि संस्थितः ।
न नदीतीरमासाद्य न च पर्वतमस्तके ।
वाय्वग्निविप्रमादित्यमपः पश्यंस्तथैव गाः ।
न कदाचन कुर्वीत विण्मूत्रस्य विसर्जनम् ॥ इति ॥

है कि धर्माभिलाषी व्यक्ति को दूसरों को प्रभावित करनेवाले संस्कार युक्त मनोहर बातें नहीं करनी चाहिये। बालक या गूँगा के जैसे अपने चित्त को ईश्वर में लगाकर व्यवहार करना चाहिये। दूसरे समय में काम आवे ऐसे एक पैसा धन को भी संग्रहित नहीं करना है।

इत्यादि प्रकार से परिभाषित दश प्रकार के धर्मों का अनुपालन करना सभी आश्रमों में रहनेवाले मानवों का कर्त्तव्य है। इसप्रकार धर्मों का अनुपालन करते हुये ब्राह्म मूर्हूत में उठकर संन्यासी अपने अभीष्ट देवता श्रीरामजी का स्मरण करके अपने शयन के आसन का परित्याग करे। यही वात विश्वामित्र के द्वारा कही गयी है उषःकाल में विधिवत् उठकर शास्त्र एवं सम्प्रदाय के विधानानुसार शौच करके दातुन करे तथा कुल्ला आचमन आदि करके स्नान करे। दातुन निरालस होकर पर्वों को छोडकर ही अन्य दिनों में करें। एवं स्नान के पश्चात् तब तक जप करता रहे जब तक कि भगवान् सूर्यका दर्शन न हो। देवल स्मृति में भी कहते हैं कि ध्यान के समय में, देवताओं की पूजा के समय में, भोजन के समय में, दातुन करने के समय में, आवश्यक कार्य के समय तथा स्नान के समय इन छः कार्यों के समय मौन आचरण करना चाहिये। मूत्र अथवा मलोत्सर्ग के समय में दाहिने कान में यज्ञोपवीत को तीनवार लपेटकर प्रातःकाल सायंकाल अथवा दिन में उत्तराभिमुख होकर मलमूत्र का परित्याग करे तथा रात्रि में दक्षिणाभिमुख होकर मलमूत्र त्याग करे। लकडी, लोहा, पत्ता, अथवा घास आदि से अपने आपको छिपाकर तथा वस्त्र से शिर और देह को ढँककर वाणी को नियन्त्रित कर अर्थात् मौन रहकर मलमूत्र त्याग करना चाहिये। वर्जित स्थानों पर मलमूत्र त्याग नहीं करना चाहिये। मनुस्मृतिकार के द्वारा कहा गया

छायायामन्धकारे प्राणवाधाभयेषु च यथासुखमुखः मलमूत्रविसर्जनं कुर्यात्।

निरालसः सन् मलमूत्रविसर्जनान्तरं सावधानतया यथाशास्त्र यथासम्प्रदायञ्च गन्धलेपक्षयावधि शौचं विधाय हस्तप्रक्षालनादि प्राणायामाचमनपर्यन्तं कर्मकुर्यात् । शौचार्थम् वल्मीकमूषकोत्खातादिवर्जं मृदं पूर्वस्मिन्नेव कालेगृह्णीयात् । मूत्रत्यागानन्तरं शौचविषये शातातपेनोक्तम्-

एकालिङ्गे करे सव्ये तिस्रो द्वे हस्तयोर्द्वयोः ।
मूत्रशौचं समाख्यातं शूक्रे तद्विगुणं स्मृतम् ॥

पुरीषोत्सर्गानन्तरं शौचविषये मनुनोक्तम्-

एकालिङ्गे गुदेतिस्त्रः तथैकत्रकरे दश ।
उभयोः सप्तदातव्या मृदः शुद्धिमभीप्सता ॥

है कि रास्ता पर पेशाब नहीं करना चाहिये । राख में, गोशाला में, जोते गये खेत में तथा चबूतरा एवं पर्वत पर पेशाब नहीं करना चाहिये । टूटा हुआ देवमन्दिर, वाँवी (वल्मीक) पर भी कभी भी पेशाब न करें । जिस गढा में प्राणी हो वहाँ पेशाब न करें । चलता हुआ या खडा होकर पेशाब न करें । हवा, आग, ब्राह्मण, सूर्य पानी तथा गाय को देखता हुआ मूत्र त्याग नहीं करें अथवा इन स्थानों पर मल त्याग भी नहीं करना चाहिये। छाया में, अन्धकार में, प्राण संकट उपस्थित होनेपर, और भय की स्थिति में जिसतरह सुविधा हो उस दिशा की ओर मुख करके मलमूत्र का विसर्जन करे। इन परिस्थितियों में दिशा नियम का कोई दोष नहीं है । आलस्य मुक्त होकर मलमूत्र विसर्जन करने के पश्चात् सावधानी से शास्त्रीय नियमानुसार और जैसा अपना साम्प्रदायिक नियम है जबतक दुर्गन्धि एवं चिकनाहट का विनाश न हो जाय तबतक शौच करके हाथ पैर प्रक्षालन प्राणायाम आचमन पर्यन्त क्रियायें करें। शौच के लिये वल्मीक, चूहा आदि के द्वारा उखाडे गये मिट्टी को छोडकर शौच से पूर्व समय में ही मिट्टी लेलेना चाहिये। मूत्रत्याग करने के पश्चात् शौच के विषय में शातातप स्मृतिकार के द्वारा कहा गया है कि मिट्टी से मिला हुआ जलसे लिङ्ग को एकवार धोना चाहिये । बायें हाथ को तीनवार, दोनों हाथों को दो-दो वार मिट्टी से धोना मूत्र शौच कहा गया है । शुक्रपात होने पर इसके दुगुणा शौच करने का विधान है । तत्पश्चात् छः वार कुल्ला करके तीनवार प्राणायाम करना चाहिये । मलत्याग करने के

एतच्छौचं गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम् ।
त्रिगुणं स्याद् वनस्थानां यतीनां तु चतुर्गुणम् ॥
वसित्वा धौतकौपीनं गण्डूषान् द्वादशांस्चरेत् ।
आचम्य प्रयतो भूत्वा प्राणायामान् षडाचरेत् ॥
तत्रचमन्त्रः-देवताऋषयः सर्वे पिसाचोरगराक्षसाः ।
इतो गच्छन्तु भूतानि बहिर्भूमिं करोम्यहम् ॥
दक्षस्मृतावुक्तम्-शौचे यत्नः सदाकार्यः शौचमूलोद्विजः स्मृतः ।
शौचाचारविहीनस्य समस्ता निष्फलाः क्रियाः ॥२०॥

दक्षस्मृतौ उक्तम्-
मृदातोयेन शुद्धिः स्यान्नक्लेशो न धनव्ययः ।
यस्य शौचेऽपि शैथिल्यं चित्तं तस्य परीक्षितम् ॥

शौचानन्तरं दन्तधावनं कुर्यात्, दन्तधावनस्य प्रयोजनं हारीतस्मृतौ

वाद शौच करने के सम्बन्ध में मनुस्मृतिकार के द्वारा कहा गया है कि एकवार लिङ्ग में, तीनवार गुदा में, एक हाथ में दश वार, तथा दोनों हाथों में सातवार शुद्धि चाहने के इच्छुक मिट्टी लगावें ।

उपर्युक्त ये सभी शौच गृहस्थों के लिये कहे गये हैं ब्रह्मचारियों का इसका द्विगुणा शौच होता है । वानप्रस्थों के लिये तीनगुणा एवं संन्यासियों के लिये चार गुणा शौच आचरण का विधान किया गया है । शौच करने के पश्चात् धुली हुई लंगौटी (कौपीन) पहनकर बारह वार कुल्ला करे । आचमन करके सावधान होकर छः वार प्राणायाम करे । मलत्याग करने का मन्त्र है सभी देवगण, ऋषिगण, पिशाच सर्प एवं राक्षसगण, इस स्थान से समस्त भूत दूर हो जाय मैं मल उत्सर्ग कर रहा हूँ । दक्षस्मृति में कहा गया है कि शौच में सतत प्रयासरत होना चाहिये । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये सभी जातियाँ शौच पर ही आधारित हैं । जो द्विज शौच आचरण से विहीन हैं उनके गजस्नान के समान सभी क्रिया कलाप निष्फल हैं ॥२०॥

दक्षस्मृति में कहा गया है→यदि मिट्टी और पानी से पवित्रता होती है, उस क्रिया में न किसी तरह की तकलीफ होती है, और किसी प्रकार का धन भी खर्च

उक्तम् । दन्तधावनस्य काष्ठानि च अधो निर्दिष्टानि सन्ति । केषुचित् दिवसेषु दन्तधावनं प्रतिषिद्धं तस्य च किं प्रमाणमेवमादिविषयाः धर्मशास्त्रेषु उक्ताः ते निरुप्यन्ते→

मुखेपर्युषिते नित्यं भवत्यप्रयतो नरः ।
तस्माच्छुष्कमथार्द्रं वा भक्षयेछन्दधावनम् ॥
करजं खादिरं वापि कदम्बं कुरवं तथा ।
सप्तपर्णपृश्निपर्णीजम्बूं निम्बं तथैव च ॥
अपामार्गं च विल्वं चार्कंचोदुम्बरमेव च ।
एते प्रशस्ताः कथिता दन्तधावनकर्मणि ॥
दन्तकाष्ठस्य भक्ष्यस्य समासेन प्रकीर्त्तितः ।
सर्वे कंटकिनः पुण्याः क्षीरिणश्च यशस्विनः ॥

नहीं होता है ऐसी शौच क्रिया में भी जिसकी ढिलाई होती है तो इससे उसके मानसिक शिथिलता की भी परीक्षा हो जाती है ।

शौच क्रिया करलेने के पश्चात् दन्तधावन (दातुन) करे । दन्तधावन करने का प्रयोजन हारीतस्मृति में कहा गया है और दन्तधावन क्रिया में उपयोग आनेवाले निम्न निर्दिष्ट काष्ठ बताये गये हैं । कुछ दिवसों में दन्तधावन करने का प्रतिषेध किया गया है । इसमें प्रमाण क्या है इत्यादि विषय धर्मशास्त्रों में प्रतिपादित किये गये हैं उनका निरूपण आगे किया जाता है ।

मुख में वासीपना रहने से मनुष्य सदैव अपवित्र हो जाता है । इसलिये सूखा हुआ अथवा गीला काष्ठ से दन्तधावन (दातुन) करें । करञ्ज खैर कदम्ब, मौलसरी, सप्तवर्णा, पृश्निवर्णी जामुन और निम्ब, अपामार्ग (चिडचिडी) बेल, आँक तथा गूलर ये सभी काष्ठ समूह दन्तधावन क्रिया के लिये प्रशंसनीय कहे गये हैं । भक्षण करने योग्य दन्तधावन के उपयोगी काष्ठों को संक्षेप में कहा जाता है कि जितने भी काँटेदार तथा दूधवाले काष्ठ हैं, उनसे दन्तधावन करने से पुण्य और कीर्ति की वृद्धि होती है। दन्तधावन काष्ठ की लम्बाई का प्रमाण आठ अंगुल अथवा अंगूठा से तर्जनी तक होनी चाहिये उस काष्ठ से दातों को विशेष रूपसे पवित्र करें । हे सज्जन महापुरुषो प्रतिपदा षष्ठी और नवमी तिथियों में जो दन्तधावन करता है उसके सात पीढी पर्यन्त कुल

अष्टांगुलेन मानेन दन्तकाष्ठमिहोच्यते ।
प्रादेशमात्रमथवा तेन दन्तान्विशोधयेत् ॥

प्रतिपत्पर्वषष्ठीषु नवम्याञ्चैव सत्तमाः ।
दन्तानां काष्ठसंयोगाद्दहत्यासप्तमं कुलम् ॥

अभावे दन्तकाष्ठानां प्रतिषिद्धदिनेषु च ।
अपां द्वादशगण्डूषैर्मुखशुद्धिं समाचरेत् ॥

द्वादशांगुलकं विप्रैः काष्ठमाहुर्मनीषिणः ।
क्षत्रविट् शूद्रजातीनां नवषट् चतुरंगुलम् ॥वि.स्मृ.॥

अत्र च मन्त्राः

ॐअन्नाद्याय व्युहध्वंसोमोराजाऽयमागमत् ।
समे मुखं प्रमार्क्ष्यते यशसा च भगेन च ॥

दग्ध हो जाता है । विहित तिथियों में दन्तधावन काष्ठ का अभाव होने पर तथा प्रतिषिद्ध दिवसों में, जलके बारह कुल्ला से अपने मुखकी शुद्धि करनी चाहिये ।

दन्तधावन करने से पहले ॐअन्नाद्याय व्यूहध्वं...एवं आयुर्बलम्...इन दोनों मन्त्रों से दन्तकाष्ठ को अभिमन्त्रित करके वैठकर मौन रहकर सावधानी से दातुन करना चाहिये । दातुन का काष्ठ छिलका सहित होना चाहिये । एवं करनेवाला पूर्वाभिमुख वैठा हुआ हो । दन्तधावन करलेने के पश्चात्, काष्ठ को जलसे प्रक्षालित करके दन्तकाष्ठ को पवित्र स्थान पर परित्याग करें । दातुन करने से पहले भी दन्तकाष्ठ को प्रक्षालित करना चाहिये और वाद में भी उपयुक्त दन्तकाष्ठ का प्रक्षालन करें ऐसा परम्परागत व्यवहार है । स्नान करने के पहले प्रातःकाल में ही दन्तधावन करना चाहिये, न कि दोपहर (मध्याह्न कालीन) स्नान करने के समय पर, अथवा सायं कालीन स्नान करने के समय पर, अर्थात् केवल प्रातःकाल के स्नान से पूर्व ही दिन में एकवार दन्तधावन करें । स्नान तो सन्ध्याबन्दन करने से पहले प्रातः मध्याह्न एवं सायंकाल में करना चाहिये । वानप्रस्थाश्रम एवं गृहस्थाश्रम में निवास करनेवालों के लिये केवल प्रातःकाल एवं सायं काल इन दो समय पर स्नान करने का विधान है । ब्रह्मचारी एवं संन्यासाश्रम के लिये त्रैकालिक स्नान करने का विधान किया गया है । स्नान करने

आयुर्बलं यशोवर्चः प्रजाः पशुवसूनि च ।

ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च त्वन्नोदेहि वनस्पते ॥

इतिमन्त्राभ्यां दन्तकाष्ठमभिमन्त्रयित्वा सत्वचेन दन्तकाष्ठेन पूर्वाभिमुखोपविष्टः वाग्यतः सन् दन्तधावनं कुर्यात् । पश्चात् प्रक्षालनं विधायदन्तकाष्ठं शुचौदेशे परित्यजेत् । पूर्वमपि प्रक्षालनं विधेयम् पश्चादपि चरति सम्प्रदायः । स्नानात्पूर्वं प्रातरेव दन्तधावनं विधेयम् नतु मध्याह्नस्नानसमये सायं स्नानसमये वा । स्नानन्तु सन्ध्याबन्दनात्पूर्वं त्रिषु एव कालेषु कुर्यात् । वानप्रस्थगृहस्थयोः प्रांतःस्नानं, सायं स्नानं च विहितम् । ब्रह्मचारिणां संन्यासिनाञ्चकृते त्रैकालिकं स्नानं विहितमस्ति । स्नानस्य महत्वं व्यासस्मृतौ उक्तम्-

चतस्त्रोघटिकाप्रातः अरुणोदय उच्यते ।

यतीनां स्नानकालोऽयं गङ्गाम्बुसदृशः स्मृतः ॥

का माहात्म्य व्यासस्मृति में कहा गया है कि-प्रातःकाल की चार घडी अर्थात् एक घण्टा छत्तीस मिनट का समय अरुणोदय वेला कही जाती है । यह संन्यासियों के स्नान सम्पादन करने का समय है । इस समय में सभी जगह का जल गङ्गाजल के समान पवित्र जल कहा गया है । प्रतिदिन उषः काल में दो समयों के सन्धि के काल में भगवान् सूर्य का उदय हो जाने पर जो स्नान आचरण किया जाता है, सूर्य के रहते हुये जो प्रातः मध्याह्न एवं सायं काल का जो स्नान होता है, वह प्राजापत्य व्रत के समान कहा गया है । वह कर्ता के समस्त पापों का पूर्णरूप से विनाश करता है ।

भगवान् मनु के द्वारा भी कहा गया है-नदियों में देवताओं के नामसे प्रसिद्ध तालावों में, पोखरों में और झरनों प्राकृत गर्तों के जल में प्रतिदिन स्नानाचरण करना चाहिये । यदि नदी आस पास में उपलब्ध हो तो थोडा सीमित जलवाला जलाशय में स्नान नहीं करना चाहिये । यदि नहीं उपलब्ध हो तो तालाब पोखर आदि में भी पवित्र जलमें स्नान करें । जलसे अभिषिक्त करके पवित्र स्थान पर कपडों को रख देवें, तत्पश्चात् मिट्टी से मिला हुआ जल सम्पूर्ण शरीर में लेपकर, पानी के अन्दर प्रवेश करके मौन रहकर स्नान क्रिया पूर्ण करें । रोगी व्यक्ति कण्ठ स्नान भी कर सकता

उषस्युषसियत्स्नानं सन्ध्यायामुदिते रवौ ।
प्राजापत्येन तत्तुल्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥

मनुनाप्युक्तम्-

नदीषु देवखातेषु तडागेषु सरः सु च । स्नान समाचरेन्नित्यं गर्त्तप्रस्त्रवणेषु च ॥

विद्यमानायां नद्यामन्यस्मिन् स्वल्पतोये जलाशये स्नानं न कुर्यात् । अन्यथा तडागादिष्वपि पवित्रेजले स्नानं कुर्यात् । शुचौदेशे जलेनाभ्युक्ष्य वस्त्राणि स्थापयेत् ततः मृत्तिकां तोयं चोपलिप्य जलान्तः प्रविश्यवाचं नियम्य स्नानमाचरेत् । रुग्णः जनः कण्ठस्नानमपि कर्तुमर्हति तत्राप्यसमर्थः उष्णेनापि वारिणा स्नानं कर्त्तुं शक्नोति । जलाभावे आग्नेयम् वारुणम्, ब्राह्मम् वायव्यम् दिव्यञ्च स्नानं भवति इतिपाराशरेणाभिहितम् । भस्मना स्नानमाग्नेयम्, जलावगाहनेन वारुणम्, आपोहिष्ठेत्यादिमन्त्रेण ब्राह्मम्, गोधूलिना वायव्यम्, आतपवर्षेण च दिव्यं स्नानमुच्यते ।

तदुक्तं कपिलेन-

प्रातः स्नानेत्वशक्तश्चेत्कापिलं स्नानमाचरेत् ।
तत्राप्यसामर्थ्ययुक्ते मन्त्रस्नानं विधीयते ॥

है । कण्ठ स्नान करने में भी जो व्यक्ति असमर्थ हो वह गरम किया गया पानी से भी स्नान करसकता है । यदि जलका अभाव हो तो अग्नि स्नान, वारुण स्नान, ब्रह्म वायव्य और दिव्य स्नान होता है ऐसा आचार्य पराशरजी के द्वारा कहा गया है । भस्मका सम्पूर्ण शरीर में लेप किया जाता है उसे अग्नि स्नान कहते हैं । पानी में डुवकी लगाकर स्नानको वारुण स्नान कहा जाता है, आपोहिष्ठा मयोभुवः...आदि मन्त्र पढ लेने को ब्राह्म स्नान कहते हैं । गो धूलि लेपको वायव्य, धूप में रहने को दिव्य स्नान कहा जाता है । यह वात महर्षि कपिल द्वारा कही गयी है । प्रातःकालीन स्नान क्रिया में असमर्थ हो तो कापिल स्नान करने चाहिये । उसमें भी यदि असमर्थ हो तो मन्त्र स्नान किया जाता है । नाभि से नीचा भाग अर्थात् कटि पर्यन्त जलमें प्रवेश करके कटिभाग का प्रक्षालन कर वह प्रक्षालन मृत्तिका मिश्रित जलसे होना चाहिये ।

नाभेरधः प्रविश्याप्सु कटिं प्रक्षाल्यमृज्जलैः ।

जलार्द्रकर्पटेनाङ्गशोधनं कापिलं स्मृतम् ॥

सायं प्रातरसामर्थ्ये सायमेवाथवा पुनः ।

परिवर्त्य च कौपीनं मन्त्रस्नानं विधीयते ॥

स्नानकाले त्रिदण्डस्य मूलेनाग्रभागेन च जलं स्पृष्ट्वा जलमध्ये ऊर्ध्वाग्रं त्रिदण्डं संस्थाप्य, समानीततथा शुद्धमृत्तिकया हस्तपादकटिशौचादिकं विधाय, मृज्जलाभ्यां कमण्डलुं प्रक्षाल्य ॐकारेण जलमभिमन्त्र्य, त्रिवारं जलमालोड्य स्नानमाचरेत् । ततः श्रीसम्प्रदायानुसारम् विधिवत् त्रिः आचम्य प्राणायामपूर्वकं षडंगन्यासं विधाय, अष्टोत्तरशतं मूलमन्त्रं जपेत् । ब्रह्मानुचिन्तनं वा कुर्यात् । तत्पश्चात् श्रीरामाय नमः श्रीरामचन्द्राय नमः श्रीरामभद्राय नमः श्रीरघुनाथाय नमः श्रीविष्णवे नमः श्रीमधुसूदनाय नमः श्रीत्रिविक्रमाय नमः श्रीवामनाय नमः श्रीधराय नमः श्रीहृषीकेशाय नमः

पानी से भींगा हुआ वस्त्र से शेष अङ्गों को पोंछकर जो शरीर को शुद्ध किया जाता है, उसे कापिल स्नान कहते हैं । सायं प्रातः स्नान में यदि असमर्थ हो या सायंकालीन स्नान में ही असमर्थ हो तो कौपीन आदि को वदल लेने से भी मन्त्र स्नान हो जाता है ।

विशेष ध्यान देने योग्य वात है कि स्नान करते समय त्रिदण्डी श्रीवैष्णव संन्यासी स्नान क्रिया सम्पन्न करने के समय में त्रिदण्ड के मूल भाग एवं अन्तिम भाग से जलको स्पर्श करके पानी में प्रवेश करके त्रिदण्ड का ऊपरी भाग जिसमें ऊपर हो ऐसी स्थिति करके पानी में त्रिदण्ड को खडा करके पूर्वकाल में लायी गयी विशुद्ध मिट्टी से हाथ पैर कटि आदि भागों को पवित्र करके, मिट्टी एवं जलसे कमण्डलु को अच्छी तरह साफ करके, पानी में ॐ का अक्षर लिखकर उससे स्नानीय जलको अभिमन्त्रित करके तीनवार पानी को आलोडितकर (मन्थनकर) पश्चात् स्नान क्रिया प्रारम्भ करें । स्नान करने के पश्चात् जैसे अपनी सम्प्रदायीय गुरु परम्परागत व्यवहार हो तदनुसार तीनवार विधिवत् आचमन करके पहले प्राणायाम करके तत्पश्चात् षडङ्ग न्यास पूर्वक १०८ वार मूल मन्त्र का जप करें । अथवा श्रीराम ब्रह्म का अनुचिन्तन

श्रीजानकीवल्लभाय नमः श्रीजगन्नाथाय नमः, इति भगवान्नाम्नां स्मरणं विधाय, द्वयमन्त्रं शरणागति मन्त्रं च द्वादशधा जप्त्वा, शुचौ प्रदेशे शोषणाय वस्त्राणि प्रसार्य, पवित्रे स्थाने च प्रागग्र उदगग्रं वा दण्डं निधाय, त्रिराचाम्य, द्विः प्रमृज्य च, तर्जन्यङ्गुष्ठाङ्गुलियोगेन नासापुटद्वयं, अङ्गुष्ठमध्यमाङ्गुलियोगेन नेत्रे, अङ्गुष्ठानामिकायोगेन श्रवणौ अङ्गुष्ठानामिकाङ्गुलियोगेन च स्कन्धौ संस्पृश्य सर्वेषामङ्गुलीनां संयोगेन नाभिं हृदयं च स्पृष्ट्वा, मूर्धानं च संस्पृश्य पुनः आचमेत् । इदमत्रावधेयम्→

विना यज्ञोपवीतेन तथामुक्तशिखोद्विजः ।
अप्रक्षालितपादस्तु आचान्तोप्यशुचिर्भवेत् ॥

बहिर्जानुरुपस्पृश्य एकहस्तापि तैर्जलैः ।
सोपानत्कस्तथा तिष्ठन् नैव शुद्धिमवाप्नुयात् ॥

करें । इसके वाद ॐ रामाय नमः से प्रारम्भ कर जगन्नाथाय नमः पर्यन्त भगवान् के नामोच्चारण पूर्वक उनके नामों का स्मरण करके, द्वयमन्त्र एवं शरणागति मन्त्रों को वारह-वारह वार जय करें । जप करलेने के पश्चात् पवित्र स्थान पर सूखने के लिये वस्त्रों को फैलाकर, जिसका आगे का शिरा पूर्वभाग अथवा उत्तर भाग में हो इसतरह त्रिदण्ड रखकर तीनवार आचमन करके तथा दो वार मूंह पोंछकर तर्जनी एवं अंगुष्ठा अंगुली को मिलाकर संयुक्त अङ्गुली से दोनों नासिका पुट को अङ्गुठा एवं मध्यमा अङ्गुली के संयोग से आँखों को, अङ्गुठा एवं अनामिका के योग से कानों को स्पर्श करें । अङ्गुष्ठा एवं अनामिका अङ्गुली के योग से दोनों स्कन्धों को सम्यक् स्पर्श करके सभी अङ्गुलियों के संयोग से नाभि एवं हृदय को छूकर और शिर का स्पर्श करके पुनः आचमन करें । यहाँ पर इस विषय का ध्यान रखाना चाहिये कि बिना यज्ञोपवीत से एवं खुली हुई शिखावाला ब्राह्मण तथा बिना पैर धोये आचमन करलेने पर भी अपवित्र होता है । दोनों घुटनों से वाहर हाथ रखकर और एक हाथ से दिया हुआ जल तथा जूता पहना हुआ एवं खडा होकर जो आचमन करता है वह अशुद्ध होता है । आचमन तो सदैव ब्राह्म तीर्थ से ही करना चाहिये अथवा ऋषि तीर्थ तथा देव तीर्थ से आचमन करना चाहिये । पितृ तीर्थ से आचमन कभी नहीं करना चाहिये ।

आचमनं तु सदैव ब्राह्मतीर्थेनैव कुर्यात् । ऋषितीर्थेन, देवतीर्थेन वा आचमेत् पितृतीर्थेन आचमनं न कुर्यात् । तथा च मनुः-

ब्राह्मणे विप्रस्तीर्थेन नित्यकालमुपस्पृशेत् ।
कायत्रैदशिकाभ्यां वा न पित्र्येण कदाचन ॥

अङ्गुष्ठमूलस्य तले ब्राह्मं तीर्थं प्रचक्षते ।
कायमङ्गुलिमूलेऽग्रेदैवपित्र्यं तयोरधः ॥

अत्र श्रीबौधायनश्चाह-पादप्रक्षालनशिष्टेन नाचमेद् यद्याचमेद् भूमौ श्रावयित्वा आचमेद् । अन्यत्रचोक्तम्-उद्धृत्यवामहस्तेन यः पिबेद् ब्राह्मणोजलम् । सुरापानेन तत्तुल्यं मनुः स्वायम्भुवोऽव्रवीत् । अलावुदा रुपर्णेन नारिकेलैः कपित्थकैः । तृणकाष्ठजलाधारैरन्यान्तरितमृण्मयैः । आचमेदिति भावः । आचमनानन्तरं यथाशक्तिप्रणवेन प्राणायामं कुर्यात् ।

तथा च वाशिष्ठः-

प्रणवेनैव कुर्याच्च प्राणायामान्यतिर्मुहुः ।
सर्वेषामपि पापानां संघाते समुपस्थिते ॥

जैसा कि इस विषय में मनुस्मृतिकार कहते हैं-ब्राह्मण सदा ब्राह्म तीर्थ से आचमन करें। ऋषि तीर्थ से अथवा देव तीर्थ से करें। पितृ तीर्थ से कदापि आचमन न करें। हाथ में अङ्गुष्ठ मूल के नीचे का भाग ब्राह्म तार्थ कहा जाता है। कनिष्ठिका अङ्गुली के मूलमें काय तीर्थ अथवा ऋषि तीर्थ कहा जाता है। अङ्गुलियों के अग्र भाग को देव तीर्थ कहते हैं। तथा अङ्गुली एवं अङ्गुष्ठा के मध्य भाग को पितृ तीर्थ कहते हैं। और इस विषय में आचार्य श्रीबोधायनजी कहते हैं-पैर धोने से बचा हुआ जलसे कभी आचमन नहीं करना चाहिये यदि आचमन करने की स्थिति पैदा ही हो जाय तो जमीन पर वहाकर पुनः आचमन करें। अन्यत्र भी कहा गया है। जो ब्राह्मण वांया हाथ से पानी डालकर हस्त जलको पीता है वह जल सुरा पान के तुल्य जल है। ऐसा स्वायंभुव मनु कहते हैं। तुमडी, काठ, पत्ता, नारियल, कपित्थ, मिट्टी या घास इत्यादि के आधार से जलको उठाकर आचमन करना चाहिये ।

पूरककुम्भकरेचकभेदैः प्राणायामः त्रिविधः, दक्षिणनासिकयावायोः पूरणं पूरकः। हृदिस्थापनं कुम्भकः। बहिः निस्सारणं रेचकः। प्राणायामकाले प्राणवायोर्निरोधात् वायुरुत्पद्यते, वायोरग्निर्जायते, वाय्वग्निभ्यामन्तरापः उत्पद्यते, तस्मादन्तः करणस्य विशुद्धिर्भवति।

तदुक्तम्-वशिष्ठेन-

यावत्यः पूरके मात्रा द्विगुणा कुम्भकेषु च।
रेचके च चातुर्गुण्यं प्राणायामोऽयमुच्यते ॥
पूरकं दक्षिणेनासे रेचकं वाम नासिके।
अङ्गुष्ठाङ्गुलिभिश्चैवं प्राणायामं समाचरेत् ॥
प्राणस्तु देहजो वायुः आयामस्तन्निरोधनम्।
दह्यन्तेध्यायमानानां धातूनां हि यथामलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्।

विषयेऽस्मिन् स्मृतिकारेण श्रीबोधायनेन-

आचमन करलेने के पश्चात् यथाशक्ति ॐकार के उच्चारण से प्राणायाम करें यह उच्चारण मानस होना चाहिये और इसप्रकार श्रीवशिष्ठजी कहे हैं समस्त पापों का समुदाय उपस्थित होने पर सभी पापों से निवृत्ति के लिये पुनः पुनः प्रणव के द्वारा ही संन्यासी प्राणायाम करें। प्राणायाम, पूरक, कुम्भक और रेचक भेदों से तीनप्रकार के होते हैं। दाहिनी नासिका के पुट से वायु को हृदय में भरना पूरक कहा जाता है। भरा हुआ वायु को हृदय देश में सुस्थिर रखना कुम्भक कहा जाता है। निरुद्ध वायु को वाहर निकालना रेचर कहा जाता है। प्राणायाम करने के समय प्राण वायु का निरोध होने के कारण हृदय देश में वायु उत्पन्न होता है। वायु से अग्नि उत्पन्न होता है। वायु और अग्नि के संयोग से अन्तःकरण में जल उत्पन्न होता है। उस जलसे अन्तःकरण की विशेष प्रकार से शुद्धि होती है। यह विषय श्रीसम्प्रदाय के पाँचवें आचार्य श्रीवशिष्ठजी के द्वारा कहा गया है कि जितना समय पूरक प्राणायाम में लगे उससे द्विगुण समय कुम्भक प्राणायाम में लगावें एवं पूरक प्राणायाम की अपेक्षा चतुर्गुण समय रेचक प्राणायाम में लगाना चाहिये इन तीनों का सम्मिलित नाम

बृक्षमूलिको वेदसंन्यासी । वेदवृक्षः प्रणवस्तस्य मूलं प्रणवात्मको वेदः प्रणवं ध्यायेत् । प्रणवोब्रह्मभूयाय कल्पते इति होवाच प्रजापतिः→ कठोपनिषदिचोक्तम्-

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति, तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति, तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥
एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतदेवाक्षरं परम् ।
एतदेवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥

वाचिक उपांशु मानसभेदन जपयज्ञः त्रिविधः । त्रयाणामपि उत्तरोत्तरः श्रेष्ठः । यस्य जपकाले स्पष्टपदाक्षरैः शब्दैः उच्चावचमुच्चारणं भवति स वाचिकः जपः । यत्र तु शब्दस्य शनैः उच्चारणं भवति किञ्चिदोष्ठौ प्रचलतः

प्राणायाम है । पूरक दक्षिण नासिका से करना चाहिये । और रेचक वाम नासिका से, कुम्भक के समय में अङ्गुठा से दक्षिण नासिका के छिद्र को प्राणायाम के समय बन्द रखें । तथा कनिष्ठिका एवं अनामिका से वाम नासिका के छिद्र को बन्द रखें । इसतरह प्राणायाम सम्पादन करें । देह में उत्पन्न होनेवाला वायु प्राण कहा जाता है । उसके अवरोध को आयाम कहा जाता है । जिसप्रकार आग से तपाये जाते हुए धातुओं का मल नष्ट हो जाता है उसीप्रकार प्राणायाम करने से इन्द्रियों के समस्त दोष जलजाते हैं । इस विषय में स्मृतिकार श्रीबौधायनजी के द्वारा कहा गया है-

वेदमूलक वैदिक संन्यासी होता है । वृक्ष वेदको कहते हैं । उसका मूल प्रणव है । और प्रणव स्वरूप वेद है । अत एव प्रणव (ॐकार) का ध्यान करें ''रामनाम्नः समुत्पन्नः प्रणवो मोक्षदायकः'' इस श्रीमद्रामायण के अनुसार प्रणव मोक्ष प्रदान करता है । ऐसा प्रजापति का भी वचन है और कठोपनिषद् में कहा गया है जिस पद को समस्त वेद व्याख्यान करते हैं तथा सभी प्रकार की तपस्याएं जिस पदको कहती हैं । जिस पदकी कामना करते हुए ब्रह्मचर्य आदि व्रत का परिपालन करते हैं । उस पदको संपेक्ष में मैं तुमको कहता हूँ । इस अविनाशि ब्रह्म को निश्चयात्मक बुद्धि से निर्णय करके यह ब्रह्म ही सर्व श्रेष्ठ है यह जानकर मानव जो जिस वस्तु को उसके लिये कामना करता है वह वस्तु उपलब्ध हो जाती है ।

सामान्य विधियज्ञ की अपेक्षा जपयज्ञ अतिशय महत्त्वपूर्ण है । वह जपयज्ञ

अवधानदानेन श्रवणयोग्योभवति मन्त्रः स उपांशुः जपः उच्यते । यस्मिन् जपे बुद्ध्या एव पराक्षरपंक्तेः स्मरणं भवति स्वयमपित्थं उच्चारणं श्रोतुं नार्हति केवलं शब्दार्थयोः विवेकः मनसि एव भवति तत्मानसमुच्यते ।

पादमाक्रम्य पादेन जपं नैव तु कारयेत् ।
शिरः प्रावृत्य वस्त्रेण ध्यानं नैव प्रशस्यते ॥
जपकाले न भाषेत नान्यानि प्रेक्षयेद्बुधः ।
न कम्पयेच्छिरोग्रीवं दन्ता नैव प्रकाशयेत् ॥
अङ्गुल्यग्रेषु यज्जप्तं यज्जप्तं मेरुलङ्घने ।
असंख्यातं च यज्जप्तं तज्जप्तं निष्फलं भवेत् ॥
अनामिकायां मध्ये च मध्याच्चाधः क्रमेण तु ।
तर्जन्या विजयान्ते च अक्षमाला करे स्थिता ॥
जपेद्द्वादशसाहस्त्रं मूलमन्त्रं प्रयत्नतः ।
सहस्त्रं श्रवणार्थी तु योगाभ्यासी शतं जपेत् ॥२१॥

वाचिक, उपांशु तथा मानस भेद से तीनों ही प्रकार के जपों में उत्तरोत्तर श्रेष्ठ कहे गये हैं जिसके जप के समय में स्पष्ट पदों वाले अक्षरों से ऊँचा नींचा उच्चारण होता है वह वाचिक जप कहा जाता है। जिस जपमें शब्द का तो मन्द मन्द उच्चारण होता है कुछ-कुछ दोनों ओठ हिलते हैं ध्यान देने पर सुनने योग्य होता है वह उपांशु जप कहा जाता है। और जिस जप में बुद्धि के द्वारा ही पद अक्षर और स्मरण होता है स्वयं भी जिस उच्चारण को नहीं सुन सकते हैं। केवल शब्दों अर्थों का विवेचन मनमें ही होता है वह मानस जप कहा जाता है। एक पैर से दूसरे पैर को दवाकर कभी भी जप नहीं करना चाहिये शिर को वस्त्र से अच्छी तरह आच्छादित करके ध्यान करना प्रशंसनीय, नहीं कहा गया है। जपके समय में वातें नहीं करनी चाहिये तथा अन्य वस्तुओं को समझदार व्यक्ति नहीं देखें। शिर अथवा गर्दन को नहीं हिलावें तथा दाँतों को भी वाहर नहीं निकालें अर्थात् हँसे नहीं। तथा अन्यत्र भी कहा गया है→अङ्गुलियों के अग्र भाग में जो जप किया जाता है अथवा सुमेरु को लांघकर जो जप होता है तथा विना गणना का जप ये सभी निष्फल होते हैं। अनामिका अङ्गुली के मध्यभाग से लेकर निचें के क्रम से तर्जनी अङ्गुलि के आरम्भ का पर्व

तक हाथ में अक्षमाला स्थित रहता है । इसप्रकार एकाग्रचित्त होकर बारह हजार मूलमन्त्र प्रयास पूर्वक जप करें । श्रवण की कामना रखनेवाला व्यक्ति एक हजार जप करें । और योगाभ्यासी एक सौ वार मूलमन्त्र का जप करें ॥२१॥

॥ संक्षिप्तश्रीमन्त्रराजजपविधिः ॥

शौचादि से निवृत्त होकर पूर्व अथवा उत्तर के तरफ मुंहकर पवित्र आसन पर वैठकर ॐरामाय नमः ॐरामभद्राय नमः ॐरामचन्द्राय नमः इन मन्त्र को बोलकर तीनवार आचमनकर ॐरघुनन्दनाय नमः इस मन्त्र को बोलकर हाथ धोवें तब ॐनमो भगवते रघुनन्दनाय रक्षोघ्नविशदाय मधुरप्रसन्नवदनाय अमिततेजसे बलाय रामाय विष्णवे नमः क्लीं तेजसे रां तारक ब्रह्म स्वाहा' इस मन्त्र से जल अभिमन्त्रितकर षडक्षर महामन्त्र को पढकर शिरपर उस जलको छिटके पुनः हाथ में जल लेकर नीचें लिखा विनियोग पढकर जल छोड दें-ॐअस्य श्री श्रीरामषडक्षर महामन्त्रराजस्य श्रीसीता ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीरामो देवता रां बीजं नमः शक्तिः रामाय कीलकं श्रीसीताराम प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः । तब न्यास करे-

ऋषिन्यास-ॐश्रीसीताऋषये नमः शिरसि । ॐगायत्री छन्दसे नमः मुखे । ॐश्रीरामो देवतायै नमः हृदि । ॐ रां बीजाय नमः पादयोः । ॐरामाय कीलकाय नमः सर्वांगे । करन्यास-ॐरां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ॐरीं तर्जनीभ्यां नमः । ॐरूं मध्यमाभ्यां नमः ॐरैं अनामिकाभ्यां नमः । ॐरौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐरः करतलकर पृष्ठाभ्यां नमः । अङ्गन्यास-ॐरां हृदयाय नमः । ॐरीं शिरसे स्वाहा । ॐरूं शिखायै वषट् । ॐरैं कवचाय हूम् । ॐरौं नेत्राभ्यां वौषट् । ॐरः अस्त्राय फट् । मन्त्राङ्गन्यास ॐ रां नमः मूर्ध्नि । ॐरामाय नमः नाभौ । ॐनमोनमः पादयोः । ॐरां बीजाय नमः दक्षिणस्तने । ॐनमः शक्तये नमः वामस्तने । ॐरामाय कीलकाय नमः हृदि । तब यथा शक्ति प्राणायाम कर इस श्लोक को बोलते हुये सर्वेश्वर श्रीरामजी का ध्यान करें-

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम् ।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम् ॥

इसके वाद 'ॐदाशरथाय विद्महे सीतावल्लभाय धीमहि तन्नो रामः प्रचोदयात्' इस श्रीराम गायत्री मन्त्र का बारह वार जप करें अनन्तर श्रीमन्त्रराज-

रां रामाय नमः

का कम से कम तीनमाला जपकर श्रीराम गायत्री का १२ वार जप करें। पुनः यथाशक्ति प्राणायाम कर १-श्रीरामः शरणं मम २-ॐश्रीमद्रामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये श्रीमते रामचन्द्राय नमः

ॐसकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ॥

इन तीन मन्त्रों को यथाशक्ति जप करते हुये सर्वेशश्रीरामचन्द्रजी को साष्टाङ्ग दण्डवत् कर-

श्रीरामं जनकात्मजामनिलजंवेधोवशिष्ठावृषी
योगीशं च पराशरं श्रुतिविदंव्यासंजिताक्षंशुकम् ।
श्रीमन्तं पुरुषोत्तमं गुणनिधिं गङ्गाधराद्यान् यतीन्
श्रीमद्राघवदेशिकञ्चवरदंस्वाचार्यवर्यं श्रये ॥
सीतारामसमारम्भां रामानन्दार्यमध्यमाम् ।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

इन गुरु परम्परा मन्त्रों को बोलते हुये सभी पूर्वाचार्यों का स्मरण पूर्वक श्रीगुरुदेवजी को साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करें ।

सर्वेश्वर श्रीरामपूजनम्

ॐश्रीरामाय नमः ॐश्रीरामचन्द्राय नमः ॐश्रीरामभद्राय नमः इन तीन मन्त्रों को बोलते हुये तीनवार आचमनकर **ॐश्रीदशरथवल्लभाय नमः** वोलकर हाथ धोलें । अनन्तर आचमनी या दाहिने हाथ में कुश तील तुलसी एवं जल लेकर **विनियोग** करे-

ॐअस्य श्रीराममहामन्त्रस्य श्रीसीताऋषिः गायत्री छन्दः श्रीरामोदेवता रां बीजम् नमः शक्तिः चतुर्विध पुरुषार्थसिद्धये पूजार्थे विनियोगः जल नीचें ताम्रपात्र में छोड दें ।

ऋष्यादिन्यासः-**ॐरां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ॐरीं तर्जनीभ्यां नमः ॐरूं मध्यमाभ्यां नमः ॐरैं अनामिकाभ्यां नमः ॐरौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः ॐरः करतलकपृष्ठाभ्यां नमः** इसप्रकार ऋष्यादिन्यास करके-

हृदयादिन्यासः-**ॐरां नमः ब्रह्मरन्ध्रे ॐरां नमः भ्रुवोर्मध्ये ॐमां नमः हृदि ॐयं नमः नाभौ ॐनं नमः लिङ्गे** (हाथ धोलें) **ॐमं नमः पादयोः** । इसप्रकार न्यास करके सर्वेश्वर श्रीरामजी का ध्यान करे-

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपित वामभागम् ।
पाणौ महाशायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम् ॥
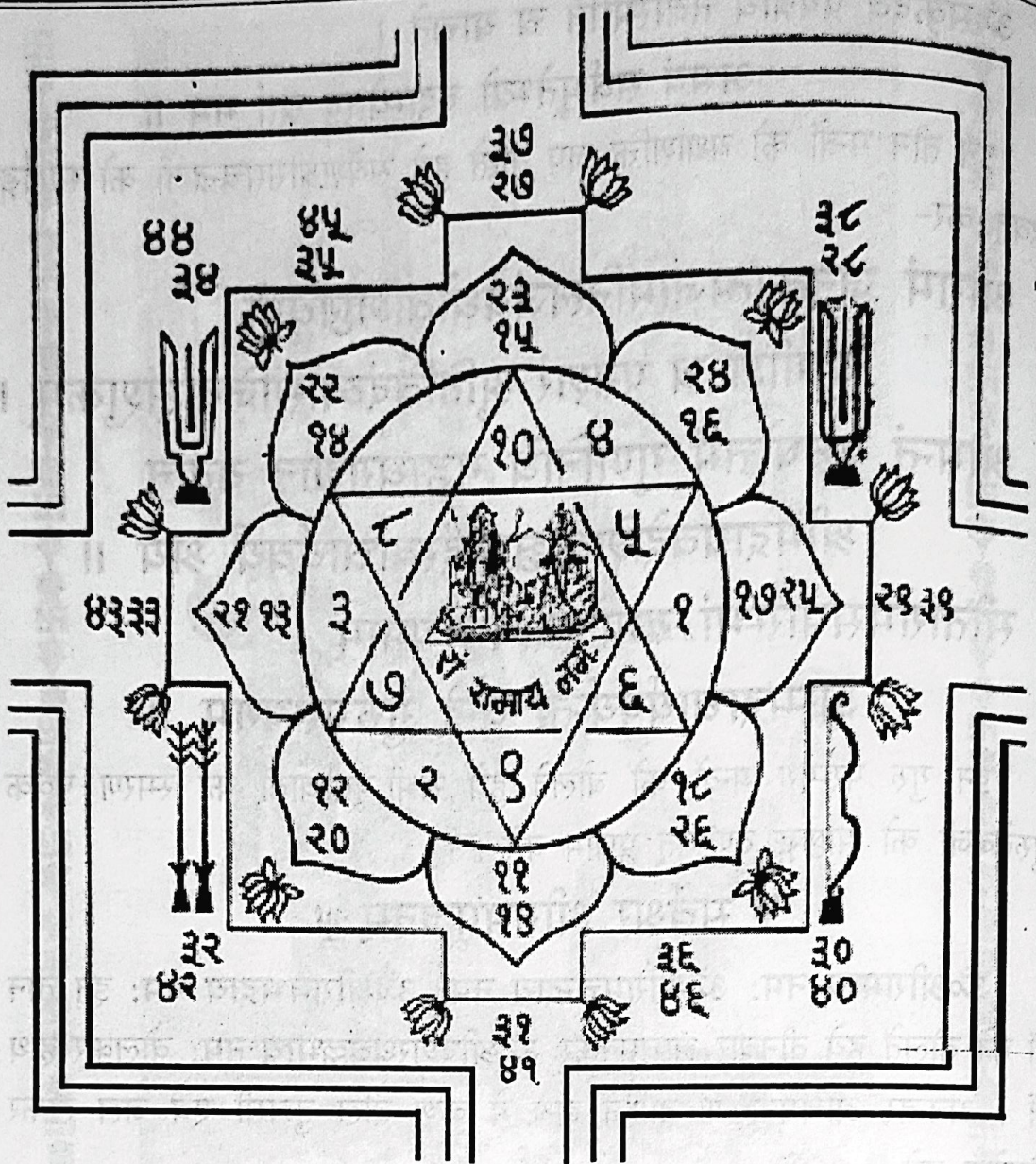
इसप्रकार श्रीरामजी का ध्यान कर सर्व कामना प्रद श्रीराममहायन्त्र संस्थापित पीठ में **ॐमं मण्डुकादि परतत्त्वान्तपीठदेवताभ्यो नमः** इस मन्त्र से पीठ देवता की पूजा करके निम्नप्रकार से नव पीठ शक्तियों की पूर्वादि क्रम से पूजा करे **ॐविमलायै नमः** गन्धाक्षत पुष्पाणि समर्पयामि । **ॐउत्कर्षिण्यै नमः** गन्धाक्षत पुष्पाणि समर्पयामि । **ॐज्ञानायै नमः** गन्धाक्षत पुष्पाणि समर्पयामि । **ॐक्रियायै नमः**

गन्धाक्षत पुष्पाणि समर्पयामि । **ॐयोगायै नमः** गन्धाक्षत पुष्पाणि समर्प यामि। **ॐप्रह्व्यै नमः** गन्धाक्षत पुष्पाणि समर्पयामि । **ॐसत्यायै नमः** गन्धाक्षत पुष्पाणि समर्पयामि । **ॐईशानायै नमः** गन्धाक्षत पुष्पाणि समर्पयामि । बीच में **ॐअनुग्रहायै नमः** गन्धाक्षतपुष्पाणि समर्पयामि । इसप्रकार पीठ शक्ति की पूजा करके स्वर्णादि निर्मित प्राण प्रतिष्ठा किया हुआ श्रीरामयन्त्र को **ॐनमो भगवते श्रीरामाय सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगपद्मपीठात्मने नमः** इस मन्त्र से पुष्पादि आसन प्रदान पूर्वक पीठ के मध्यभाग में श्रीरामयन्त्र को पधराकर निम्न लिखे अनुसार वेद मन्त्रों से दत्तचित्त होकर पूजा करे-

ध्यानम्

विकचपद्मदलायतवीक्षणं विधिभवादिमनोहरसुस्मितम् ।
जनकजादृगपाङ्गसमीक्षितं प्रणतसत्समनुग्रहकारिणम् ॥
मुनिमनः सुमधुव्रतचुम्बितस्फुटलसन्मकरन्दपदाम्बुजम् ।
बलवदद्भुतदिव्यधनुः शरांमहितजानुविलम्बिमहाभुजम् ॥
परार्घ्यहाराङ्गदचारुनूपुरं सुपद्मकिञ्जल्कपिशङ्गवाससम् ।
लसद्घनश्यामतनुं गुणाकरं कृपार्णवं सद्धृदयाम्बुजासनम् ॥
प्रसन्नलावण्य सुभृन्मुखाम्बुजं जगच्छरण्यं शरणं नरोत्तमम् ।
दयापरं दाशरथिं महोत्सवं स्मरामि रामं सहसीतया सदा ॥

इसप्रकार ध्यानकर ध्यान हेतु हाथों में लिये पुष्पों को श्रीरामयन्त्र में समर्पण करे ।

आवाहनम्

हरिः ॐ सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात् ।
सभूमिँसर्वतस्पृत्वा त्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥
श्रीरामचन्द्रममराधिपवृन्दसेव्यं सीतासुशोभितशुभाङ्गमनेकरूपम् ।
भक्तप्रियं परमकारुणिकं दयालुञ्चावाहयामि निजभक्तधृतावतारम् ॥

ॐभूर्भुवः स्वः सशक्तिक सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रमावाहयामि स्थापयामि सशक्तिक श्रीरामचन्द्र इहागच्छ इहतिष्ठ ।

॥ आसनम् ॥

हरिः ॐ पुरुष एवेद७सर्वं यद्भूतं यच्चभाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानोयदन्नेनातिरोहति ॥

वैदूर्यरत्नमणिमण्डिततहैमपीठं सिंहासनं रघुपते ? ह्युरीकुरु त्वम् ।
हे रावणान्तक ? हरप्रिय ? दीनबन्धो ? योगीन्द्रमानसमराल ? नमोनमस्ते ॥

ॐभूर्भुवः स्वः सशक्तिक श्रीरामचन्द्राय नमः आसनं समर्पयामि ।

॥ पाद्यम् ॥

हरिः ॐ एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पुरुषः ।
पादोऽस्यविश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतंदिवि ॥

द्यन्तिस्म ये हरधनुर्मिथिलेशपुर्यां सीतास्वयंवरविधौ सह लक्ष्मणेन ।
गत्वा हृतं सकलतीर्थजलं हि तेभ्यः पाद्यं ददामि सततं रघुपुङ्गवेभ्यः ॥

ॐभूर्भुवः स्वः सशक्तिक श्रीरामाय नमः पाद्यं समर्पयामि ।

॥ अर्घ्यम् ॥

हरिः ॐ त्रिपादूर्ध्वंउदैत्पुरुषः पादोस्येहाभवत्पुनः ।
ततो विष्वङ्व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥

नाथ ? त्वदीयचरणाम्बुजनिर्गतं यत् पाद्यं निपीय अमरा अजरा बभूवुः ।
अर्घ्यं गृहाण ननु तापहरं दयालो ? हे जानकीश ? रघुनाथ ? नमोनमस्ते ॥

ॐभूर्भुवः स्वः सशक्तिक श्रीरामाय नमः अर्घ्यं समर्पयामि ।

॥ आचमनम् ॥

हरिः ॐ ततो विराडजायत विराजो अधिपुरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथोपुरः ॥

यत्त्वं ददासि निजभक्तजनाय नैजं स्थानं मया सकलपापविनाशकारिन् ? ।
तस्याशया सुखदमाचमनं प्रदत्तं सीतापते ? ननु गृहाण परंपवित्रम् ॥

ॐभूर्भुवः स्वः सशक्तिक श्रीरामाय नमः आचमनं समर्पयामि ।

॥ स्नानम् ॥

हरिः ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतम्पृषदाज्यम् ।
पशूंस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्चये ॥

दुष्टं निशाचरचमूं परितः प्रकीर्णां हन्तुं प्रवृत्तमनीशं सततं नमामि ।
पञ्चामृतेन सलिलेन च शीतशीतं स्नानं ददामि भवते रघुनन्दनाय ॥

ॐभूर्भुवः स्वः सशक्तिक श्रीरामाय नमः स्नानीयं समर्पयामि ।

॥ वस्त्रम् ॥

हरिः ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः सामानि यज्ञिरे ।
छन्दाँसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥

पत्याशिवेन परिपूजितमात्मशक्त्या सत्या नमामि सुखदं चरणं त्वदीयम् ।
वस्त्रं ददामि रघुपुंगव ? सूक्ष्मसूक्ष्मं तत्त्वं गृहाण मुदितो भव रक्ष सर्वान् ॥

ॐभूर्भुवः स्वः सशक्तिक श्रीरामाय नमः वस्त्रं समर्पयामि ।

॥ यज्ञोपवीतम् ॥

हरिः ॐ तस्मादश्वा अजायन्त येकेचोभयादतः ।
गावोहजज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥

तिष्ठेति राक्षसचमूं परिभाषमाणं रामं भजामि जगदीश्वरमादिदेवम् ।
यज्ञोपवीतमिह यज्ञविधौ प्रदत्तं तत्त्वं गृहाण परमेश्वर ? सृष्टिकर्तः ॥

ॐभूर्भुवः स्वः सशक्तिक श्रीरामचन्द्राय नमः यज्ञोपवीतं समर्पयामि ।

॥ चन्दनम् ॥

हरिः ॐ तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषञ्जातमग्रतः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥

सद्भक्तदुःखपरिशीलनखिन्नचेतः ? सद्भक्तरक्षणविधौ परिलब्धकीर्ते ?
सद्गन्धचन्दनमहं परिदातुकामः तन्मे गृहाण रघुनाथ ? मनोऽभिरामम् ॥

ॐभूर्भुवः स्वः सशक्तिक श्रीरामचन्द्राय नमः चन्दनं समर्पयामि ।

॥ पुष्पाणि ॥

हरिः ॐ यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्यासीत्किम्बाहू किमूरूपादा उच्येते ॥

श्रयन्ति देवा मुनयश्च नित्यं यं रामचन्द्रं करुणासमुद्रम् ।
तस्मै तुलस्या परिपूरितानि पुष्पाणि मालोल्लसितानि पद्मः ॥

ॐभूर्भुवः स्वः सशक्तिक श्रीरामचन्द्राय नमः पुष्पाणि समर्पयामि ।

॥ धूपः ॥

हरिः ॐ ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहूराजन्यः कृतः ।
ऊरूतदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याँ शूद्रो अजायत ॥
मैथिलो जनको राजा सुतां यस्मै ददौ मुदा ।
तस्मै ददामि रामाय धूपं गन्धयुतं मुदा ॥
ॐभूर्भुवः स्वः सशक्तिक श्रीरामाय नमः धूपं समर्पयामि ।

॥ दीपः ॥

हरिः ॐ चन्द्रमामनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्चमुखादग्निरजायत ॥
सौमित्रियुक्तैर्नगरीं समेत्य लङ्कां दशास्यो निहतोरणे यैः ।
तेभ्यो नमस्कृत्य ददामि दीपं तमोपहं तद्ग्रहणं कुरुध्वम् ॥
ॐभूर्भुवः स्वः सशक्तिक श्रीरामचन्द्राय नमः दीपं समर्पयामि ।

॥ नैवेद्यम् ॥

हरिः ॐ नाभ्या आसीदन्तरिक्षँशीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथालोकाँ २ अकल्पयन् ॥
वृक्षेभ्य आहृत्य फलैः समेतं मिष्टान्नयुक्तं बहुलं रसाढ्यम् ।
नैवेद्यमत्रापि गृहाण नाथ ? सीतापते ? राम ? नमोनमस्ते ॥
ॐभूर्भुवः स्वः सशक्तिक श्रीरामचन्द्राय नमः नैवेद्यं समर्पयामि ।

॥ ताम्बूलम् ॥

हरिः ॐ यत्पुरुषेण हविषा देवा यद्यज्ञमतन्वत ।
वसन्तोस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥
एलादिकर्पूरयुतं रसाढ्यं सुस्वादुसौगन्धसमन्वितं च ।
ताम्बूलमानन्दकरं गृहाण दत्तं मया राम ? मुनीन्द्रपूज्य ? ॥
ॐभूर्भुवः स्वः सशक्तिक श्रीरामचन्द्राय नमः ताम्बूलं समर्पयामि ।

॥ दक्षिणा ॥

हरिः ॐ सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्तसमिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञन्तन्वाना अवध्नन् परुषं पशुम् ॥

सीतापते ? रघुपते ? शुभदक्षिणेयं दत्तामया सकलकर्म समाप्तियोगे ।
तां त्वं गृहाण मुदितोभवमुक्तिदायिन् ? मुक्ता भवन्ति सुजनाः कृपया तवैव ॥

ॐभूर्भुवः स्वः सशक्तिक श्रीरामचन्द्राय नमः दक्षिणां समर्पयामि ।

♆ पुष्पाञ्जलिः ♆

हरिः ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
तेह नाकम्महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥
पुष्पाञ्जलिं निखिलकर्मसमाप्तिकर्मः तुभ्यं ददामि रघुपुङ्गव ? दीनबन्धो ? ।
सीतापते ? भरतपूर्वज ? तं गृहाण विश्राममत्र करवाणि नमोनमस्ते ॥

ॐभूर्भुवः स्वः सशक्तिक श्रीरामचन्द्राय नमः पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि ।

♆ आवरणपूजा ♆

ॐसंविन्मयः परो देवः परामृतरसप्रियः ।
अनुज्ञां देहि मे राम ? परिवारार्चनाय ते ॥

इस मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित कर सर्वेश्वर श्रीरामजी से उनके परिवार पूजन हेतु आज्ञा प्राप्तकर प्रथमावरणादि क्रम से पूजा करे-

♆ प्रथमावरणम् ♆

यन्त्र में दर्शित अङ्क क्रमानुसार १-सर्वेश्वर श्रीरामजी के वाम भाग में **ॐसर्वेश्वरी श्रीसीतायै नमः**, ॐश्रीसीतायाः पादुकां सर्वोपचारैः पूजयामि नमस्करोमि २-अग्निकोण में **ॐशाङ्‌र्गाय नमः**, सर्वोपचारैः श्रीशार्ङ्गं पूजयामि नमस्करोमि ३-दक्षिण पार्श्व में **ॐशराय नमः**, सर्वोपचारैः श्रीशरं पूजयामि नमस्करोमि । ४-वामभाग में **ॐतूणीराय नमः**, सर्वोपचारैः श्रीतूणीरं पूजयामि नमस्करोमि ।

ॐअभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल ? ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम् ॥

♆ द्वितीयावरणम् ♆

षट् कोण केसर के अग्नि कोण में **५-ॐरां हृदयाय नमः** । नैऋत्ये **६-ॐरीं शिरसे स्वाहा** । वायव्ये **७-ॐरूं शिखायै वषट्** । ऐशान्ये **८-ॐरैं कवचाय हुम्** । पूज्य तथा पूज के मध्य में **९-ॐरौं नेत्राभ्यां वौषट्** । श्रीरामजी के पश्चिम में **१०-ॐरः अस्त्राय फट्** ।

ॐअभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल ? ।

भक्त्या समर्पये तुभ्यं द्वितीयावरणार्चनम् ॥

☫ तृतीयावरणम् ☫

षट् कोण केसर के बाहर अष्टदल में श्रीरामजी एवं पूजक के बीच पूर्व दिशा की कल्पना कर पूर्वादि क्रम से **११-ॐश्रीहनुमते नमः** श्रीहनुमन्तं सर्वोपचारैः पूजयामि नमस्करोमि । **१२-ॐश्रीसुग्रीवाय नमः** श्रीसुग्रीवं सर्वोपचारैः पूजयामि नमस्करोमि । **१३-ॐश्रीभरताय नमः** श्रीभरतं सर्वोपचारैः पूजयामि नमस्करोमि । **१४-ॐश्रीविभीषणाय नमः** श्रीविभीषणं सर्वोचारैः पूजयामि नमस्करोमि **१५-ॐ श्रीलक्ष्मणाय नमः** श्रीलक्ष्मणं सर्वोपचारैः पूजयामि नमस्करोमि । **१६-ॐश्रीअङ्गदाय नमः** श्रीअङ्गदं सर्वोपचारैः पूजयामि नमस्करोमि । **१७-ॐश्रीशत्रुघ्नाय नमः** श्रीशत्रुघ्नं सर्वोपचारैः पूजयामि नमस्करोमि । **१८-ॐश्रीजाम्बवते नमः** श्रीजाम्बवन्तं सर्वोपचारैः पूजयामि नमस्करोमि ।

ॐअभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल ? ।

भक्त्या समर्पये तुभ्यं तृतीयावरणार्चनम् ॥

☫ चतुर्थावरणम् ☫

अष्टदल के अग्रभाग में **१९-ॐश्रीस्त्रष्ट्रे नमः** श्रीस्त्रष्टारं सर्वोपचारैः पूजयामि नमस्करोमि । **२०-ॐश्रीजयन्ताय नमः** श्रीजयन्तं सर्वोपचारैः पूजयामि नमस्करोमि । **२१-ॐश्रीविजयाय नमः** श्रीविजयं सर्वोपचारैः पूजयामि नमस्करोमि । **२२-ॐश्री सुराष्ट्राय नमः** श्रीसुराष्ट्रं सर्वोपचारैः पूजयामि नमस्करोमि । **२३-ॐश्रीराष्ट्रवर्धनाय नमः** श्रीराष्ट्रवर्धनं सर्वोपचारैः पूजयामि नमस्करोमि । **२४-ॐश्रीअकोपाय नमः** श्रीअकोपं सर्वोपचारैः पूजयामि नमस्करोमि । **२५-ॐश्रीधर्मपालाय नमः** श्रीधर्म पालं सर्वोपचारैः पूजयामि नमस्करोमि । **२६-ॐश्रीसुमन्ताय नमः** श्रीसुमन्तं सर्वोपचारैः पूजयामि नमस्करोमि ।

ॐअभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल ? ।

भक्त्या समर्पये तुभ्यं चतुर्थावरणार्चनम् ॥

☫ पञ्चमावरणम् ☫

अनन्तर भूपुर में पूर्वादि क्रमसे **२७-ॐलं श्रीइन्द्राय नमः** श्रीइन्द्रं सर्वोपचारैः

पूजयामि नमस्करोमि । **२८-ॐरं श्रीअग्नये नमः** श्रीअग्निं सर्वोपचारैः पूजयामि नमस्करोमि । **२९-ॐमं श्रीययाय नमः** श्रीयमं सर्वोपचारैः पूजयामि नमस्करोमि । **३०-ॐक्षं श्रीनिर्ऋतये नमः** श्रीनिर्ऋतिं सर्वोपचारैः पूजयामि नमस्करोमि । **३१-ॐवं श्रीवरुणाय नमः** श्रीवरुणं सर्वोपचारैः पूजयामि नमस्करोमि । **३२-ॐवं श्रीवायवे नमः** श्रीवायुं सर्वोपचारैः पूजयामि नमस्करोमि । **३३-ॐकुं श्रीकुवेराय नमः** श्रीकुवेरं सर्वोपचारैः पूजयामि नमस्करोमि । **३४-ॐहं श्रीईशानाय नमः** श्रीईशानं सर्वोपचारैः पूजयामि नमस्करोमि । इन्द्रेशानयोर्मध्ये **३५-ॐआं श्रीब्रह्मणे नमः** श्रीब्रह्माणं सर्वोपचारैः पूजयामि नमस्करोमि । वरुणनिऋतियोर्मध्ये **३६-ॐह्रीं श्रीअनन्ताय नमः** श्रीअनन्तं सर्वोपचारैः पूजयामि नमस्करोमि ।

ॐअभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल ? ।

भक्त्या समर्पये तुभ्यं पञ्चमावरणार्चनम् ॥

❀ षष्ठावरणम् ❀

भू पुर के बाहर पूर्वादि क्रम से **३७-ॐवं श्रीव्रजाय नमः** श्रीव्रजं सर्वोपचारैः पूजयामि नमस्करोमि । **३८-ॐशं श्रीशक्तये नमः** श्रीशक्तिं सर्वोपचारैः पूजयामि नमस्करोमि । **३९-ॐदं श्रीदण्डाय नमः** श्रीदण्डं सर्वोपचारैः पूजयामि नमस्करोमि । **४०-ॐखं श्रीखड्ग्राय नमः** श्रीखड्गं सर्वोपचारैः पूजयामि नमस्करोमि । **४१-ॐपं श्रीपाशाय नमः** श्रीपाशं सर्वोपचारैः पूजयामि नमस्करोमि । **४२-ॐअं श्रीअंकुशाय नमः** श्रीअंकुशं सर्वोपचारैः पूजयामि नमस्करोमि । **४३-ॐगं श्रीगदायै नमः** श्रीगदां सर्वोपचारैः पूजयामि नमस्करोमि । **४४-ॐत्रिं श्रीत्रिशूलाय नमः** श्रीत्रिशूलं सर्वोपचारैः पूजयामि नमस्करोमि । **४५-ॐपं श्रीपद्माय नमः** श्रीपद्मं सर्वोपचारैः पूजयामि नमस्करोमि । **४६-ॐचं श्रीचक्राय नमः** श्रीचक्रं सर्वोपचारैः पूजयामि नमस्करोमि ।

ॐअभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल ? ।

भक्त्या समर्पये तुभ्यं श्रीषष्ठावरणार्चनम् ॥

❀ प्रार्थना ❀

जगत्पते ? श्रीश ? जगन्निवास ? प्रभो ? जगत्कारण ? रामचन्द्र ? ।
नमोनमः कारुणिकाय तुभ्यं पादाब्जयुगमे तव भक्तिरस्तु ॥१॥
मनो मिलिन्दस्तव पादपङ्कजे रमार्चिते संरमतां भवे भवे ।

यशः श्रुतौ ते मम कर्णयुग्मकं त्वद्भक्तसङ्गोऽस्तु सदा मम प्रभो ? ॥२॥
श्रीरामचन्द्रचरणौ मनसा स्मरामि श्रीरामचन्द्रचरणौ वचसा गृणामि ।
श्रीरामचन्द्रचरणौ शिरसा नमामि श्रीरामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये ॥३॥

ॐ दण्डवत्प्रणाम ॐ

संसारसागरान्नाथौ पुत्रमित्रग्रहाकुलात् ।
गोप्तारौ मे दयासिन्धू प्रपन्नभयभञ्जनौ ॥

योऽहं ममास्ति यत्किञ्चिदिह लोके परत्र च ।
तत्सर्वं भवतोरेव चरणेषु समर्पितम् ॥

अहमस्म्यपराधानामालयस्त्यक्तसाधनः ।
अगतिश्च ततो नाथौ भवन्तावेव मे गतिः ॥

तवास्मि जानकीकान्त ? कर्मणा मनसा गिरा ।
रामकान्ते ? तवैवास्मि युवामेव गती मम ॥

शरणं वां प्रपन्नोऽस्मि करुणानिकराकरौ ।
प्रसादं कुरुतां दासे मयि दुष्टेऽपराधिनि ॥

मत्समोनास्ति पापात्मा त्वत्समोनास्ति पापहा ।
इति सञ्चित्य देवेश ? यथेच्छसि तथा कुरु ॥

अन्यथा हि गतिर्नास्ति भवन्तौ हि गतिर्मम ।
तस्मात्कारुण्यभावेन कृपां कुरु कृपानिधे ? ॥

दासोऽहं शेषभूतोऽहं तवैव शरणं गतः ।
पराधितोऽहं दीनोऽहं पाहि मां करुणाकर ? ॥

इसप्रकार मधुर वाणी सुस्वर मे वोलते हुये संस्थापित सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी को सादर दण्डवत् प्रणाम करे ॥२२॥

卐 सन्ध्योपासनम् 卐

सन्ध्योपासनं द्विजानं सर्वेषामाश्रमिणां चात्यावश्यकं कर्म इति शास्त्रेषु

ॐ सन्ध्योपासन ॐ

ब्राह्मण क्षत्रिय एवं वैश्य तथा सभी आश्रमों में निवास करनेवालों के लिये

निश्चितम्। सन्ध्या हीनानां कुत्रापि वैदिकेषु कर्मसु नाधिकार इति तन्निरूप्यते। तदुक्तम् दक्षस्मृतौ-

सन्ध्यां नोपासते यस्तु ब्राह्मणो हि विशेषतः।
स जीवन्तेव शूद्रः स्यान् मृतः श्वाश्चैव जायते॥
सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हसर्वकर्मसु।
यदन्यत् कुरुते कर्म न तस्य फलभाग् भवेत्॥
पूर्वां सन्ध्यां सनक्षत्राम् उपासीत यथाविधि।
गायत्रीमभ्यसेत्तावत् यावदादित्यदर्शनम्॥
उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां सादित्यां च यथा विधि।
गायत्रीमभ्यसेत्तावद् यावदादित्यदर्शनम्॥

ᛘ संक्षिप्तसन्ध्योपासनविधिः ᛘ

ॐअपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेतपुण्डरीकाक्षं सवाह्याभ्यन्तः शुचिः॥

सन्ध्योपासन करना अत्यावश्यक कर्तव्य है। ऐसा शास्त्रों में सिद्धान्त रूप में निश्चित किया गया है। सन्ध्या कर्म से विहीन द्विजों का किन्हीं भी वैदिक कर्मों में अधिकार नहीं है ऐसा वेद प्रमाणित धर्म शास्त्रों द्वारा प्रतिपादन किया जाता है। जो ब्रह्मण विशेष रूपसे सन्ध्योपासन कर्म का सम्पादन विधिवत् नहीं करता है। वह अपने जीवन काल में ही शूद्रत्व को प्राप्त करता है। इस भौतिक शरीर को परित्याग करने के वाद कुक्कुर योनि को प्राप्त करता है। सन्ध्योपासन कर्म से विहीन द्विजाति सदैव अशुचिता को प्राप्त रहता है, एवं समस्त वैदिक कर्मों के अयोग्य हो जाता है। अर्थात् विना सन्ध्योपासन के किसी भी वैदिक कर्म में अधिकार नहीं है, उस कर्म का वह फल भागी नहीं होता है। जिस काल में आकाश में तारे चिम चिमाते ही रहें, उस समय में प्रातःकालीन सन्ध्योपासन करना चाहिये। वह शास्त्रीय विधान के अनुसार करना चाहिये, तब तक गायत्री का अभ्यास करना चाहिये जबतक कि भगवान् भास्कर का दर्शन न हो जाय। आकाश मण्डल में भगवान् सूर्य के रहते ही शास्त्रीय विधान के अनुसार सायं कालीन सन्ध्योपासन करके गायत्री का जप तबतक करना चाहिये जबतक सूर्य का दर्शन होता रहे।

इति मन्त्रेणात्मनः सर्वाङ्गे जलं सिञ्चेत् ।

ततो-भगवदाज्ञया श्रीरामकैङ्कर्यस्वरूपं सन्ध्यावन्दनं कर्माहमाचरिष्ये इति सङ्कल्प्य-

ॐअच्युताय नमः, ॐअनन्ताय नमः, ॐगोविन्दाय नमः, इति त्रिराचम्य, ॐरामचन्द्राय नमः इति हस्तौ प्रक्षाल्य, ॐरामाय नमः, ॐरामभद्राय नमः, ॐरामचन्द्राय नमः, ॐरघुनाथाय नमः, ॐजानकी वल्लभाय नमः, ॐविष्णवे नमः, ॐमधुसूदनाय नमः, ॐत्रिविक्रमाय नमः, ॐवामनाय नमः, ॐजगन्नाथाय नमः, इति द्वादशनामभिः करन्यासं अङ्गन्यासं च विधाय ।

ॐसूर्य्यश्चमा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम् यद्रात्र्या पापमकार्षम्, मनसा वाचा हस्ताभ्याम् पद्भ्यामुदरेण शिश्ना रात्रिस्तदववलुम्पतु यत् किञ्चिद्दुरितं मयि, इदमहं माममृतयोनौ, सूर्य्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा ।

卐 अब संक्षिप्त सन्ध्योपासन विधि कहते हैं 卐

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा...इस मन्त्र से अपना सभी अङ्ग जलसे अभिषिक्त कर तत्पश्चात् भगवान् श्रीरामजी के आदेश से उनका कैङ्कर्य स्वरूप सन्ध्यावन्दन कर्म मैं सम्पादन करुँगा । यह सङ्कल्प करके ॐअच्युताय नमः-आदि मन्त्रों से तीनवार आचमन करके ॐरामचन्द्राय नमः पढकर हाथों को प्रक्षालित कर ॐरामाय नमः से लेकर ॐजगन्नाथाय नमः तक बारह नाम मन्त्रों से करन्यास एवं अङ्गन्यास सम्पादन करके ॐसूर्यश्च मा मन्युश्च-इस मन्त्र से प्रातः कालीन सन्ध्या में आचमन करके पूर्व निर्देशानुसार करन्यास एवं अङ्गन्यास करे । तत्पश्चात् आपोहिष्ठामयोभुवः...इत्यादि सात मन्त्रों से शिर का अभिषेक कर आठवाँ मन्त्र से भूमि को अभिषिक्त करे । पुनः नवम मन्त्र से अपने शिर का अभिषेक करे । पुनः ॐद्रुपदादिव...इस मन्त्र से तीनवार अपने शिर का मार्जन करे । इसके वाद ॐऋतञ्च सत्यञ्चा...इस मन्त्र से दाहिना हाथ में विद्यमान जलसे नाक का संयोगकर श्वास छोडता हुआ तीनवार अथवा एक वार उपर्युक्त मन्त्र को पढें । एवं हाथ में विद्यमान जलको अपनी वायीं ओर भूमि पर फेंक देवें । पुनः अन्तश्चरसि भूतेषु...इत्यादि मन्त्र से आचमन करके मूलमन्त्र से प्राणायाम

इति मन्त्रेण प्रातः सन्ध्यायामाचम्य, यथा पूर्वम् करन्यासमङ्गन्यासञ्च कुर्यात् । तत आपोहिष्ठेत्यादिऋग्भिः सप्तभिः शिर अभिषिञ्चेत्, अष्टमेन भूमिं नवमेन च पुनः शिरोऽभिषिञ्चेत् ।

१-ॐआपोहिष्ठा मयोभुवः । (२) ॐतान ऊर्जे दधातन । (३) ॐमहेरणाय चक्षसे । (४) ॐयोवः शिवतमो रसः । (५) ॐतस्य भाज यतेहनः । (६) ॐउशतीरिव मातरः । (७) तस्मा अरं गमामवः । (८) ॐ यस्य क्षयायजिन्वथ । (९) ॐआपोजनयथा च नः ।
ॐद्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव ।
पूतं पवित्रेणवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः ॥ इतिमन्त्रेण त्रिं शिरः प्रमार्जयेत् ।

ॐऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धान्तपसो द्यजायत । ततो रात्रिरजायत, ततः समुद्रो अर्णवः । समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत । अहोरात्राणि विदध द्विश्वस्य मिषतोवशी । सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् । दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः । इति मन्त्रेण दक्षिणहस्तस्थितेन जलेन घ्राणं संयोज्य स्वासं मुञ्चन् त्रिं सकृद् वा पठेत् जपानन्तरं हस्तस्थितं जलं स्व वाम भागे भूमौ क्षिपेत् ।

कर ॐभूर्भुवः स्वः...इस गायत्री मन्त्र से भगवान् सूर्य को तीनवार अर्घ्य देकर देवताओं का तर्पण करे । देवताओं के तर्पण में पूर्व में तीर्थों का वर्णन किया जा चुका है तदनुसार देवतीर्थ से ॐरामं तर्पयामि बारह नामों के द्वारा जलसे बारह वार तर्पण करके भगवान् श्रीरामजी की प्रसन्नता के लिये उनका सेवन स्वरूप गायत्री जप मैं करुँगा इसप्रकार सङ्कल्प करके आचमन एवं प्राणायाम कर गायत्री का आवाहन करे । ॐआगच्छ वरदे देवि...इस मन्त्र से गायत्री का आवाहन कर ॐतेजोऽसि शुक्रमासि...तथा ॐगायत्र्यस्येकवदी...इन मन्त्रों से वेद माता गायत्री का उपस्थान कर अपने समय एवं सामर्थ्य के अनुसार गायत्री मन्त्र का जप करे । गायत्री जप करलेने के पश्चात् ॐविश्वात्मन् देवलोकेस्मि...इस मन्त्र से अपने अभीष्ट देव भगवान् श्रीरामजी को जप का समर्पण करे । भगवान् को जप निवेदन करलेने के पश्चात् उत्तरे शिखरे जाते...इस मन्त्र को पढकर वेद माता गायत्री का विसर्जन करे । तत्पश्चात् भगवान् श्रीरामजी की प्रसन्नता के लिये मैं सूर्योपस्थान करुँगा इसप्रकार संकल्प करके पूर्व

"ॐअन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः । त्वं यज्ञस्त्वं वषट् कारस्त्वमिन्द्रस्त्वं रुद्रस्त्वं विष्णुस्त्वं ब्रह्मत्वं प्रजापतिः त्वं तदाप आपोज्योती रसोऽमृतम् ब्रह्मभूर्भुवः सुवरोम् । इति मन्त्रेणाचम्य, मूलेन प्राणानायम्य

"ॐभूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियोयोनः प्रचोदयात्" इति मन्त्रेण सूर्याय त्रिः अर्घं दत्वा, देवान् तर्पयेत् ।

तत्र मन्त्राः १-ॐरामं तर्पयामि (२) ॐकेशवं तर्पयामि (३) ॐमाधवं तर्पयामि (४) ॐगोविन्दं तर्पयामि (५) ॐविष्णुं तर्पयामि, (६) ॐमधुसूदनं तर्पयामि (७) ॐत्रिविक्रमं तर्पयामि (८) ॐवामनं तर्पयामि (९) ॐश्रीधरं तर्पयामि (१०)ॐहृषीकेशं तर्पयामि (११) ॐपद्मनाभं तर्पयामि, (१२) ॐदामोदरं तर्पयामि, इति देवतीर्थेन जलेन द्वादशधा तर्पणं विधाय । ॐश्रीरामप्रीतिकाम गायत्रीजपं करिष्ये इति सङ्कल्पं कुर्यात्-आचम्य, प्राणानायम्य-

ॐआगच्छ वरदे देवित्र्यक्षरे ब्रह्मवादिनी ।
गायत्रि छन्दसां मातः इदं ब्रह्म जुषस्व मे ॥

इति आवाह्य "ॐतेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धामनामासि प्रियन्देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि ॐगायत्र्यस्येकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पदि नहिदद्यसे नमस्ते तुरीयाय दर्शिताय पदाय परो रजसे । एभिर्मन्त्रैरुपस्थाय यथाशक्तिगायत्री मन्त्रस्य जपं कुर्यात् ।

निर्दिष्ट मन्त्रों से तीनवार आचमन एवं मूलमन्त्र से प्राणायाम करके भगवान् सूर्य के अभिमुख होकर दोनों हाथों को जोडकर ॐउद्वयत् तमसः परि...से लेकर शतं भूयश्च शरदः शतात्...पर्यन्त निर्दिष्ट मन्त्रों के द्वारा भगवान् सूर्य का उपस्थान कर पुनः भगवान् श्रीरामजी को आकाशात् पतितं तोऽयं...इत्यादि मन्त्र से निवेदन करे । इसका भाव यह है कि जिस प्रकार आकाश से गिरा हुआ जल सर्वतोभावेन समुद्र में जाता है। उसीप्रकार जिस किसी देवता को किया गया नमस्कार भगवान् श्रीरामजी को जाता है । क्योंकि भगवान् श्रीरामजी सर्वदेवमय हैं इस वात को गीता में भी कहा गया है कि जो कोई प्राणी किसी देवता की उपासना करता है उन सभी उपासनाओं का परिणाम भगवान् के पास ही जाता है तथा उनसे ही उपासकों को फलोपलब्धि होती

ॐविश्वात्मन् देवलोकेश रामचन्द्र दयानिधे ।
गृहाणेमं जपं नाथ ? कृपया परया प्रभो ॥ इतिश्रीरामाय जपनिवेदनं कुर्यात् ।
ततः श्रीरामप्रीत्यर्थम् सूर्योपस्थानमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य, त्रिराचम्य प्राणानायम्य सूर्याभिमुखः, इमान् मन्त्रान् बद्धकरपुटः पठेत् ।

"ॐउद्वयन्तमसस्परि स्वः पश्यन्तमुत्तरम् ।
देवन्देवत्रा सूर्य्यमगन्मज्योतिरुत्तमम् ॥१॥

ॐउदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः दृशे विश्वाय सूर्य्यम् ।

ॐचित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्ने आप्रा द्या वा पृथिवी अन्तरिक्षऽसूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ।

ॐतच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शतं, श्रृणुयाम शरदः शतं, प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः श्याम शरदः शतम्भूयश्च शरदः शतात् ।एभिः मन्त्रैः सूर्योपस्थानं विधाय-

आकाशात् पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम् ।
सर्वदेव नमस्कारः श्रीरामं प्रतिगच्छति ॥

इत्थं सन्ध्यावन्दनं परिसमाप्य श्रीरामं यथालब्धोपचारैः पूजयेत् ।

त्रिकालमेककालं वा पूजयेत् पुरुषोत्तमम् । कात्या.स्मृतिः। ततः प्रभुं
"उरसः शिरोदृष्टिमनोवचः पदद्वयप्राजत्करयुगमजानुभिः ।
अङ्गैः क्षितौ तं प्रणमेदथाष्टभिदीर्घं तथैतैः कृतधीश्च दण्डवत् ॥"

इत्याचार्योक्तदिशा दण्डवत् प्रणमेत्, ततो गुरूनन्याश्च पूज्यान् यथा श्रीसम्प्रदायं प्रणमेत् ।

है। इसप्रकार सन्ध्यावन्दन कर्म यथाविधि परिपूर्ण कर जितना भी पूजन का साधन उपलब्ध हो उन-उन उपचारों से भगवान् श्रीरामजी की श्रीसम्प्रदाय परम्परा के अनुसार पूजन करके प्रभु को दण्डवत् प्रणाम करे। तथा तत्पश्चात् अपने गुरु एवं अन्य पूजनीय लोगों को प्रणाम करें ।

मध्याहन कालीन सन्ध्या एवं सायं कालीन सन्ध्या में केवल आचमन मन्त्र भिन्न है। अन्य सव कुछ नियम पूर्ववत् है। मध्याह्न काल में ॐ आपः पुनन्तु

मध्याह्नसन्ध्यायामाचनमन्त्रः पृथक् सायं सन्ध्यायामपि पृथगन्यत् तुल्यम्। मध्याह्ने-आचमनमन्त्रः-ॐआपः पुनन्तु पृथिवीं पृथिवी पूता पुनातु माम् । यदुच्छिष्टमभोज्यञ्च यद्वादुश्चरितं मम । सर्वं पुनन्तु मामापः असताञ्च प्रतिग्रहᳬस्वाहा ।

सायं सन्ध्यायान्तु-ॐअग्निश्च मामन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्तां, यदह्ना पापमकार्षम् मनसा वाचा पद्भ्यामुदरेण शिश्ना अहस्तदवलुम्पतु यत् किञ्चिद् दुरितम्मयि इदमहमां सत्ये योनौ जुहोमि स्वाहा ॥२३॥

ॐ कालक्षेपः ॐ

कार्योमहात्मभिर्नित्यं कालक्षेपो मुमुक्षुभिः ।
परमात्मपरैरित्थं वैष्णवैरिति वर्ण्यते ॥१॥

प्रातर्मध्याह्नसायं कृतशुचिकृतिभिः राममभ्यर्च्य सम्यक्
श्रीमद्रामायणेन प्रतिदिनमखिलैर्भारतेन प्रपन्नैः ।

शक्तैरानन्दभाष्यैरथ च शुभतमाचार्यदिव्यप्रबन्धैः
कालक्षेपो विधेयः सुविजितकरणैः स्वाकृतेर्यावदन्तम् ॥२॥

पृथिवीं...इत्यादि मन्त्र से आचमन करे। एवं सायं कालीन सन्ध्या में ॐअग्निश्च मामन्युश्च...इस मन्त्र से आचमन करे। शेष पूर्ववत् ॥२३॥

卐 कालक्षेप 卐

अथ महाभागवत श्रीवैष्णवों का लक्षण स्वरूप और महात्म्य कथन के अनन्तर यथोक्त महात्मा किस तरह से समय यापन करे ? इसवात को बतलाने के लिये कहते हैं-"कार्योमहात्मभिः" इत्यादि । हे सुरसुरानन्द ? सर्वदा परमात्मा श्रीरामजी की सेवा में तत्पर सायुज्य मोक्ष चाहनेवाले महात्मा श्रीवैष्णवगण इसतरह अर्थात् वक्ष्यमाण प्रकार से कालक्षेप अर्थात् काल यापन करें। वह प्रकार मैं तुमको कहता हूँ सावधान होकर के सुनो ॥१॥

बाह्याभ्यन्तर इन्द्रिय के ऊपर जय रखनेवाला तथा वेदशास्त्र के ज्ञान से और शारीरिक वल सम्पन्न शरणागत श्रीव्रैष्णव प्रातःकाल मध्याह्नकाल और सायं काल में शौच स्नानादि नित्य क्रिया से निवृत्त होकर प्रतिदिन सवक्षर श्रीरामचन्द्रजी का

स्नानादिकर्माणि विधाय नित्यं ग्रन्थानमून् संश्रृणुयादशक्तः ।
श्रीरामसन्नाम सुकीर्तनं च द्वयानुसन्धानमथो विदध्यात् ॥३॥
दिव्येषु देशेषु सतां प्रसङ्गं तदीयकैङ्कर्यपरायणः सन् ।
यावच्छरीरान्तमहर्दिवं तत्कथामुदारां श्रृणुयाद्भवघ्नीम् ॥४॥

षोडशोपचार के द्वारा पूजन करके श्रीमद्रामायण महाभारत गीता भागवतादि ग्रन्थों का तथा प्रस्थानत्रयानन्दभाष्य और पूर्वाचार्य श्रीपुरुषोत्तमाचार्य प्रभृतिक महामुनि निर्मित दिव्य स्तोत्रादि के पाठ पारायण द्वारा यावत् जीवन समय का क्षेप करें ॥२॥

यदि भागवत श्रीवैष्णव शरीर के वृद्धत्व अथवा रोगादि कारणों से श्रीमद्रामायण भागवत आनन्दभाष्यादिक ग्रन्थरत्नों का स्वयं पारायण करने में अशक्त हो जाय तो विद्वान् श्रीवैष्णवों के द्वारा उपर्युक्त ग्रन्थों का पारायण करा करके प्रतिदिन उन ग्रन्थों का श्रवण करें। नित्य स्नानादिक क्रिया करके विधिपूर्वक सर्वेश्वर श्रीरामजी का यथा मिलितोपचार से पूजन करके कथा का श्रवण करें। भगवान् की समीचीन कथाओं का कीर्तन करें। यदि स्वयं कीर्तन करने में भी अशक्त हो जाय अथवा पीठ मठ सम्बन्धि कार्यान्तर में अस्त व्यस्त रहें तो श्रीराम द्वयमन्त्र का जो अर्थ है उसका मनसे ही अनुसन्धान स्मरण करें। अर्थात् समर्थ श्रीवैष्णव पूजनादि करके यथाकाल में स्वयं इन ग्रन्थों का पारायण करें यह प्रथम विधि है। स्वयं पारायणाभाव में अन्य द्वारा पारायण करा के उसका श्रवण करें। तदभाव में भगवान् के नाम का कीर्तन करें तदभाव में द्वयादि विशिष्ट मन्त्रार्थ का मन से ही अनुचिन्तनकर काल यापन करें ॥३॥

सर्वेश्वर श्रीरामजी भागवत तथा आचार्य प्रभृतिक श्रीवैष्णवों के कैङ्कर्य सेवा में निष्ठा रखनेवाले तदीय सेवा श्रद्धाशील श्रीवैष्णवगण दिव्य प्रदेश-अयोध्याजी, चित्रकूट पञ्चवटी और जनकपुर प्रभृतिक भक्ति पोषक प्रदेशों में जीवन पर्यन्त अर्थात् यावत्पर्यन्त इस पाँच भौतिक नश्वर शरीर का पतन न हो तावत् इन प्रदेशों में निवास करते हुये तथा चिदचिदीश्वर रूप प्रधान तत्वत्रय के सपरिकर ज्ञानवान् विद्वानों का सहवास करते हुये प्रतिदिन धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप फल को देनेवाली भक्ति को सिञ्चित करनेवाली अति उदार सर्वेश्वर श्रीरामजी का दिव्य चरित बोधक श्रीमद्रामायण आनन्दभाष्यादिक कथा का श्रवण करें। जो यह भगवान् की कथा अनेक जन्मोपार्जित संसार परम्परा है उस संसार का विनाश करनेवाली है अतः उस कथा का श्रवण करें ॥४॥

तत्राप्यशक्तास्तु कुटीरमात्रं विधाय कुर्युस्त्वथ राघवाद्रौ ।
अन्यत्रवासं च गुरूपदिष्टान् मन्त्राञ्जपन्तो ह्यभिमानशून्याः ॥५॥
भक्त्यादियुक्तस्य तथाऽनहङ्कृतेर्महात्मनस्तस्य निदेशपालनम् ।
उपायमेनं चरमं निरन्तरं सुवैष्णवोऽयं विदधात्वतन्द्रितः ॥६॥
तदर्थपुष्पप्रचयेन सन्ततं तथैव तन्मन्दिरमार्जनादिना ।
तदीयनामाभ्यसनेन तन्मनाः क्षिपेत्सकालं नितरां गतालसः ॥७॥
तीर्थेषु वासेन सतां महात्मनां समागमेनाथ तदर्चनेन ।
जिज्ञासया तद्यशसः श्रवेण तच्छ्रावणेन स्मरणेन तस्य ॥८॥

आनन्दभाष्य श्रीमद्रामायण भागवतादि ग्रन्थों का स्वयं प्रतिदिन पारायण करने में असमर्थ महात्मागण राघवाद्रि चित्रकूट पर्वत पर अथवा श्रीअयोध्याजी जनकपुर वगैरह प्रदेशों में छोटी सी कूटियाँ बना करके (कुटिर-झोंपड) अभिमान शून्य होकर के आचार्य गुरु के द्वारा उपदिष्ट जो तारकादि मन्त्रराज हैं उनका जप करता हुआ पुण्य क्षेत्र में निवास करें। जीवन पर्यन्त पुण्य क्षेत्र में वास करता हुआ जप करें ॥५॥

ज्ञानयोग कर्मयोग तथा भक्तियोग रूप मोक्ष का अति महत्वास्पद साधनों से युक्त सर्वथा अहङ्कार-अभिमान विवर्जित जो महाभागवत श्रीवैष्णव हैं उनका जो उपदेश जिस अधिकारी के लिये जैसा कहा गया है उस आज्ञा का पालन आलस्य रहित होकर के करना चाहिये। इस अन्तिम उपाय-साधन को निरालसी मोक्षेच्छु श्रीवैष्णव निरन्तर पालन करें ॥६॥

मोक्ष कामनावान् श्रीवैष्णवगण सर्वदा आलस्य वर्जित होकर के सर्वेश्वर श्रीरामजी के पूजन निमित्त फूल तुलसी प्रभृतिक पूजोपकरण का संग्रह करते हुए तथा मन्दिर भगवान् के आलय को संमार्जित करते हुये एवं भगवान् के "श्रीराम जय राम जय जय राम" इत्यादि नामको सर्वदा रटन करते हुए अहोरात्रात्मक कालका क्षेप करे ॥७॥

पूर्व कथित श्रीअयोध्याजी जनकपुर काशी चित्रकूट मथुरा प्रभृतिक पवित्र तीर्थ स्थानों में भगवान् श्रीरामजी का यथा मिलितोपचार से पूजन करके निवास करने से तथा ज्ञात तत्वत्रय महात्मा श्रीवैष्णवों का आगमन से तथा आगत तादृश महात्माओं का अर्घ्य आदि प्रदान द्वारा पूजन करने से एवं जगत् का परं कारण सर्वेश्वर श्रीरामजी

रामस्य साङ्गस्य सपार्षदस्य सीतासमेतस्य सहानुजस्य ।
कैङ्कर्यमीर्ष्या रहितः प्रभुर्वन् क्षिपेत् स्वकालं सततं सुभक्तः ॥९-२४॥

॥ भिक्षाचर्यम् ॥

ततः यथा श्रीसम्प्रदायं, कालक्षेपं विधाय मध्याह्नसमये समुपस्थिते स्नानादिकं सन्ध्यावन्दनान्तं कर्मपरिसमाप्य जीवनयात्रा निर्वाहार्थं भैक्षम् आहरेत । "ॐआपः पुनन्तु पृथिवीं पृथिवी पूता पुनातु माम् । पुनन्तु ब्रह्मण स्पतिर्ब्रह्मपूता पुनातु माम् । यदुच्छिष्टमभोज्यं च यद्वा दुश्चरितं मम । सर्वं पुनन्तु मामापोऽसतां च प्रतिग्रहं स्वाहा । इति मन्त्रेणाचम्य-भिक्षार्थं गच्छेत् तदुक्तं बृहदारण्यके काठके अन्येषु च उपनिषत्सु-

के जानने की इच्छा से भगवान् की श्रीमद्रामायणादिक कथाओं का श्रवण करने से अर्थात् स्वयं समागत श्रीवैष्णवों से सुनने तथा श्रुत कथा का श्रवण दूसरे को करावे । तथा कथादि द्वारा श्रुत जो जगत कारण भूत सर्वेश्वर श्रीरामजी हैं उनका सतत चिन्तन अनुध्यान से तीर्थवासी श्रीवैष्णव अपने काल को बितावें ॥८॥

उपर्युक्त तीर्थादिक स्थानों में निवास करते हुए सर्वेश्वर श्रीरामजी के सुभक्तगण इर्ष्या रहित होकर के अङ्ग देवता पार्षद सहित श्रीसीताजी तथा भरतादिक अनुजों से युक्त भगवान् श्रीरामजी का कैङ्कर्य को करते हुए कालक्षेप करें ।

विष्णुभक्त योगी लोग तथा ऋषियों ने श्रीहनुमानजी से पूछा-कि श्रीरामजी के अङ्ग देवता कितने हैं तथा कौन-कौन हैं ? इस प्रश्न के उत्तर में श्रीहनुमानजी ने कहा कि वायु पुत्र विघ्नेश, वाणी, दुर्गा क्षेत्रपाल, सूर्य, चन्द्रमा, नारायण, नरसिंह, वासुदेव, वराह स्वशक्ति सहित ये सव श्रीसीताजी श्रीलक्ष्मणजी, श्रीभरतजी, श्रीशत्रुघ्नजी, श्रीविभीषणजी, श्रीसुग्रीवजी, अङ्गद, जाम्बवान् और प्रणव-ये सव श्रीरामजी के अङ्ग देव कहे गये हैं । "श्रीरामरहस्योपनिषत्" ॥९-२४॥

卐 भिक्षाचर्या 卐

इसप्रकार श्रीवैष्णव संन्यासाश्रमी अपने श्रीसम्प्रदाय एवं गुरु परम्परा तथा योग्यता के अनुसार सभी प्रकार के सन्ध्यावन्दन सम्बन्धी कर्तव्य कलाप सम्पन्न करलेने के पश्चात् कालक्षेप (सत्संग अध्ययन आदि) सम्पादन करे मध्याह्न समय उपस्थित होने पर पुनः स्नान से लेकर सन्ध्यावनदन पर्यन्त समस्त संन्यासाश्रमोचित

"तमात्मानं विदित्वा ब्राह्मणाः पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति ॥"

"त्रिषुवर्णेष्वेकागारं भैक्षमश्नीयात् ॥"

"यतयो भिक्षार्थं ग्रामं प्रविशन्ति पाणिपात्रमुदरपात्रं वा ॐहि ॐहि ॐहीत्येतदुपनिषदं विन्यसेद्विद्वान्य एवं वेद ॥"

"औषधवदशनमाचरेत् । भिक्षार्थी ग्रामं प्रविशेत् ॥"

तथा च श्रीबौधायनः-

"भैक्षं वा सर्ववर्णेभ्य एकान्नं वा द्विजातिषु । इत्थं भिक्षान्नस्यातिपवित्रत्वात् भिक्षाचरणं यतिभिरवश्यमेव विधेयम् । अत्र विषये धर्मशास्त्रकार वचनानामयं निर्गलितार्थः । प्रमादरहितः सन् यत्र अन्योभिक्षुको न गच्छेत् तत्र अलोलुपः सन् शरीरयात्रा निर्वाहार्थ भैक्षं चरेत् । ऊर्ध्वरेता संन्यासिस्थिर स्वभावः सन् भिक्षार्थी ग्राममभिगच्छेत्, तत्र गत्वा सप्तागारान् गत्वा तत्र तत्र भिक्षां गृह्णीयात् । यस्मिन् गृहे केनाप्यन्येन भिक्षुणा भिक्षाकृता तं पूर्वभिक्षितं जनं न भिक्षयेत् । भिक्षाग्रहणसमये यज्ञोपवीती सोदककमण्डलुहस्तः ब्राह्मणः यतिः शूद्रान्नं वर्जयेत् । याचितायाचिताभ्यां च भिक्षाभ्यां स्वात्मनो कर्तव्य कलाप का सम्पादन कर जीवन यात्रा का निर्वाह करने के लिये न कि जिह्वा की लोलुपता या पेट भरने की वृत्ति से भिक्षा का संग्रह करे । ॐआपः पुनन्तु पृथिवीं...इस मन्त्र से आचमन कर, भिक्षा याचना हेतु प्रस्थान करे ।

इस विषय वस्तु का बृहदारण्यक, काठक तथा अन्य उपनिषदों में भी निरूपण किया गया है । उस परम तेज स्वरूप आत्म तत्त्व को देव गुरु कृपा से भली भाँति जानकर ब्राह्मण समुदाय, सन्तान सम्बन्धी अभिलाषा, धनाभिलाषा और संसार में प्रतिष्ठा आदि की अभिलाषा आदि से विशेष रूपसे ऊपर उठकर अर्थात् इन सभी आशाओं का परित्यागकर भिक्षाचरण वृत्ति सम्पादन करते हैं ।

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीनों वर्णों के घरों में एक घर की भिक्षा से उपलब्ध अन्न को भोजन करे । केवल पाणिपात्र वाले अथवा उदर मात्र पात्रवाले संन्यासीगण भिक्षा ग्रहण करने के लिये गाँव में प्रवेश करते हैं । केवल ॐकार का भिक्षा में प्रयोग करते हैं, एवं तत्त्वज्ञानी ॐकार मात्र को जानते हैं । जिसप्रकार जीवन रक्षा

निर्वाहं कुर्यात् । अनिन्द्यं गृहमेव गच्छेत् निन्द्यञ्च गृहं सर्वथा वर्जयेत् । अनुद्विग्ना जना यत्र ददति तस्मिन्नेव गृहे प्रयासपूर्वकं गच्छेत् । समुद्घाटिते द्वारे भिक्षार्थं गृहं प्रविशेत् । द्वारे आवृते तु न व्रजेत् । क्वचिद् यतिः भिक्षार्थं शब्दं कृत्वा द्वारं नोद्घाटयेत् न वा घोषयेत् न च ताडयेत् । रन्ध्रेण च कदाचित् न भिक्षेत् । भिक्षाग्रहणस्य विधानमुक्तं श्रीबौधायनेन-

त्रिदण्डं दक्षिणेत्वङ्गे ततः संधाय बाहुना ।
पात्रं वामकरेक्षिप्त्वा श्लेषयेद् दक्षिणेन तु ॥

उक्तञ्चादित्यपुराणे-मेध्यं भैक्षं चरेन्नित्यं सायाह्ने वाग्यतः शुचिः । एक वासा विशुद्धात्मा मन्दगामी युगान्तदृक् । असंस्कृतया कन्यया प्रदत्तां भिक्षां रजस्वलाया च प्रेरितां, प्राण्यङ्गेन, आयसपात्रेण च प्रदत्तां भिक्षां श्रीवैष्णवो यतिर्नगृह्णीयात् । यो जनः स्वात्मानं पीडयित्वा स्वल्पमन्नं प्रयच्छति । पञ्चदिन पर्यन्तं सप्तदिनपर्यन्तमपि भीक्षितं यो न प्रददाति तस्य गृहस्य यतिना परित्यागो विधेयः । यतो हि छान्दोग्येऽभिहितम्→आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः
के लिये औषधि खाते हैं । उसकी मात्रा भी स्वल्प होती है, उसीप्रकार संन्यासी भोजन क्रिया को करे ।

भिक्षा की अभिलाषा से ग्राम में प्रवेश करे इत्यादि उपनिषद् वचनों के प्रमाणानुसार संन्यासी को भिक्षाचरण करना चाहिये यह प्रमाण सिद्ध है । और जैसा कि आचार्य श्रीबौधायनजी अपने धर्मशास्त्र में कहते हैं-भिक्षा संन्यासियों को सभी वर्णों से लेनी चाहिये । अथवा द्विजाति के घरों से एक का अन्न भिक्षा में ग्रहण करनी चाहिये । इसप्रकार श्रुतिस्मृति वचनों से प्रतिपादित होता है कि भिक्षा के अन्न को अतिशय पवित्र होने के कारण उनके द्वारा भिक्षाचरण अवश्य किया जाना चाहिये । इस भिक्षाचरण के सम्बन्ध में धर्मशास्त्रकारों के वचनों का यह शारांश है-निरालस होकर सावधानी से जिस घरमें दूसरा भिक्षुक भिक्षा के लिये नहीं गया हो वहां अलोलुप होकर केवल शरीर यात्रा का निर्वाह करने के लिये अर्थात् जीवन का संकट उपस्थित नहीं हो इसलिये भिक्षाचरण करे । केवल परब्रह्म तत्त्व का परिशीलन करनेवाला ऊर्ध्वरिता संन्यासी पूर्ण दृढ़ स्वभावशील होकर, जिसमें लोभ मोह मान मद ईर्ष्या का उदय नहीं हो ऐसे भिक्षा की कामना से गाँव की ओर जाय । अन्य किसी

सत्वशुद्धौ ध्रुवास्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः ॥ यवागू तक्रं पयो यावकं फलं मूलं विपक्कं कणपिण्याकं सक्तवश्च सन्यासिनां मोक्षसिद्धि दायका शुभा आहाराः कथिताः । पत्रं पुष्पं ग्राम्यमारण्यं वा फलं तक्रं दधि शाकञ्च लघुपाकित्वात् प्रशस्ता भिक्षा उच्यते ।

भिक्षाम् अनेकेभ्यो गृहेभ्यो याचयित्वा, समानीय पादौ प्रक्षाल्य आचम्य त्रिः प्राणायामं विधाय, भैक्षम् ॐइत्युक्त्वा जलेन संप्रोक्ष्य दक्षिणेन करेण स्पृष्ट्वा प्रणवेन अभिमन्त्र्य अश्नीयात् । तदुक्तं विष्णुस्मृतौ-

उत्तानवदनं कृत्वा ब्रह्मभावेन भावितः ।
पञ्चप्राणाहुतीर्दद्यान्मन्त्रैस्तु श्रुतिचोदितैः ॥
ॐकारपूर्वाः स्वाहान्ता मन्त्रास्तैस्तत् समाचरेत् ।
नैवाहुतीः स्पृशेद् योगीदन्तौष्ठाभ्यां कदाचन ॥
न स्पृशेत् सव्यहस्तेन भुञ्जानोऽन्नं कदाचन ।
न पादौ न शिरो वस्तिं न पदा भाजनं स्पृशेत् ॥

सांसारिक प्रयोजन से ग्राम में प्रवेश नहीं करें। गाँव में प्रवेश करके सात घरों में केवल जाकर उनमें भिक्षा का नियमानुसार ग्रहण करे। जिस घर में किसी अन्य भिक्षुक के द्वारा भिक्षा की गयी है ऐसे पूर्व भीक्षित मनुष्य से भिक्षा याचना नहीं करे। भिक्षा लेने के समय में यज्ञोपवीती (जनेऊ वाले) संन्यासी को पानी से भरा हुआ कमण्डलु हाथ में धारण किये रहना चाहिये। ब्राह्मण संन्यासी भिक्षा करते समय शूद्र के अन्न का ग्रहण न करे। भिक्षा याचना करने पर अच्छा कहकर जो भिक्षा मिलती है उसे याचित कहते हैं। विना याचना किये ही स्वयं भावना पूर्वक किसी के द्वारा भिक्षा दी जाती है उसे अयाचित कहते हैं। मांगी हुई या विना मांगी हुई मधुकरी वृत्ति से प्राप्त भिक्षा से निर्वाह करे। जिसका घर लोक अथवा शास्त्र से निन्दा नहीं करने योग्य हो उसी घर में भिक्षा करें। आचार विचार तथा धर्म आदि की दृष्टि से जिसका घर निन्दनीय हो उस घर को भिक्षा ग्रहण में सर्वथा परित्याग करे। जहां पर भिक्षा देनेवाले व्यक्ति धन अन्न अथवा किसी अन्य कारण घवडाये हुए नहीं हो उसी घर में भिक्षा करे, उद्वेग युक्त व्यक्ति के घर में भिक्षा नहीं करे। यह प्रयास करे कि जिस घर के लोग प्रसन्न हो किसी संकट से ग्रस्त नहीं हों वहीं भिक्षा करे।

स्वात्मनः स्थित्यर्थमेव भिक्षाटनं निवृत्ते शरावसंपत्तिं चरेत् । यावता अन्नेनात्मनः तृप्तिं स्यात् तावदेवान्नं भिक्षेत् । नाधिकं कदाचन भिक्षेत् । ब्राह्मणसन्यासिनां द्विजातिरिक्तगृहे भिक्षा न कर्तव्येति पूर्वं निरूपितम् । तत्रेदमुच्यते

द्विजाभावे तु सम्प्राप्ते उपवासत्रये गते ।
भैक्षं शूद्रादपि ग्राह्यं रक्षेत् प्राणान् द्विजोत्तमः ॥

विष्णुस्मृतौ चोक्तम्-

स्ववृत्तस्य गृहे भिक्षेन्नतु तेष्वेवनित्यशः ।
अभावे वहुगेहानां तेषु भिक्षेदलोलुपः ॥

जिसका घरका द्वार खुला हुआ है उसी के घर में भिक्षा करने के उद्देश्य से प्रवेश करे। घरका दरवाजा यदि वन्द है तो भिक्षा के लिये वन्द दरवाजा वाला घर में जाने का प्रयास नहीं करे, कहीं पर भी संन्यासी अपने भिक्षा हेतु उपस्थिति की ध्वनि न करे, तथा आवाज देकर अथवा द्वार खटखटा कर द्वार नहीं खुलाये । किसी खिडकी या गृह छिद्र से भिक्षा ग्रहण नहीं करना चाहिये । भिक्षा ग्रहण करने का विधान आचार्य श्रीबौधायनजी के द्वारा कहा गया है-

संन्यासी भिक्षा काल में दक्षिण भाग में त्रिदण्ड रखकर तत्पश्चात् दाहिनी भुजा से उसे सम्भालकर भिक्षापात्र वाँया हाथ में रखकर उस पात्र से दाहिना हाथ का स्पर्श करावे और आदित्य पुराण में कहा भी गया है कि दिन के दूसरे भाग में अर्थात् दोपहर वाद पवित्र एवं मौन रहता हुआ प्रतिदिन पवित्रता आदि गुणों से युक्त अन्न की भिक्षा करे। उस समय एकमात्र वस्त्र हो मन्द मन्द गति हो आत्मा अत्यन्त शुद्ध हो एवं युगान्त दर्शी हो । जिस कन्या का वैवाहिक संस्कार नहीं हुआ है ऐसी कन्या के हाथ से प्रदान की गयी भिक्षा को संन्यासी ग्रहण नहीं करे। तथा रजस्वला स्त्री के द्वारा प्रेरित किसी अन्य व्यक्ति के हाथ से भिक्षा ग्रहण नहीं करे। किसी प्राणी के अवयव द्वारा दी गयी भिक्षा, अथवा लौह पात्र से प्रदान की गयी भिक्षा को संन्यासी स्वीकार कदापि न करे। कोई संन्यासी भिक्षा करने आगया ऐसी स्थिति में दुःखी होकर स्वयं को पीडितकर जो स्वल्प मात्रा में भिक्षा प्रदान करता है अथवा लगातार पाँच दिन पर्यन्त अथवा सात दिन पर्यन्त भिक्षा मांगने के लिये उपस्थित होने पर भी भिक्षा प्रदान

दर्व्या देयं घृतं चान्नं लवणं व्यञ्जनं तथा ।
अपक्वं स्नेहपक्वं च नतु दर्व्या कदाचन ॥
हस्तदेयं तु यद्दर्व्या दर्व्यादेयं तु हस्ततः ।
एतद् यो ब्राह्मणोऽश्नीयात् सोऽश्नीयान्मूत्ररेतसी ॥
गङ्गातोयाभिषिक्तां तु भिक्षायोऽश्नाति योगवित् ।
न तत् क्रतु शतैरिष्ट्वा फलं प्रप्नोति मानवः ॥
सान्तपनसहस्त्रं तु चान्द्रायणशतानि च ।
अश्वमेधाष्टकं चैव तद्विष्णोः शेषमुत्तमम् ॥

नहीं करता है। उस घरका सर्वथा भिक्षा हेतु परित्याग करदे, क्योंकि भिक्षा नहीं देने की भावना उस गृहपति की प्रमाणित होती है। क्योंकि छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है→भोजन की पवित्रता होने पर अन्तःकरण की पवित्रता होती है। अन्तःकरण पवित्र होने पर संसार के समस्त नश्वर बन्धन अपने आप छूट जाते हैं। अतः संन्यासियों को भिक्षान्न की पवित्रता हेतु सजग रहना चाहिये।

लस्सी छाछ दूध, दलिया, फल मूल पिण्ड, खजूर सत्तू ये सभी अन्न संन्यासियों के लिये मोक्ष सिद्धि दायक शुभ आहार कहे गये हैं। पत्र पुष्प ग्रामीण, अथवा जङ्गली फल, तक्र दही और शाक ये सभी भक्ष्य लघुपाकी (सरलता से पचने योग्य) होने के कारण प्रशंसनीय भिक्षा कही गयी है।

अनेक घरों से याचनाकर लायी गई भिक्षा को सम्यक् प्रकार से लाकर, पैरों को धोकर आचमन करके तीनवार प्राणायाम करने के वाद सम्मिलित भिक्षा समूह को "ॐ" इस प्रणव का उच्चारण कर अभिमन्त्रित करके संन्यासी भोजन करे। यह विषय विष्णु स्मृति में कहा गया है। मुखको ऊपर की ओर उत्तान करके ब्रह्म की भावना से संस्कारित होकर ॐप्राणाय स्वाहा, ॐअपानाय स्वाहा, ॐसमानाय स्वाहा, ॐउदानाय स्वाहा, ॐव्यानाय स्वाहा इन पाँच मन्त्रों से पञ्च प्राणों को आहुति प्रदान करे। प्राणाहुति देने में उपर्युक्त वेद सम्मत मन्त्र होना चाहिये। यह आहुति पाँचो प्राणों के लिये संन्यासी के द्वारा अपने मुख में ही होना चाहिये। किन्तु आहुति के अन्न को दाँत और ओठों से योगी स्पर्श नहीं करे। आहुति में ॐकार पूर्वक एवं स्वाहान्त मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये। भिक्षान्न को भोजन करते हुये संन्यासि

विष्णोर्नैवेद्यसंशुद्धं मुनिभिर्भोज्यमुच्यते ।
अन्यदेवस्य नैवेद्यं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥
गङ्गातोयञ्च भैक्षञ्च वैष्णवान्नं विशेषतः ।
आनश्वान्मोचरेत् पापं मन्त्रपूतं हविर्यथा ॥
गङ्गयाः सलिलं पुण्यं शालग्रामशिला तथा ।
भिक्षान्नं पञ्चगव्यञ्च पवित्राणि युगे युगे ॥

विष्णुस्मृतौ चोक्तम्-
न भिक्षायां भवेद्दोषो न भिक्षा स्यात् प्रतिग्रहः ।
सोमपानसमा भिक्षा तस्मादहरहश्चरेत् ॥

को किसी भी परिस्थिति में वांया हाथ से अन्न को नहीं छुना चाहिए। नहीं पैरों को न शिर को अथवा वस्त्र को स्पर्श करे तथा पैर से पात्र का स्पर्श भी न करे।

संन्यासी अपने आप के देह संरक्षण के लिये ही जब घरों में बर्तन की आवाज वन्द हो जाय। अर्थात् घर वालों का भोजनादि सम्पन्न हो चुका हो उस समय में भिक्षाटन करे। जितने अन्न से अपनी तृप्ति सम्पन्न हो उतनी ही भिक्षा करे। अधिक अन्न संग्रह करने की इच्छा से कभी भी भिक्षा नहीं करे। ब्राह्मण संन्यासी के द्वारा ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य के अतिरिक्त अन्य घर में भिक्षा नहीं करनी चाहिये यह पहले प्रतिपादन किया जा चुका है। इस सम्बन्धित विषय में कहा जाता है कि जहां द्विजाति का अभाव हो ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होने पर तीन दिन उपवास करते हुये बीत जाने पर ब्राह्मण श्रेष्ठ संन्यासी अपने प्राणों की रक्षा करने के लिये शूद्र के घर से भी भिक्षा कर सकता है। और विष्णु स्मृति में कहा है→अपने समान आचार विचार धर्म वाले गृहस्थों के घर में भिक्षा करनी चाहिये, किन्तु प्रतिदिन उन्हीं घरों में भिक्षा नहीं करनी चाहिये। किन्तु यदि समान धर्मवाले लोगों के बहुत घर नहीं हो तो उन्हीं घरों में लोलुपता से रहित होकर अर्थात् उदासीन भाव से भिक्षा करे। करछुला से देने योग्य घृत अन्न व्यञ्जन तथा लवण की करछुल से ही ग्रहण करे। किन्तु जो नहीं पकाने योग्य है ऐसा अन्न अथवा तेल में पका हुआ अन्न कभी भी करछुल से देने पर स्वीकार नहीं करे। हाथ से देने योग्य वस्तु को तो जो करछुल से स्वीकार करता है तथा करछुल से देने योग्य अन्न को जो हाथ से स्वीकार करता है इसतरह के अन्न को

आहारस्य तु द्वौ भागौ तृतीयमुदकस्य च ।
वायोः सञ्चारणार्थाय चतुर्थमवशेषयत् ॥

भोजनावसाने च षोडशप्राणायामान् कुर्यात् । ततो जपध्यानेतिहास कथावार्तादिभिः दिनशेषं गमयेत् ।

सामान्यलोकस्यापि श्रीमद्रामायणपुराणेतिहासकथादिभिर्धर्म प्रवृत्तिर्जायते । तेषु भगवद्भक्तिजननार्थं लोकस्य धर्माभ्युदयार्थञ्च श्रीमद्रामायणेतिहासपुराणादीनां यतिः कथां कुर्यात् । तदुक्तं श्रीगीतायाम्-

जो ब्राह्मण भोजन करे वह मूत्र एवं वीर्य का ही भोजन करता है ।

जो योग तत्व वेत्ता संन्यासाश्रमी गङ्गाजल से अभिषिक्त भिक्षा को भोजन करता है उसमें जो पुण्य लाभ होता है वह पुण्य फल सैकडों यज्ञ करके भी मानव नहीं प्राप्त करसकता है । एक हजार सातवन व्रत और एक सौ चान्द्रायण व्रत आठ अश्वमेध यज्ञ सम्पादन करने का जो पुण्य फल प्राप्त होता है उसकी तुलना में भगवान् विष्णु के प्रसाद का सेवन करना श्रेष्ठ है । भगवान् श्रीरामजी का नैवेद्य सम्यक् प्रकार से विशुद्ध कहा गया है । तथा संन्यासियों के द्वारा भोजन करने योग्य है ऐसा कहा जाता है । श्रीरामजी से अतिरिक्त अन्य देवता का नैवेद्य को पाकर प्रायश्चित्त रूप में चान्द्रायण व्रत करे । इससे यह सिद्ध होता है कि भगवान् का प्रसाद यदि उपलब्ध हो तो गृहस्थों के घर में भिक्षा नहीं भी की जा सकती है । विशेष रूपसे गङ्गाजल और भिक्षा समूह का अन्न तथा वैष्णव का अन्न नख से आरम्भ कर समग्र शरीर को पवित्र करता है । जिस प्रकार मन्त्र से पवित्र हविष्यान्न मानव के समग्र शरीर को पवित्र करता है । गङ्गा का जल पुण्यजनक शालग्राम की शिला भिक्षा का अन्न और पञ्चगव्य ये सभी प्रत्येक युग में पवित्र कहे गये हैं ।

और विष्णु स्मृति में भी कहा गया है, भिक्षा में दोष नहीं होता है और भिक्षा का अन्न प्रतिग्रह नहीं कहा जाता है । यज्ञ में सोमरसपान के समान भिक्षा का अन्न कहा गया है । अतः प्रति दिन भिक्षाटन करना चाहिये । भिक्षान्न भोजन करते समय उदर के दो भाग को अन्न से भरना चाहिये । तीसरा भाग पानी से भरना चाहिये और वायु का सञ्चार करने के लिये चौंथा भाग खाली रहने देना चाहिये । भोजन सम्पन्न करलेने के पश्चात् अन्त में सोलहवार प्राणायाम करे । तत्पश्चात् फुर्सत होने पर जप

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यथा ।
शक्य एवं विधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥
भक्त्या त्वनन्यया शक्यमहमेवं विधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप ॥

ततः सायंकाले सूर्यास्तमनात् पूर्वं स्नात्वा पूर्वोक्तक्रमेण सन्ध्यामुपास्य सूर्यायार्घ्यं च प्रदाय कर्मसमर्पणं श्रीरामचन्द्राय विधाय । सूर्योपस्थानं तत् समर्पणं च सर्वदेवमयाय श्रीरामाय कृत्वा, वेदोपनिषत् श्रीमद्रामायणप्र भृतीनां स्वाध्याय योग्यानांग्रन्थानामध्ययनं विधाय जपहोमदेवतार्चनादिभिः ध्यान श्रीमद्रामायण इतिहास और पुराण की कथावार्ता आदि से अवशिष्ट समय को वितावे । ऐसा देखा जाता है कि सर्व साधारण मनुष्य की भी श्रीमद्रामायण इतिहास पुराणादि सम्बन्धि धार्मिक कथाओं में प्रवृत्ति उत्पन्न होती है । अतः साधारण अनपढ लोगों में भी भक्ति भावना जागृत करने के लिये एवं संसार का धार्मिक अभ्युदय करने के लिये श्रीमद्रामायण इतिहास पुराण आदि की कथा श्रीवैष्णव सन्यासी करे। यही विषय गीता में भगवान् श्रीकृष्णजी अपने श्रीमुख से कहते हैं कि–मैं वेद शास्त्रों से तपस्या से दान से एवं यज्ञ याग आदि से उतना प्रसन्न नहीं होता हूँ तथा मुझे नहीं जाना जासकता है जितना कि इसप्रकार भक्तिभावना द्वारा मुझे देख सकते हो। हे अर्जुन ! इसप्रकार के गुणगण से परिपूर्ण मुझको अनन्य भक्तिभाव से ही देखा एवं जाना जा सकता है । तात्विक रूपसे जानने देखने एवं तात्विक रूपसे श्रीराम तत्त्व में प्रवेश करने के लिये अनन्य भक्ति को छोडकर दूसरा योग्य साधन नहीं है अतः जनसमुदाय में भक्तिभाव उत्पन्न करने के लिये श्रीमद्रामायण एवं पुराण कथा आदि की वार्ता से श्रीवैष्णव संन्यासी को कालक्षेप करना चाहिये ।

तत्पश्चात् सायं काल में भगवान् सूर्य के अस्ताचल पर जाने से पहले स्नान करके पूर्व वर्णित क्रम से सन्ध्योपासन से आरम्भकर सूर्य को अर्घ्य देकर एवं भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को कर्म समर्पण करके सूर्योपस्थान तथा उसका समर्पण सर्वदेव स्वरूप भगवान् श्रीरामजी को निवेदन कर वेद उपनिषद् आदि ग्रन्थों का अथवा स्वाध्याय करने योग्य जगदाचार्यजी से निर्दिष्ट अन्य ग्रन्थों का अध्ययन करके जप होम तथा

रात्रेः प्रथमं यामं नयेत् । देवमन्दिरे निवसन् भगवत् प्रसादस्वरूपं भोज्यं भुक्त्वा, शतं प्राणायामान् विधाय शयनं कुर्यात् । निशायाः पश्चिमे प्रहरे उत्थाय पुनः ब्रह्माभ्यासमारभेत् । तदुक्तम्-

देवोद्याने साधुगृहे महालयसरित्सु च । रात्रौ गृह्णन्न दुष्येत तटाके विमले ह्रदे ॥

यतिः यथाशक्ति यथावशरं च मोक्षकामनया-यमनियमासनप्राणायाम प्रत्याहारधारणाध्यानसमाधीनां योगशास्त्रोक्तदिशा अभ्यासं कुर्यात् । सम्यग् दर्शनसाधनत्वेन तेषां विधानात् । एतेषां स्वरूपनिरूपणं ग्रन्थान्तरेषु कृतम् ततः एव तज्ज्ञानं विधेयम् ॥२५॥

इति आनन्दभाष्यसिंहासनासीनस्य जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्व रानन्दाचार्यस्यकृतौ श्रीवैष्णवसंन्यास मीमांसायां यतीनां दिनचर्या निरूप णात्मकः प्रकरणः सम्पन्नः । शुभं भूयात् ॐ

सर्वेश्वर श्रीरामजी का पूजन आदि से रात्रि का प्रथम पहर वितावें । तत्पश्चात् देवता के मन्दिर में निवास करते हुये भगवद् प्रसाद स्वरूप फलादि को भोजन करके एक सौ प्राणायाम कर शयन करे । रात के अन्तिम पहर में उठकर पुनः ब्रह्म साक्षात्कार का अभ्यास प्रारम्भ करे यही वात शास्त्रों में कही गयी है कि देवताओं के मन्दिर में साधु पुरुष के स्थान में महालय और नदियों में तालाब तथा निर्मल ह्रद में रात्रि के समय भी भोजन करता हुआ दूषित नहीं होता है ।

संन्यासी अपनी शक्ति एवं अवसर के अनुरूप मोक्ष की अभिलाषा से यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का योग शास्त्र के कथनानुसार अभ्यास करे । क्योंकि उपर्युक्त योगाङ्गों का सम्यक् दर्शन का साधन होने के कारण विधान किया गया है । इन यम, नियम, आदि का अन्य ग्रन्थों में स्वरूप प्रतिपादन किया गया है । पाठकों को उन्हीं ग्रन्थों से इनका ज्ञान करना चाहिये ॥२५॥

इसप्रकार आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दा चार्यजी की कृति श्रीवैष्णव संन्यासमीमांसा में संन्यासियों के भिक्षा-दिनचर्या प्रतिपादन स्वरूप यह प्रकरण परिपूर्ण हुआ ।

ॐ

ॐ संन्यासदीक्षाधिकारः त्रिदण्डधारणाधिकारश्च ॐ

सीताभिन्नं रामचन्द्रं रामानन्दं यतीश्वरम् ।
गुरुं रामप्रपन्नं च प्रणमामि पुनः पुनः ॥१॥

यथा कुलालो घटरचनायां समर्थो न पटरचनायां तेन कुलालस्य घटनिर्माणेऽधिकारः, स्वर्णकारो भूषणनिर्माणेऽधिकृतः, तन्तुवायश्च पटेऽधिकृतो भवति, एवञ्च यो यत्र जातिस्वभावादेव येषु येषु कार्येषु दक्षो भवति तस्य तत्राधिकारो लोकव्यवहारसिद्धः प्रेक्षावद्भिरवलोक्यते, एवमेव चत्वार आश्रमाः सन्ति । तेषु आश्रमेषु समेषां मानवानां अधिकारो नवेति विविच्य प्रवेशाय जिज्ञासायां विषयेऽस्मिन् वर्णाश्रमाचारभेदेन लोकव्यवहारादेव अधिकारसिद्धिर्विलोक्यते । यथा शिशोः संन्यासिनश्च विवाहाधिकारो नास्ति, शिशोरयोग्यत्वात् संन्यासिनश्च उच्चाश्रमादधः पतने शास्त्रविरोधात्

卐 संन्यासदीक्षाधिकार तथा त्रिदण्डधारणाधिकार 卐

जगज्जननी श्रीसीताजी से अभिन्न श्रीरामचन्द्रजी यतिराज आनन्दभाष्यकार श्रीरामानन्दाचार्यजी और गुरुवर योगीन्द्र श्रीरामप्रपन्नाचार्यजी महाराज को मैं रामेश्वरानन्दाचार्य पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ ॥१॥

यह इस संसार में देखा जाता है कि जिसप्रकार कुम्भार घडा आदि मृत्तिका का निर्माण करने में समर्थ होता है, उस प्रकार वस्त्र आदि के निर्माण में समर्थ नहीं होता है। इससे कुम्भकार का घट रचना में अधिकार है। सुनार आभूषण आदि निर्माण में समर्थ होता है इसलिये उसमें अधिकार युक्त होने पर भी घटादि की रचना नहीं कर सकता है। और जुलाहा कपडा बनाने का अधिकारी है, इसप्रकार जो जिस कार्य में अपने जाति स्वभाव से ही जिन जिन कार्यों में दक्ष होता है, उस कार्य में उसका अधिकार लोक व्यवहार में सिद्ध है। ऐसा विषय वस्तु को जानने वाले विद्वानों के द्वारा देखा जाता है। इसीप्रकार ब्रह्मचर्य-गृहस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास भेद से चार आश्रम हैं। उन उन आश्रमों में सभी मनुष्यों का अधिकार है अथवा नहीं इसका विवेचन कर प्रवेश के लिये जिज्ञासा के इस विषय में वर्ण, आश्रम तथा आचार व्यवहार के भेद से लोक व्यवहार से ही अधिकार सिद्धि देखी जाती है। जिसप्रकार एक बालक और संन्यासी का विवाह करने का अधिकार नहीं है। क्योंकि बालक

केचन पतिताः सन्त अपि गृहस्थाश्रमे विहितप्रवेशाः सन्तानपरम्परामजनयन्, लोकशास्त्रनिन्दां चावहेलनादृष्ट्या विलोक्य संसारसुखमन्वभूवन्। किन्तु लोकेन शास्त्रेण च योग्यस्यैव तत्र तत्राश्रमेषु प्रवेशाय अनुमन्यते। तथा अत्र संन्यासाश्रमप्रवेशे दीक्षाग्रहणे च संन्यासलक्षणभूतस्य त्रिदण्डस्य धारणे काषायवस्त्रपरिधाने, स्वेतवस्त्रपरिधाने च कस्य कस्याधिकारः। कस्यकृते निषेधश्चेति विवेचनमत्यावश्यकम्। अन्यथा व्यवस्थायां दोषोत्पत्तौ सम्प्रदाये समाजे च अव्यवस्थैव व्यवस्था स्यात्। तस्माद् विषयेऽस्मिन् लोकशास्त्रव्यवहारसिद्धये विवेचनं क्रियते। यतिस्वरूपं व्युत्पत्तिं च मेधातिथिराह-

वेदाभ्यासेन यज्ञेन तपसावीतकल्मषः।
विरक्तोमानुषैर्भोगैर्दिव्यैश्चस्मृतिदर्शितैः।

को विवाह करने के अयोग्य होने के कारण और संन्यासी का उच्च आश्रम से निम्न आश्रम में आना यह अधः पतन है, इसमें लोक व्यवहार और शास्त्र का विरोध होने से अधिकार नहीं है। यह देखा जाता है कि कुछ लोग पतित होकर भी गृहस्थ आश्रम में प्रवेश प्राप्त करके अपनी सन्तान परम्परा को उत्पन्न किये। लोक व्यवहार एवं शास्त्र की निन्दा को अवहेलना की दृष्टि से देखकर सांसारिक सुख का अनुभव किये। किन्तु लोक व्यवहार एवं शास्त्र के द्वारा उन-उन आश्रमों के योग्य पुरुष को ही उन-उन आश्रमों में प्रवेश के लिए अनुमति दी जाती है उसीप्रकार इस संन्यासाश्रम में प्रवेश एवं दीक्षा-ग्रहण में संन्यास का विशेष लक्षण बना हुआ त्रिदण्ड के धारण में कषाय रंग में रंगा हुआ वस्त्र पहनने में और श्वेतवस्त्र पहनने में किसका-किसका अधिकार है और किसके लिए निषेध है। इस वस्तु का विवेचन करना अत्यन्त आवश्यक है। यदि ऐसा नहीं करे तो व्यवस्था में दोष उत्पन्न हो जाने पर सम्प्रदाय एवं समाज में अव्यवस्था ही व्यवस्था हो जायगी। इसिलिए इस विषय में विवेचन किया जाता है। संन्यासी का स्वरूप एवं यति शब्द की व्युत्पत्ति को स्मृतिकार मेधातिथि कहते हैं-वेद शास्त्रों का अभ्यास (पुनः-पुनः पठन) यज्ञ और तपस्या के द्वारा जिसका पाप समूह समाप्त हो चुका है। अलौकिक धर्म शास्त्रों के द्वारा दिखाए गये दिव्य मार्ग से जो मनुष्य लोक में होनेवाले भोगों से जो विरक्त हो चुका है।

इतिहासपुराणाभ्यां स्मृत्या च प्रतिबोधितः ॥
यतते परमं स्थानं यतनात् स यतिः स्मृतः ॥

याज्ञवल्क्यश्च-

अधीतवेदोजपकृत् पुत्रवानन्नदोऽग्निमान् ।
शक्त्या च यज्ञकृन्मोक्षे मनकुर्यात्तु नान्यथा ॥

केचित्तु-ब्रह्मचर्याद् वा गृहाद्वावनाद्वा यथाकामं पारिव्राज्यमित्याहुः । जाबालिश्च-ब्रह्मचर्यं परिसमाप्य गृहीभवेत्, गृहीभूत्वा वनीभवेत्, वनीभूत्वा परिव्रजेत् । गृहाद्वा वनाद्वा इत्याह । यमस्त्वाह-

चीर्णवेदव्रतो विद्वान् ब्राह्मणो मोक्षमाश्रयेत् ।
निःस्पृहः सर्वभूतेषु स्थावरेषु चरेषु च ॥
जातपुत्रो गृहस्थो वा विजितात्मा जितेन्द्रियः ।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यः कृतकृत्य परिव्रजेत् ॥

लिखितस्मृतौतु-

सोऽधीतवेदतत्त्वार्थो गृहवासमशक्नुवम् ।
प्रव्रजेदकृतोद्वाहो वनाच्चीर्णो गृहादपि ॥ इत्याह ॥

शङ्खमृतौत्वाह-

एवं नीत्वानवेकालं द्विजोब्रह्माश्रमीभवेत्
नानोपनिषदां ज्ञानात् प्राप्तवैराग्यपारवः ।

इतिहास और पुराण के द्वारा तथा स्मृति के द्वारा जो प्रतिबोधित है, वह सर्वोत्कृष्ट स्थान परमपद स्वरूप मोक्ष प्राप्ति के लिये यत्न करता है । अतः यत्न करने के कारण वह यति कहा जाता है । महर्षि याज्ञवल्क्य भी संन्यास के विषय में कहते हैं-जिसने वेदों का अध्ययन करलिया है, मन्त्रों का जप करने वाला पुत्रवान् अन्नदाता अग्नि उपासना करनेवाला और अपनी शक्ति के अनुसार यज्ञ करनेवाला पुरुष मोक्ष में मन लगावे। अन्यथा संन्यासाश्रम में प्रवेश करने का यत्न नहीं करें । कुछ लोग तो कहते हैं ब्रह्मचर्याश्रम से अथवा गृहस्थाश्रम से अथवा वानप्रस्थाश्रम से अपनी इच्छा के अनुसार संन्यास ग्रहण करना चाहिये । यहां याज्ञवल्क्य एवं अन्य के मत में अन्तर है कि याज्ञवल्क्य क्रमशः सभी आश्रमों को पार करने के वाद संन्यासाश्रम में प्रवेश

समाहृतेन्द्रिय ग्रामो विषयेभ्यः सुदूरतः ।
आत्मैकरामो मनसा निरस्य परिपन्थिनः ।
योगाभ्यासेन बहुशो लब्धात्माऽदृढबन्धनः ।
सर्वसङ्गनिवृत्तात्मा ब्रह्मचार्यपि सुव्रतः ।
एतैर्गुणैरुपेतश्चेत् गृहस्थो वा प्रजायते ।
कृत्वेष्टिं विधिवद्दत्वा सर्ववेदसदक्षिणाम् ।
आत्मन्यग्नीन् समारोप्य द्विजोब्रह्माश्रमी भवेत् । अत्र च मनुः-

की अनुमति देते हैं तथा अन्य किसी भी आश्रम से संन्यासाश्रम में जाने की अनुमति देते हैं। और इस विषय में जाबालि ऋषि कहते हैं-ब्रह्मचर्याश्रम को परिपूर्ण करके गृहस्थ बने। गृहस्थ बनकर वानप्रस्थाश्रमी बने वानप्रस्थाश्रमी होकर संन्यासाश्रमी बनें। अथवा गृहस्थाश्रमी से या वानप्रस्थाश्रम से संन्यासी बने। अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम से नहीं। यम स्मृतिकार तो कहते हैं-कि जो विद्वान् समस्त व्रतों की पूर्ण कर लिया है वह ब्राह्मण आकांक्षा रहित होकर समस्त प्राणियों में स्थावर और जङ्गम में निःस्पृह रहकर इन्द्रियों के ऊपर एवं अपनी आत्मा को वश करके संतान उत्पन्न हो जाने के वाद गृहस्थ भी मोक्ष हेतु संन्यासाश्रम का अवलम्बन करे। लिखित→अर्थ को समझ चुका है वह गृहस्थाश्रम में निवास करने में असमर्थ होता हुआ विना विवाह किये हुए ही ब्रह्मचर्याश्रम से संन्यासाश्रम में जप अथवा व्रत पूर्ण होने पर वानप्रस्थ या गृहस्थ्य से भी संन्यासाश्रम में प्रवेश कर सकता है। शङ्खस्मृति में तो कहा है इसप्रकार वानप्रस्थाश्रम में समय विताकर ब्राह्मण संन्यासाश्रमी बनें जो अनेक उपनिषदों के ज्ञान से वैराग्य में दक्षता को प्राप्तकर लिया है। सुदूर तक जानेवाले इन्द्रियों को विषयों से नियन्त्रितकर चुका है एकमात्र आत्मा में आनन्दानुभूति करनेवाला मन के द्वारा अपने काम-क्रोध, लोभ-मोह आदि आन्तरिक शत्रुओं को दूर करके अनेक वार योगाभ्यास के द्वारा जिन्होंने आत्म साक्षात्कार कर लिया है। जिसका सांसारिक बन्धन ढीला हो चुका है। जिसकी आत्मा सभी तरह की आशक्तियों से दूर हो चुकी है। ब्रह्मचारी होते हुए भी समस्त गुणों से सम्पन्न है इसप्रकार के गुण समुदाय से मण्डित व्यक्ति यदि गृहस्थ भी प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहता है वह यज्ञ करके शास्त्रीय विधानानुसार दान देकर सभी वेदों की दक्षिणा सहित दान देकर स्वयं में अग्नि

ऋृणानि त्रीण्यपाकृत मनोमोक्षे निवेशयेत् । श्रुतौ तु-यदहरेव विरजेत् तदहरेव परिव्रजेत् ब्रह्मचर्याद् बा गृहाद् वा वनाद्वा कामं परिव्रजेत् । कुत्र चिदुक्तमन्यत्र द्विजः परिव्रजेदित्युक्तम्, कुत्रचित्-अनाश्रमी न तिष्ठेत् । अन्यत्र आश्रमाणां सर्वेषां नियमानां परिपालनानन्तरं आत्मारामः सन् शब्दादिभ्यो विषयेभ्यो मनसा सर्वाणीन्द्रियाणि निगृह्य परिपक्वकषायः सञ्जातवैराग्यो, योगाभ्यासबलेन प्राप्तात्मज्ञानः प्रारिव्राज्यं गृह्णीयादिति । विविधैः प्रकारैः स्वस्वमतान्युपस्तानि । सर्वेषां समन्वये कृतेऽपि द्विजस्थैव संन्यासेऽधिकार आयाति ते च ब्राह्मणक्षत्रियवैश्या ब्रह्मचर्याद् वा गृहाद्वा वनाद्वा कथञ्चित् पारिव्राज्यमर्हन्ति, शूद्राणाञ्च वेदाध्ययनाधिकाराभावात् पारिव्राज्यमेभिर्वचोभिः कथञ्चिदपि न सिद्ध्यति । स्त्रीणान्तु का कथा । यतोहि मनुना निरूपितम्-वैवाहिकोविधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः । पतिसेवा गुरौवासः गृहार्थो अग्नि प्रक्रिया ॥ इति ॥

आरोपितकर ब्राह्मण संन्यासाश्रमी बनें । और इस विषय में मनु स्मृतिकार कहते हैं- देव, पितृ एवं ऋषि इन तीनों ऋृणों को चुकाकर मनको मोक्ष में लगावे । वेद में तो कहा है-जिस दिन परम वैराग्य हो उसी दिन संन्यास ग्रहण करे ब्रह्मचर्याश्रम से अथवा गृहस्थाश्रम से अथवा वानप्रस्थाश्रम से अपनी इच्छानुसार परिव्रज्या ग्रहण करे। इत्यादि वेद एवं धर्म शास्त्र के वचनानुसार ब्राह्मण संन्यास ग्रहण करें ऐसा कहीं पर कहा गया है। दूसरे स्थान पर द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य संन्यास ले कहीं पर तो विना आश्रम के नहीं रहना चाहिये। दूसरे जगह सभी आश्रमों के नियमों का क्रमशः परिपालन करलेने के पश्चात् आत्माराम बनकर शब्द आदि विषयों से मन के द्वारा सभी इन्द्रियों को निगृहीत करके वैराग्य को परिपक्व हो जाने पर विरक्त होकर योगाभ्यास के बल से आत्म ज्ञान को प्राप्त करलेने पर संन्यास ग्रहण करे ।

इसप्रकार विविध ढंग से आचार्यों के द्वारा अपने अपने विचार प्रस्तुत किये गये हैं। सभी विचारों का समन्वय करलेने पर भी ब्राह्मण क्षत्रिय एवं वैश्य का ही संन्यास में अधिकार सिद्ध होता है। और वे ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य ब्रह्मचर्य गृहस्थ अथवा वानप्रस्थ से जिस किसी आश्रम से संन्यास ग्रहण कर सकते हैं। और शूद्रों का वेद अध्ययन के अधिकार का अभाव होने के कारण संन्यासाश्रम में प्रवेश इन

शूद्राणामन्त्यजानाञ्चभिन्नैव स्थितिः, यतो हि तेषां वेदविहितः संस्कारः कदाचिदपि न भवति, ब्रह्मचर्याश्रमयज्ञोपवीतादीनाञ्च का कथा । अत साम्प्रतिके युगे तु भारते वर्षे यवनानां बौधजैनादीनां प्रभावबाहुल्ये जाते द्विजेष्वपि क्रमेण हीनता समायाता ''निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः। तस्य शास्त्रेऽधिकारोऽस्मिन् ज्ञेयोनाऽन्यस्य कस्यचित्' इति नियमोऽपि द्विजानां कृतेऽपि व्याकुप्येत, द्विजानामपि साम्प्रतिके युगे वेदविधानमनुसृत्य समस्तसंस्कारविधानाभावात् । ''युगोऽयं दारुणः कलिः'' इति विचारमनुसृत्य कुत्रचित् ब्राह्मणस्यापि विवाहोपनयनसंस्कारौ एव विधीयते । कुत्रचित्त्रयः संस्काराः विधीयन्ते अन्यत्र चत्वारः । वेदाध्ययनस्तु कथैव नास्ति । म्लेच्छा अपि वेदान् पठन्ति ब्राह्मणाश्च न पठन्ति इति युगधर्मं

पूर्व वर्णित वचनों से किसी तरह भी सिद्ध नहीं होता है। स्त्रियों के संन्यास की तो वात ही क्या क्योंकि भगवान् मनु के द्वारा कहा गया है कि स्त्रियों का विवाह सम्बन्धि विधि विधान ही वैदिक संस्कार कहा गया है। पति की सेवा ही गुरुकुल में वास है। तथा घरका कार्य व्यवहार सम्पादन अग्निहोत्र है। शूद्र एवं चाण्डालों की तो अलग ही स्थिति है क्योंकि उनका वेद विहित संस्कार कभी भी नहीं होता है ब्रह्मचर्याश्रम एवं यज्ञोपवीत आदि की तो बात ही क्या। यवनों बौद्ध जैन आदि का अधिक प्रभाव हो जाने पर ब्राह्मणों में भी क्रमशः हीनता आ गयी। गर्भाधान से लेकर दाह संस्कार पर्यन्त जिसका विधान मन्त्रों के द्वारा कहा गया है उसी का इस वेदादि शास्त्र पढने में अधिकार है दूसरे का नहीं यह नियम भी ब्राह्मण क्षत्रिय एवं वैश्यों के लिये भी विरुद्ध हो जायगा। ब्राह्मणों का भी वर्तमान युग में वैदिक विधान का अनुशरणकर समस्त संस्कार का विधान नहीं होने के कारण यह भयंकर कलियुग है इस विचार का अनुशरणकर कहीं पर ब्राह्मण का भी उपनयन और विवाह संस्कार ही वैदिक रीति-रिवाज के अनुसार किये जाते हैं। कहीं तीन संस्कार किये जाते हैं तो कहीं चार। वेदाध्ययन की तो वात हीं नहीं है। म्लेच्छ भी वेदों को पढते हैं। और ब्राह्मण नहीं पढते हैं। इसप्रकार युगधर्म को अच्छी तरह विचार करके श्रीरामानन्दाचार्यजी के स्वरूप में अवतार ग्रहण किये भगवान् श्रीरामचन्द्रजी→ श्रीरामानन्दाचार्यजी के स्वरूप में प्रयाग में १३५६ विक्रम में अवतार लेकर गीता,

सम्यग्विचार्य श्रीरामानन्दाचार्यस्वरूपेणवतीर्णः भगवान् श्रीरामचन्द्रः श्रीरामानन्दाचार्यस्वरूपेण प्रयागेऽवतीर्यानन्दभाष्यं प्रस्थानत्रयमधिकृत्य विधाय श्रीवैष्णवमताब्जभास्करञ्च चकार, यतिप्रवरस्य श्रीरामानन्दाचार्यस्य वचनं भगवतः श्रीरामस्यैववचनमिति कृत्वा लोकोऽपि जग्राह । तत्र श्रीवैष्णवमताब्जभास्कराभिधाने ग्रन्थे श्रीमान् रामानन्दाचार्यो भगवतः प्रणति विषये प्रोवाच→

सर्वे प्रपत्तेरधिकारिणः सदा शक्ता अशक्ता पदयोर्जगत्प्रभोः ।
अपेक्ष्यते तत्र कुलं बलं च नो न चापि कालो न च शुद्धतापि वै ॥

श्रीवै.म.भा. ४-५०-श्लो.

तेन केवलं ब्राह्मणादिका एव भगवत् प्रपत्तेरधिकारिणः इति न मनोरमम् । पुरषार्थत्वात् सर्वेषामेव ब्राह्मणादारभ्य स्त्रीशूद्रान्तानां सर्वस्मिन् काले स्थाने च प्रपत्तावधिकारः । न त्वस्मिन् यागादिवत् कुलबलशुद्धता प्रभृतीनां तत्रोपयोगः ।

उपनिषद एवं ब्रह्मसूत्र इन प्रस्थानत्रय पर आनन्दभाष्यों की रचना करके और श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर की रचना किये । यतिराज आनन्दभाष्यकार श्रीरामानन्दाचार्यजी का वचन भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का ही वचन है ऐसा मानकर संसार ने भी उसे स्वीकार किया । उस श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर नामक ग्रन्थ में श्रीमान् श्रीरामानन्दाचार्यजी भगवान् की प्रपत्ति के विषय में सुस्पष्ट रूपसे कहे हैं कि-भगवत् शरणागति के सभी अधिकारी हैं । चाहे बलवान् हो या बलहीन । उच्च कूल में जन्म लिया हो या नीच कूल में क्योंकि भगवान् परम कृपालु हैं वे अपनी प्रपत्ति में कूल जाति अवस्था आदि का ध्यान नहीं रखते । इसिलिए जीव मात्र प्रपत्ति के अधिकारी हैं । इस कथन से केवल ब्राह्मण ही भगवत् प्रपत्ति के अधिकारी हैं यह कथन सुन्दर नहीं है । पुरुषार्थ होने के कारण ब्राह्मण से लेकर स्त्री, शूद्र पर्यन्त सभी सभी समय में और सभी स्थान पर प्रपत्ति के लिये अधिकृत हैं । न कि प्रपत्ति में याग आदि के समान कूल, बल, वंश आदि की विशुद्धता का उपयोग है । और कहा भी है पूर्व प्रतिपादित शरणागत के द्वारा वैष्णव श्रेष्ठ श्रीवैष्णवगण कर्मों के स्वरूपतः त्याग को अर्थात् कर्तव्य के अभिमान का त्याग पूर्वक समस्त फलों के त्याग को ही धर्म

तथा च-धर्मत्यागोऽपि परमैकान्तिकैरुच्यते वरैः ।
इत्थं हि कर्मणां त्यागः स्वरूपस्याखिलस्य च ॥ श्रीवै.भा.४/५१॥
अथोपायान्तराण्येव प्रवदन्ति मनीषिणः ।
विरोधीति प्रपत्तेस्तु संबन्धज्ञानकोविदाः ॥
लोकसंग्रहणार्थन्तु श्रुतिचोदितकर्मणाम् ।
शेषभूतैरनुष्ठानं तत्कैङ्कर्य परायणैः ॥ श्रीवै.भा.४/५२/५३॥
भारद्वाजसंहितायामपि अयमेव अभिप्रायो निरूपितः । तद्यथा-
"ब्रह्म-क्षत्र-विशः शूद्राः स्त्रियश्चैवान्त्यजास्तथा ।
सर्व एव प्रपद्येरन् सर्वधातारमच्युतम् ॥
बालमूकजडान्धश्च पङ्गवोवधिरास्तथा ।
सदाचार्येण सन्दिष्टाः प्राप्नुवन्ति परां गतिम् ॥"
पद्मपुराणस्य उत्तरखण्डेऽप्यभिहितम्-
"आस्तिको धर्मशीलश्च शीलवान् वैष्णवः शुचिः ।
गम्भीरश्चतुरोधीरः शिष्य इत्यभिधीयते ॥

त्याग कहते हैं । यह शास्त्रीय सिद्धान्त हैं और धर्म त्याग के वाद भगवान् के साथ चेतनों का शेष, शेषित्व आदि नौ प्रकार के सम्बन्ध को जाननेवाले श्रीवैष्णव प्रपत्ति परायण हैं । वे मोक्ष के कारण स्वरूप कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग रूप अन्य उपायों को प्रपत्ति स्वरूप मोक्ष का जो प्रधान साधन है उसे प्रपत्ति विरोधी मानते हैं । क्योंकि उनका अनुष्ठान किसी कामना से किया जाता है । श्रुति विहित नित्य नैमित्तिक आदि कर्मों का अनुष्ठान लोग संग्रह के लिये करते हैं । क्योंकि भगवान् के कैङ्कर्य में समर्पित भगवान् के शेषभूत भगवत् परायण भक्तों के द्वारा सामान्य लोक जो करते हैं उसका अनुवर्तन के लिये सम्पादन करते हैं । वर्णाश्रमोचित कर्म लोक कल्याण के लिए अवश्य ही करना चाहिये इसिलिए करते हैं ब्राह्मण से लेकर स्त्री शूद्र पर्यन्त मानवों का हर समय एवं सभी स्थानों पर प्रपत्ति का अधिकार है । इसमें कूलबल आदि की उपयोगिता नहीं है । भारद्वाज संहिता में भी यही अभिप्राय बताया गया है । वह जैसे कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्रियाँ तथा अन्त्यज ये सभी प्रपत्ति ग्रहण करें । चराचर जगत् के भरण पोषण करनेवाले भगवान् श्रीरामजी की शरणागति

यस्त्वाचार्यपराधीनः तद्वाक्यशासने ह्रदि ।
शासनेस्थिरवृत्तिश्च शिष्यः सद्भिः उदाहृतः ॥''

अगस्त्यसंहितायामपि उक्तम्-

स्त्रियः पतिव्रताश्चान्ये प्रतिलोमानुलोभजा ।
लोकाश्चाण्डालपर्यन्ता सर्वेप्यत्राधिकारिणः ॥

स्कन्दे चोक्तम्-

पतिव्रतामहासाध्वी मम भक्तिरता सदा ।

वृद्धहारीतस्मृतावप्युक्तम्-

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रास्तथापरे ।
तस्याधिकारिणः सर्वे सत्वशीलगुणायदि ॥

नारदीयपुराणेऽपि उक्तम्-

चाण्डालोऽपि मुनिश्रेष्ठः विष्णुभक्तो द्विजाधिकः ।

श्रीमद्भागवतस्य महापुराणस्य सप्तमस्कन्धे निरूपितम्-

''विप्राद् द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ पादारविन्दविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम् ।
मन्ये तदर्पितमनोवचने हितार्थ प्राणं पुनाति सकुलं न तु भूरिमानः ।७/९/१०।

परम आवश्यक है । बालक, मूक, जड, अन्धे, लङ्गडे तथा बहिरे ये सभी अच्छे आचार्य के द्वारा दीक्षित होने पर परमगति को प्राप्त करते हैं । सर्वाङ्ग सम्पन्न प्राणियों की तो वात ही क्या । पद्मपुराण के उत्तरकाण्ड में भी कहा है→आस्तिक धर्मा चरणशील, सदाचारी पवित्र, वैष्णव, गम्भीर, चतुर एवं धीर पुरुष शिष्य कहा जाता है । और जो आचार्य के पराधीन है, आचार्य के वचन एवं उपदेश को मन में रखता है उनके शासन में स्थिर बुद्धि रखनेवाला है, ऐसे व्यक्ति को सज्जनों के द्वारा शिष्य शब्द से कहा गया है । अगस्त्य संहिता में भी कहा गया है→स्त्रियाँ पतिव्रताएं, प्रतिलोम एवं अनुलोम संकर जातियाँ, ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल पर्यन्त इस श्रीवैष्णवी दीक्षा के अधिकारी हैं । स्कन्दपुराण में भी कहा है पतिव्रता महासाध्वी सदैव मेरी भक्ति में तत्पर हैं । बृद्धहारीत स्मृति में भी कहा है-ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, स्त्रियाँ तथा शूद्र वे सभी यदि सत्व गुण सम्पन्न आचार विचार वाले हैं तो उस प्रपत्ति के अधिकारी हैं । नारदीय पुराण में कहा है-श्रीवैष्णव भगवान् का भक्त यदि चाण्डाल भी है तो

एवमादीनि वचांसि प्रमापयन्ति स्त्रीशूद्रपङ्गवन्धवधिरादीनामपि प्रपत्तावधिकारः। भगवत् प्रपन्नानां च सर्वतोभावेन विशुद्धत्वात्, क्षीणदुष्कृतत्वाच्च सर्वेषामेव संन्यासाश्रमप्रवेशाधिकारो दीक्षाप्राप्तेरधिकारश्च सुतरां सिद्ध्यति। किन्तु समेषामेव संन्यासग्रहणात् पूर्वं प्रपत्ति पञ्चसंस्कारश्च परमावश्यकः। गीतायां भगवता श्रीकृष्णेन-"काम्यानां कर्मणां न्यासः संन्यासं कवयो विदुः। काम्यकर्मपरित्यागस्य ज्ञानिनां स्वभावसिद्धत्वादित्युक्तम् ॥२६॥

व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयोविद्या गजेन्द्रस्य का, का जातिर्विदुरस्य यादवपतेरुग्रस्य किं पौरुषम्। कुब्जाया किमुनामरूपमधिकं किं तत् सु-

ब्राह्मण से अधिक श्रेष्ठ है। भागवत महापुराण के सप्तम स्कन्द में कहा गया है कि-द्वादश गुण सम्पन्न ब्राह्मण पद्मनाभ भगवान् श्रीविष्णु के चरणकमल से उदासीन हो तो उससे भगवत् चरणकमलानुरागी चाण्डाल भी अतिशय महान् है। मेरा यह मानना है कि अपना सबकुछ जिसने भगवान् को समर्पित करदिया है वह ब्राह्मण तो केवल अपना उद्धार करता है किन्तु भक्त चाण्डाल अपनी कूल परम्परा सहित सभी का उद्धार कर देता है। इत्यादि शास्त्रों के वचन इस वात को प्रमाणित करते हैं कि स्त्री, शूद्र, पङ्गु, अन्ध, बहिर, आदि भी भगवत् प्रपत्ति के अधिकारी हैं। भगवत् प्रपन्नों का सभी तरह से परम पवित्र होने के कारण तथा समस्त दुष्कृतों को क्षीण हो जाने के कारण निष्कल्मष होने से सभी का ही ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र स्त्री आदि का संन्यासाश्रम प्रवेश एवं दीक्षा प्राप्ति का अधिकार अच्छी तरह सिद्ध होता है। किन्तु इन सभी को संन्यास ग्रहण से पहले श्रीराम शरणागति एवं पञ्चसंस्कार परम आवश्यक है। गीता में भगवान् श्रीकृष्णजी के द्वारा काम्य कर्मों का परित्याग ही संन्यास है ऐसा विद्वान् लोग जानते हैं कहा गया है और काम्य कर्मों का परित्याग ज्ञानि पुरुषों के लिए स्वभाव सिद्ध होने के कारण श्रीरामप्रपत्ति पूर्वक संन्यासाश्रम में प्रवेश के लिए भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी के मत में सभी को अधिकार है ॥२६॥

अजामिल का कौन सा वेदशास्त्र सम्मत पवित्र आचरण था, भक्त बालक ध्रुव की क्या अवस्था थी, गजराज का कौन सा वेदाध्ययन अथवा उपनिषद ज्ञान था, विदुर की कौन पवित्र जाति थी, परम वृद्ध उग्रसेन का क्या पुरुषार्थ बल था, कुब्जा की

दाम्नो धनम् भक्त्या तुष्यति केवलं न च गुणैर्भक्तिप्रियो राघवः । एव मादिभिर्युक्तिभिर्भक्तिमार्गे केवलस्य कल्मषरहितस्य विशुद्धस्य मानसस्यैव प्रधानसाधनता प्रमुखैराचार्यवर्यैरभ्युपेता । अन्यथा प्रमुखस्याचार्यस्य पवनत नयस्य श्रीहनुमतः कथमाचार्यत्वं स्यात् । श्रीमद्वाल्मिकीयरामायणे उक्तम्-

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ॥
पापानां वाऽशुभानां वा वधार्हाणां प्लवंगम ।
कार्य्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति ॥

श्रीगीतायामप्युक्तम्-

मां हि पार्थव्यपाश्रित्य येऽप्रिस्युः पापयोनयः ।
स्त्रियोवैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परांगतिम् ॥
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशु च ॥

कौन सी विलक्षण सुन्दरता थी, दरिद्र ब्राह्मण सुदामा के पास किस प्रकार का धन था, अर्थात् उपर्युक्त इन सभी के पास जाति गुण आचार अवस्था कुल बल ऐश्वर्य आदि गुणों की सभी तरह से कमी थी, फिर इन सभी के ऊपर भगवान् अहैतुकी परम अनुकम्पा किये । इससे सिद्ध होता है कि भगवान् केवल श्रद्धा भक्ति से ही सन्तुष्ट होते हैं । निर्बल के बल राम हैं । भगवान् को प्रसंन्न करने के लिये गुणों की आवश्यकता नहीं । भगवान् श्रीराघवजी भक्ति प्रिय हैं । शास्त्र पुराणों में देखे गये इस तरह की युक्तियों से सिद्ध होता है कि भक्ति मार्ग में केवल पापों से रहित अत्यन्त पवित्र मानस होना ही प्रधान साधन है विशुद्ध मन की ही भगवत् कृपा में मुख्यकारणता है । ऐसा श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णवसम्प्रदाय के प्रमुख आचार्यों के द्वारा अङ्गीकार किया गया है । ऐसा यदि नहीं होता तो श्रीसम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य श्रीपवन तनय श्रीहनुमानजी का आचार्यत्व कैसे होता । श्रीमद्वाल्मिकी रामायण में भी कहा गया है । भगवान् सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी अपने श्रीमुख से कहते हैं कि एकवार ही जो शरणागत होकर हे नाथ ? मैं आपका हूँ ऐसी जो याचना करता है ऐसे-समस्त प्रपन्न प्राणी मात्र के लिये मैं सदैव सभी तरह का अभयदान देता हूँ । इसलिये मानस श्रीरामायण में कहा है-

अत्र विषये जगद्गुरुणा श्रीमता रामानन्दाचार्येण गीतायाः आनन्द भाष्ये सुस्पष्टमभिहितं यत् भगवदेकशरणस्य भगवदेकोपायस्य ब्रह्मसंस्थस्य आश्रमान्तरेभ्यः पृथक् कृत्याभिहितत्वात् । तस्मात् तत्तदाश्रमे अरुचिमतः परमविरक्तस्य परमपुरुषैकचिन्तकस्य तदेकशरणस्य ज्ञानिभक्तस्य सर्वाश्रम श्रेष्ठतया गीताशास्त्रे असकृदुच्चारणत्वात् परमात्मानुरक्तिरसिकः स एव विरक्ताश्रमोऽनुष्ठेयो मुमुक्षुभिः इति ।

आचार्येण श्रीहरिदासेन श्रीरामतापन्युपनिषदि प्रतिपादितं यत्-अत्र हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रतारकः तं ब्रह्मव्याचष्टे । इतिश्रुत्याजन्तुमात्र स्याधिकारित्वद्योतनात् ।पुनः य एतत्तारकं ब्राह्मणो नित्यमधीते । अत्र ब्राह्मणशब्दो ब्रह्मबुभुत्स्वर्थकः न तु ब्राह्मण जाति परः ।

सनमुख होइ जीव मोहि जब ही । जन्म कोटि अघ नाशहुँ तब ही ॥

पाप पूर्ण आचरण करनेवालों, अशुभ आचरणशील का, हे श्रीहनुमानजी यहाँ तक की दुराचरणशीलता के कारण बध करने योग्य पुरुषों का भी शरणागत होने पर आर्य आचरणशील भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा करुणा किया जाना उनका परम कर्तव्य है। सभी उनके सन्मुख होने पर कोई अपराधी नहीं रहता है। सभी अपराधी भी भगवत् परम कृपा के पात्र हो जाते हैं। गीता में भी भगवान् अपने श्रीमुख से कहते हैं कि-हे पार्थ मुझे विशेष रूपसे अपना आश्रय बना लेने पर पाप योनियों में रहनेवाले भी जो प्राणी हैं, वे स्त्रियाँ वैश्य तथा शूद्र ये सभी परमगति को प्राप्त करते हैं। केवल भगवान् का शरणागत होने की देरी है।

संसार के सभी धर्मों का परित्यागकर एकमात्र मेरे शरण में आ जाओ, मैं अखिल जगत नियन्ता भगवान् विष्णु तुमको संसार के समस्त पाप कलाप से मुक्त कराऊँगा, तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करो। इन वातों से सिद्ध होता है कि संसार का सभी मानव भगवान् का शरणागत हो सकता है। शरणागत का भगवान् सर्वतोभावेन अवश्य उद्धार करते हैं।

इस विषय में जगद्गुरु श्रीमान् भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी के द्वारा गीता के आनन्दभाष्य में सुस्पष्ट रूपसे कहा गया है कि जिसका एकमात्र भगवान् शरण हैं। भगवान् ही एकमात्र साधन हैं। ऐसे ब्रह्मनिष्ठ पुरुषों के अन्य आश्रमों से भिन्न प्रकार

शुचिव्रततमाः शूद्रा धार्मिका द्विज सेवकाः ।
स्त्रियः पतिव्रताश्चान्ये प्रतिलोमानुलोमजाः ॥
लोकाश्चाण्डालपर्यन्ता सर्वेऽप्यत्राधिकारिणः ।
स्वजातिकर्मनिरता भक्ताः सर्वेश्वरस्य ये ॥

इत्यगस्त्यसंहितायां चाण्डासपर्यन्तस्य षडक्षराधिकारित्वोक्तेः ।

हारीतस्मृतावप्युक्तम्-

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रास्तथापरे ।
सर्वेऽप्यत्राधिकारिणो ह्यनन्य शरणा यदि ॥
गर्भजन्मजरामृत्युतारकं सर्वदेहिनाम् ।
स्वभक्तवत्सलं राममन्त्रं सम्यगुपास्महे ॥

भारद्वाजसंहितायामप्युक्तम्-

बालमूकजडान्धाश्च पंगवोवधिरास्तथा ।
सदाचार्य्येण सन्दिष्टाः प्राप्नुवन्ति परांगतिम् ॥

ब्रह्मपुराणे श्रीमद्भगवतः वचनम्-

मद्भक्ताः क्षत्रियाः वैश्याः स्त्रियः शूद्रास्तथान्त्यजाः ।
प्राप्नुवन्ति परां सिद्धिं किं पुनस्त्वं द्विजोत्तम ॥
श्वपाकोऽपि च मद्भक्तः सम्यक् श्रद्धा समन्वितः ।
प्राप्नोत्यभिमतां सिद्धिमन्येषां तत्र का कथा ॥

का ही कर्तव्य कहे जाने के कारण मुक्ति सम्भव होती है। इसिलिए उन-उन आश्रमों में जिसकी अभिरुचि नहीं है ऐसे परम विरक्त पुरुष के लिये जो कि एकमात्र परम पुरुषोत्तम भगवान् के चिन्तन करनेवाले हैं। भगवान् ही जिसका एकमात्र शरण हैं। उस ज्ञानी भक्त के सभी आश्रमों से श्रेष्ठ होने के कारण गीता शास्त्र अनेक वार उच्चारण से परमात्मा के परमानुराग का रसिक वही आश्रम मोक्ष की कामना करनेवाले पुरुषों के द्वारा पालनीय है।

आचार्य श्रीहरिदासजी के द्वारा श्रीरामतापनीय उपनिषद में प्रतिपादन किया गया है कि क्योंकि यहाँ पर प्राणों का उर्ध्व गमन होने पर भगवान् शंकर उस सकल लोक

इत्थं परमोदारस्य विलक्षणशक्तिसम्पन्नस्य क्षणार्धेन महापातकिनामपि समूलपापपुञ्जविनाशकस्य परममहतः श्रीवैष्णवधर्मस्य दीक्षायां समेषामेव मानवानामधिकारः अस्ति इति बोद्धव्यम् । श्रीसम्प्रदाये दीक्षितस्य पुंसस्य श्रीवैष्णवसंन्यासाश्रमेऽधिकारः अस्ति इति तु पूर्वमपि निरूपितम् । आकीट पतङ्गस्य श्रीराममन्त्रग्रहणेऽधिकारः इति भगवता श्रीरामचन्द्रेण उक्तम् । भाष्यकृता श्रीरामानन्दाचार्येणापि समर्थितं यत् विरक्ताश्रमे-श्रीवैष्णवाश्रमे भगवच्छरणागतौ च वर्णाश्रमधर्मस्य सामान्यधर्मपरिपालनस्य च विशेषाग्रहो नास्ति । यतो हि अन्यधर्मापेक्षया श्रीवैष्णवधर्मानुपालने कोटिगुणाधिकं पुण्यं निरूपितम् । किन्तु एतावान् विशेषोऽस्ति यत् भगवच्छरणागतौ श्रीरामचन्द्रपादपद्मानुरागः आस्तिक्यं, शान्तचित्तता, श्रद्धा, भगवन्म हात्म्यवचनेषु हृदयेन अर्थवादत्वानङ्गीकारः भगवत् भागवतकीर्तिकथा श्रवणाचारणाद्यभिरूचिरेवमाद्योगुणा अपेक्षिताः सन्ति । तदुक्तम्-

प्रसिद्ध तारक ब्रह्म का व्याख्यान करते हैं। इस श्रुति के अनुसार प्राणि मात्र का भगवत् प्रपत्ति का अधिकारित्व प्रकाशन होता है ।

जो इस तारक ब्रह्म का नित्य अध्ययन करता है वह ब्राह्मण मुक्त होता है। यहाँ पर ब्राह्मण शब्द तत्वज्ञान का अभिलाषी अर्थ प्रतिपाद्य हैं। न कि ब्राह्मण शब्द ब्राह्मण जाति परक हैं ।

जिनका पवित्रतम व्रत हैं ऐसे शुद्ध धर्मात्मा तथा द्विजाति के सेवक स्त्रियाँ पतिव्रताएं तथा अनुलोम और प्रतिलोम चाण्डाल पर्यन्त जो भी जाति हैं वे सभी इस परम विरलाश्रम के अधिकारी हैं । जो अपने जन्म कर्मानुसार जाति के धर्मका परिपालन करते हुए सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के भक्ति का अधिकारी हैं । इसप्रकार अगस्त्य संहिता में चाण्डाल पर्यन्त मानवों को षडक्षर श्रीराममन्त्र प्रतिपाद्य ब्रह्म ज्ञान का अधिकारी होना कहा गया है । हारीत स्मृति में भी कहा गया है-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्रियाँ तथा अन्य जो भी जाति प्रजाति हैं वे सभी यदि अनन्य शरणागत हैं तो इस श्रीवैष्णव संन्यास के अधिकारी हैं । जो गर्भ, जन्म, बार्धक्य, मृत्यु इन सभी से सभी प्राणियों का उद्धार करनेवाले हैं ऐसे श्रीराममन्त्र की हम सभी सम्यक् उपासना करते हैं ।

स कथं ब्राह्मणो यश्च हरिभक्तिविवर्जितः ।
सकथं श्वपचो यस्य रामभक्तिर्हृदिस्थिता ॥

एतेन संन्यासे सर्वथा समेषां मनवानामधिकार इति स्वीकर्तव्यमेव भवति ।

किन्तु त्रिदण्डधारणे, नायं नियमः । शास्त्रवचनविरोधात् । प्राप्त संन्यासदीक्षैरपि श्त्रीसूद्रादिभिः त्रिदण्डः कदाचिन्न धारणीयः । अर्केचेन्मधु विन्देत किमर्थं पर्वतं व्रजेत् । अभिमतफलावाप्तेः । सम्प्रदायाचार्याणां शास्त्राणाञ्च वचसां सर्वथा परिपालनमपि भवति । तदुक्तम् धर्मशास्त्र पुराणेतिहासपाञ्चरात्रादिषु । यथा हि, ब्राह्मणक्षत्रियविशां ब्रह्मचारिणां दण्डनियमोऽवलोक्यते, स्त्रीशूद्रादीनाञ्च दण्डनियमोनास्ति, तथैव स्त्रीशूद्रादीनां पारिव्रज्यायां सत्यामपि त्रिदण्डो न धारणीयो द्विज संन्यासिभिरेव धारणीयः नान्यैरिति विद्यते शास्त्राणां नियमः । तद्यथा-चतुर्धाभिक्षवः प्रोक्ताः सर्वे चैव त्रिदण्डिनः । अत्रिः । अर्जुनस्तीर्थयात्रायां पर्यटन्नवनीं मुहुः । स यतिर्भूत्वा त्रिदण्डीद्वारकामगादिति, श्रीभा. ।

भरद्वाज संहिता में भी कहा गया है, बालक, गुंगा, जड तथा अन्धा, लङ्गडा, बहिरा इन सभी लोगों को यदि आचार्य के द्वारा ब्रह्मतारक श्रीराममन्त्र का उपदेश दिया गया हो तो परमगति को प्राप्त करते हैं। ब्रह्मपुराण में भी श्री भगवान् विष्णु का वचन है क्षत्रिय, वैश्य, स्त्रियाँ, शूद्र और अनत्यज यदि मेरे भक्त हैं तो परम सिद्धि को प्राप्त करते हैं। आप तो ब्राह्मणों में भी श्रेष्ठ हैं। सम्यक् प्रकार की श्रद्धा से युक्त चाण्डाल भी यदि मेरा भक्त है तो वह अपनी अभिमत सिद्धि को प्राप्त करता है। दूसरे की तो बात ही क्या।

इसप्रकार परम उदार अनेक विलक्षण शक्तियों से परिपूर्ण भगवान् का आधा क्षण भी उपासना करने पर महापातकियों का भी मूल सहित पापपुञ्ज का विनाश करनेवाला परम महान् श्रीवैष्णव धर्म की दीक्षा में सभी मनुष्यों का अधिकार है यह समझना चाहिये। जो पुरुष श्रीवैष्णवी दीक्षा से दीक्षित हैं उसका इस श्रीवैष्णव संन्यास में अधिकार है यह पूर्व में भी बताया जा चुका है। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा अपने श्रीमुख से कहा गया है कि आकीट पतङ्ग का शरणागति में अधिकार है। आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी के द्वारा समर्थन किया गया है कि

तदासाद्य दशग्रीवो क्षिप्रमन्तरमास्थितः ।
अभिचक्राम वैदेहीं परिव्राजकरूपधृक् ॥
क्ष्लक्ष्णः काषायसंवीतः शिखीछत्री उपानही ।
वामांशे चावसज्याथ शुभे यष्टिकमण्डलू ॥ इति ॥
रावणस्तु यतिर्भूत्वा मुण्डः कुण्डी त्रिदण्डधृक् ॥ महाभारते ॥
कार्पासोद्भव काषायं वस्त्रं ग्राह्यमयाचितम् ।
नरक्तमुल्वणं वासो न नीलं च प्रशस्यते ।
मलाक्तं च दशाहीनं वर्जयेदम्बरं यतिः ॥ जमदग्निस्मृतिः ।
त्रिदण्डरूपधृग् विप्रः साक्षान्नारायात्मकः ।
यस्तु पूजयते भक्त्या विष्णुस्तेन प्रपूजितः ॥ दत्तात्रेयस्मृतिः ।
त्रिदण्डं वैणवं लिङ्गं द्विजानां मुक्तिसाधनम् ।
निर्वाणं सर्वधर्माणामिति वेदानुशासनम् ॥

विरक्ताश्रम-श्रीवैष्णवाश्रम तथा भगवत् शरणागति में वर्णाश्रम धर्म और सामान्य धर्म के परिपालन की सामान्यतया विशेषता नहीं है । क्योंकि अन्य धर्मों की अपेक्षा श्रीवैष्णव धर्म के अनुपालना में करोडों गुणा अधिक पुण्य बताया गया है, किन्तु इसमें इतना अन्तर है कि भगवत् शरणागति में श्रीरामचन्द्रजी के चरणकमलों में अनन्य प्रेम आस्तिकता शान्तचित्त होना श्रद्धा होना भगवान् के महात्म्य का प्रतिपादन करनेवाले शास्त्र पुराणों के वचनों में हृदय से अर्थवाद (प्रशंसा परक वचन) नहीं मानना भागवत् और भगवान् के कीर्ति कथाओं को सुनने एवं आचरण में अभिरुचि आदि गुण अपेक्षित हैं । यही वात कही गयी है कि वह ब्राह्मण जो भगवान् की भक्ति से रहित है वह कैसे ब्राह्मण होगा ? वह चाण्डाल जिसके मानस पटल में अनन्य भगवद्भक्ति है वह चाण्डाल कैसे होगा ? अर्थात् भगवद्भक्ति से सभी पवित्र हो जाते हैं । और भक्ति के विना पवित्र भी अपवित्र हो जाते हैं । इससे यह सिद्ध होता है कि श्रीराम शरणागति सहकृत संन्यास में सभी मानवों का अधिकार है । इस सिद्धान्त को स्वीकार करना ही चाहिये ।

लेकिन त्रिदण्ड धारण करने में यह नियम नहीं है । क्योंकि शास्त्रों के वचनों से विरोध किया गया है । जिनमें सत्वगुण की अधिकता है वे देवतागण भी काम,

द्वे रूपे वासुदेवस्य चलं चाचलमेव च ।
चलं संन्यासिनां रूपमचलं ब्रह्मसंस्थितम् ॥
दुर्वृत्तो वा सुवृत्तो वा मूर्खः पण्डित एव वा ।
काषायमात्रवेषेण यतिः पूज्यो युधिष्ठिरः ॥ जमदग्निः ।
कार्पासं धारयेद् वस्त्रं पदवल्कलवर्जितम् ।
काषायमेव कार्पासं वासः कन्थाञ्च धारयेत् ॥ जाबालिः ।
द्विजस्य त्रिदण्डधारणविषये विशेषरूपेण दक्षस्मृतौ सविस्तरं न्यरूपयत् ।

क्रोध, लोभ, मोह आदि विषयों के द्वारा पराधीन करलिये गये तो अत्यन्त क्षुद्र स्वभाव वाले मानवों के इन कामादिकों से स्वाधीन करने की तो वात ही क्या । इसलिए जिसका कशाय (परम वैराग्य) परिपक्व हो चुका है उसी के द्वारा दण्ड धारण किया जाना चाहिये । अन्य पुरुष दण्ड धारण नहीं कर सकता है क्योंकि पूर्ण संस्कार के विना विषयों के द्वारा आकर्षित हो जाता है । त्रिदण्ड चिह्न को धारण करके उसके सहारे बहुत से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपना जीवन व्यवहार चलाते हैं, लेकिन जो ब्रह्मतत्व को नहीं जानता है वह त्रिदण्ड धारण करने के योग्य नहीं है । और आचार्य श्रीबौधायनजी भी कहते हैं कि संन्यास दीक्षा ग्रहण कर शास्त्रानुमोदित काषाय वस्त्र धारणकर लेने के पश्चात् पुनः श्वेत वस्त्र धारण नहीं करे । एक दण्ड अथवा त्रिदण्ड को धारण करे । एक दण्ड धारण करने के सम्बन्ध में मेधा तिथि कहते हैं-जव तक तीन दण्ड उपलब्ध न हो तब तक एक दण्ड धारणकर भी पर्यटन करे । द्विज संन्यासी को श्वेत वस्त्र धारण करने का निषेध धर्म शास्त्रों में देखा जाता है । इस नियम का अनुशीलन करने पर भी जिनकी संन्यास दीक्षा हो चुकी है ऐसे संन्यासियों के द्वारा काषाय वस्त्र का ही धारण करना समुचित है ।

इस विषय में मेधातिथि स्मृति कहती है-त्रिदण्ड कुण्डिका शिख्य भिक्षापात्र आसन और कौपीन आच्छादनार्थ ये छः संन्यासियों के परिग्रह हैं । रात में रास्ता चलना, यान आरोहण स्त्री विषय वार्ता और लोलुपता मञ्च आरोहण, तथा श्वेत वस्त्र धारण ये छः साधन संन्यासियों के अधः पतन के कारण कहे गये हैं । आसन पात्र लोप, सञ्चय शिष्य संग्रह, दिन में शयन और वकवास ये छः प्रकार के वस्तु यतियों के बन्धनकारी हैं, चातुर्मास्य को छोडकर पाँच दिन से अधिक नगर में संन्यासी का

सत्वोत्कटाः सुरास्तेऽपि विषयैस्तु वशीकृताः ।

किं पुनः क्षुद्रसत्वैस्तु मानवैरत्र का कथा ॥

तस्मात् पक्वकषायेण कर्तव्यं दण्डधारणम् ।

इतरस्तु न शक्नोति विषयैर्ह्रियते यतः ॥

त्रिदण्डलिङ्गमाश्रित्य जीवन्ति बहवो द्विजाः ।

यो हि ब्रह्म न जानाति त्रिदण्डार्हो न स स्मृतः ॥ दक्षः ॥

श्रीबौधायनश्चाह-न वा तदूर्ध्वं शुक्लाम्बरं विभृयाद् । एकदण्डं त्रिदण्डं वेति । अत्र मेधातिथिराह-यावन्नस्युः त्रयो दण्डाः तावदेकेन पर्यटेत् । द्विजस्य संन्यासिनः शुल्कवस्त्रधारणनिषेधो धर्मशास्त्रेष्ववलोक्यते, तदनुशीलनं विधायापि गृहीतसंन्यासदीक्षैः द्विजै संन्यासिभिः काषायवसनस्यैव धारणं विधेयम् । अत्र मेधातिथिः-

निवास आसन कहा जाता है। संन्यासोचितपात्रों का नहीं रखना पात्र लोप है, कालान्तर में उपभोग हेतु अन्नादि संग्रह द्रव्य संग्रह कहा जाता है। सेवा चाकरी सुख सुविधा आदि के लिये शिष्य जुटाना न कि उनका उद्धार करने के लिये उन्हे दीक्षित करना शिष्य संग्रह कहा जाता है। यह संन्यासी के लिये दोष जनक है। प्रकाश स्वरूप होने के कारण विद्या को दिन कहा जाता है तथा अविद्या को रात्री कहते हैं। विद्याभ्यास के विषय में कभी भी संन्यासी को प्रमाद नहीं करना चाहिये। विद्याभ्यास का आलस्य दिवा स्वाप कहा जाता है।

इन पूर्व वर्णित वचनों का यह सारभूत अर्थ है कि सभी ब्राह्मण से लेकर स्त्री शूद्र चाण्डाल पर्यन्त मानवों का भगवद् भक्ति में काम्य कर्मों का परित्याग पूर्वक परम वैराग्य स्वरूप संन्यास में अधिकार विद्यमान है। उसमें इतना अन्तर है कि स्त्री शूद्र आदि के द्वारा संन्यास ग्रहण किये जाने पर भी इन्हें त्रिदण्ड धारण नहीं करना चाहिये। संन्यास ग्रहण किये हुए द्विजों (ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य) के लिये तो नियम है कि संन्यास से पूर्व आश्रम पर्यन्त श्वेत वस्त्र ही धारण करने चाहिये। और त्रिदण्ड का ग्रहण नहीं करना चाहिये। संन्यास दीक्षा हो जाने के पश्चात् काषाय वस्त्र पहनना तथा त्रिदण्ड धारण करना अत्यावश्यक है। अपने पूर्वाचार्यों के शास्त्राविरुद्ध व्यवहानुरूप त्रिदण्ड का ग्रहण न भी करें तो भी श्रीवैष्णव संन्यासियों को काषाय

त्रिदण्डं कुण्डिकां शिक्यं भैक्षभाजनमासनम् ।
कौपीनाच्छादनं भिक्षा षडेतानि परिग्रहः ॥
रात्र्यध्वानं च यानं च स्त्रीकथा लौल्यमेव च ।
मञ्चकं शुक्लवस्त्रञ्च यतीनां पतनानि षट् ।
आसनं पात्रलोपञ्च सञ्चयः शिष्यसंग्रहः ।
दिवा स्वापो पृथा जल्पो यते बन्धकराणि षट् ॥

चातुर्मास्यमतिरिच्य पञ्चदिनाधिकं नगरे वास आसनम् शुश्रुषाद्यर्थं नतु तदुद्धारार्थं शिष्यसंग्रहो दोषायेतिभावः ।

विद्या दिवा प्रकाशत्वादविद्यारात्रिरुच्यते ।
विद्याभ्यासे प्रमादोः यः स दिवा स्वाप उच्यते ॥

वस्त्र का धारण अवश्यमेव करना चाहिये । लेकिन यह व्यवहार श्रीसम्प्रदायीय-श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णव सन्तों में व्यापक रूपसे नहीं देखा जाता है । प्राचीन आचार्य श्रीमान् श्रीवैष्मव सम्प्रदाय के सभी परमाचार्य काषाय वस्त्र धारण करनेवाले होते थे। और त्रिदण्डधारी होते थे । जगद्गुरु श्रीमान् श्रीभावानन्दाचार्यजी १३७६-१५३९ के समय तक यह क्रम चलता था लेकिन १५०३-१६११ जगद्गुरु श्रीअनुभवानन्दाचार्य जी के वाद काषाय वस्त्र एवं त्रिदण्ड धारण का परिस्थितिवश शास्त्राविरुद्ध होने से श्रीवैष्णव संन्यासी परित्याग कर दिये । क्योंकि उस समय की परिस्थिति बडी विचित्र थी कि श्रीवैष्णव संन्यासियों का एवं शङ्कराचार्यजी के सिद्धान्त के अनुयायी संन्यासियोंका हम श्रेष्ठ हैं तो हम श्रेष्ठ हैं इसके लिये बहुत वड़ा संघर्ष चलता था । उसमें सनातन वैदिक श्रीसम्प्रदाय धर्म रक्षा केन्द्रविन्दु में था तदर्थ समय समय पर नागा इस नाम से प्रख्यात श्रीवैष्णवीय साधु समुदाय के वर्ग विशेष का प्रयाग उज्जैन, हरिद्वार नासिक आदि में कुम्भ स्नान समारोह के अवसर पर प्रथम स्नान विषयक विवादों में संख्यातीत साधुओं का बध हो जाता था । जिस युद्ध के आज भी श्रीवैष्णवों के पास बहुत से प्रमाण उपलब्ध हैं । किन्तु अव यह लडाई झगडा का व्यवहार विलुप्त जैसा हो गया है अब उन पुण्य अवसर हेतु सरकार के ओर से ऐसी व्यवस्था हो चुकी है कि युद्ध का अवसर उपस्थित नहीं होता है । अतः हमारे आचार्य एवं दीक्षा शिक्षा गुरु स्वनाम धन्य श्रीमान् पश्चिमाम्नाय जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यपीठा

एतेषां पूर्वोक्तवचनानामयं निर्गलितार्थोऽस्ति यत् सर्वेषामेव ब्राह्मणा दारभ्य स्त्रीशूद्रचाण्डालान्तानां भगवद्भक्तौ काम्यकर्मपरित्यागपूर्वकपरम वैराग्यस्वरूपे संन्यासेऽधिकारो विद्यते । तत्र स्त्रीशूद्रादिभिः पारिव्रज्यायां गृहीतायामपि त्रिदण्डधारणं न विधेयम् । गृहीतगृहस्थदीक्षानां द्विजानां कृते तु संन्यासात् पूर्वावस्था पर्यन्तं श्वेतवस्त्रं धारणीयम् त्रिदण्डश्च न धारणीयः । संन्यासदीक्षायां गृहीतायां काषायं परिधानं त्रिदण्डश्चधारणीयः । परमयं व्यवहारः श्रीसम्प्रदायीय-श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णवसाधुषु व्याकपस्मेण नावलोक्यतेऽधुना शास्त्रविहितकर्मणि प्रमादाचरणात् खेदजनकमेतत् । प्राचीनाः श्रीमन्तः श्रीसम्प्रदायस्याचार्याः काषायवसनधारिणः त्रिदण्डिनश्चा सन् जगद्गुरु श्रीभावानन्दाचार्यं (१३७६-१५३९) यावत् किन्तु जगद्गुरु श्रीअनुभवानन्दाचार्यात् (१५०३-१६११) परं काषायवसनस्य त्रिदण्डस्य च धर्माविरुद्धत्वात् परिस्थितिवशात् परित्यागं श्रीवैष्णवसंन्यासिनोऽकुर्वन् । यतो हि तदानीं श्रीवैष्णवानां शाङ्करमतानुयायिनाञ्च महान् संघर्षः प्रचलतिस्म । समये समये नागा इति नाम्ना ख्यातानां साधूनां वधो भवति स्म, यस्याधुनापि बहुनि प्रमाणानि सन्ति, क्रमेणायं व्यवहारोविलुप्त प्रायोऽभवत् । पुनरस्मदाचार्याणां श्रीगुरुचरणानां स्वनामधन्यानां श्रीमतां पश्चिमाम्नाय जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यपीठाधीशानां श्रीशेषमठाधीशानां जग धीश श्रीशेषमठाधीश जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामप्रपन्नाचार्यजी महाराज ने २०२९ समय से त्रिदण्डग्रहण प्रथा को पुनः प्रारम्भकर दिया है इस शास्त्रीय विधान के अनुसार समारब्ध विधान का ही अनुसरणकर मैंने श्रीरामानन्दाब्द ६९० वसन्त पञ्चमी विक्रमसम्वत् २०४६ दिनाङ्क ३१।१।१९९० बुधवार को श्रीसम्प्रदायीय विधानानुसार समाज के नेतागणों के समक्ष त्रिदण्ड धारण किया । यहाँ यह ध्यान देने योग्य वात है कि जगद्गुरु श्रीभावानन्दाचार्यजी (१३७६-१५३९) के वाद विक्रमसम्वत् २०२९ में जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामप्रपन्नाचार्यजी योगीन्द्र ने यथा नियम-यथा विधि त्रिदण्ड धारणकर श्रीसम्प्रदायीय प्रथा को पुनरुज्जीवित किया जिसका अनुसरण यथा कथञ्चित् अन्यों ने किया । इसलिये श्रीवैष्णव संन्यासियों के परम ज्ञानी श्रीमान् आचार्य श्री का अनुशरण अवश्य ही करना चाहिये । एवं सभी को श्रीसम्प्रदायीय

द्गुरुश्रीरामानन्दाचार्याणां श्रीरामप्रपन्नाचार्याणां समये यथाविधि विक्रमसम्वत् २०२९तः प्रारब्धः । तदनु मया यथाशास्त्रं श्रीसम्प्रदायीय विधानमनतिक्रम्य श्रीरामानन्दाब्दे ६९० श्रीवैक्रमाब्दे २०४६ वसन्तपञ्चमी बुधवासरे समाजनेतृगणसन्निधौ संगृहीतस्त्रिदण्ड इति जानन्त्येव सर्वे। साम्प्रतिके समये नास्ति सङ्घर्षः, तस्मात् श्रीसम्प्रदायीयैर्वैष्णवैरेतेषामनुशरणमवश्यं विधेयमिति शम् ॥२७॥

इति आनन्दभाष्यसिंहासनासीनस्य जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्यस्य कृतौ श्रीवैष्णवसंन्यासमीमांसायां संन्यासदीक्षाधिकार त्रिदण्डधारणाधिकारात्मकश्च प्रकरणः परिपूर्णः

卐 श्रीरामः शरणं मम 卐

पञ्चसंस्कारपूर्वकंगृहीतदीक्षानां विरक्तश्रीवैष्णवानां विवाहादिनिषेधः

उन्नतं पदमवाप्य यो लघुः हेलयैव सपतेदिति ब्रुवन् ।
शैलशेखरगतोरजः कणः मन्दमारुतद्युतः पतत्यधः ॥१॥

यथा हि लोके सामान्या स्थितिरवलोक्यते, बाल्यावस्थानन्तरं किशा-

श्रीवैष्णवागम समर्थित काषाय वस्त्र धारणकर अतीत का खोया हुआ गौरव पुनः प्राप्त करलेना चाहिये ॥२७॥

इसप्रकार आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी की कृति श्रीवैष्णव संन्यास मीमांसा नामक ग्रन्थ में संन्यास दीक्षा अधिकार एवं त्रिदण्ड धारण अधिकारात्मक यह प्रकरण परिपूर्ण हुआ ।

卐 श्रीरामः शरणं मम 卐

विरक्त श्रीवैष्णव विवाह निषेध

पञ्चसंस्कार पूर्वक दीक्षा प्राप्त किये हुए विरक्त श्रीवैष्णव साधुओं के विवाहादि का निषेध–

यह प्रसिद्ध नीति वचन है कि जो व्यक्ति ऊँचा पदको प्राप्त करके हीन आचरण आदि से युक्त होने के कारण लघुता को धारण करता है वह अनायास ही उच्च्व पद से पतित हो जाता है । यह बात कहता हुआ पर्वत शिखर पर पहूँचा हुआ धूलका कण मन्द पवन की झोका को प्राप्त करते ही नीचे गिर जाता है ।

रोवस्था ततो युवावस्था ततः प्रौढावस्था तदनन्तरं क्रमेण बार्धक्यं समायाति। एवमेव आश्रमाणामपि स्थितिरस्ति ब्रह्मचर्यगार्हस्थ्यवानप्रस्थसंन्यासाश्रमाः क्रमेण विद्वद्भिरवलम्ब्यन्ते, क्वचिदूर्ध्वरेतसां समुत्कटे वैराग्ये जाते ब्रह्मचर्याद् गार्हस्थ्याद् वनाद् वा यदहरेव विरजेत् तदहरेव परिव्रजेदिति श्रुतिनियमात् संन्यासाश्रमे प्रवेशो भवति। एतेषामाश्रमाणां प्रतिनियमः

क्योंकि जिसप्रकार संसार में सामान्य स्थिति देखी जाती है कि बाल्यावस्था के वाद किशोरावस्था होती है तत्पश्चात् युवावस्था इसके वाद प्रौढावस्था के वाद क्रमशः वृद्धावस्था आ जाती है। उसी प्रकार आश्रमों की भी स्थिति है। ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास ये चार आश्रम हैं। ये चारों ही आश्रम क्रम पूर्वक विद्वान् लोगों के द्वारा अवलम्बित होते हैं। कहीं-कहीं ऊध्वरिता लोगों के द्वारा अत्यन्त उत्कट वैराग्य उत्पन्न होनेपर ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य अथवा वानप्रस्थ से जिस दिन वैराग्य हो गया उसी दिन परिव्रज्यावृत्ति को धारण करे इस श्रुति नियम के अनुसार ब्रह्मचर्य आदि आश्रम से भी जहाँ कहीं से संन्यासाश्रम में प्रवेश विद्वान् एवं शास्त्रों से सम्मत है। लेकिन इन आश्रमों का प्रति नियम कहीं भी लोक व्यवहार अथवा शास्त्र में नहीं देखा जाता है कि संन्यास से वानप्रस्थ में आये वानप्रस्थ से गृहस्थ एवं गृहस्थ से ब्रह्मचर्य में। अर्थात् आश्रमों से विरुद्ध प्रत्यावर्त्तन वेद एवं शास्त्र दोनों से ही निषिद्ध है। शास्त्रों के द्वारा उन्नत आश्रमों में आश्रम क्रम का उल्लंघन करके भी जाने की अनुमति दी जाती है किन्तु उन्नत आश्रमों से नीचे की ओर लौटकर आने के लिये अनुमति नहीं दी जाती है। इसतरह के बहुत अधिक संख्या में प्राचीन काल से लेकर साधु हुये हैं एवं आजकल भी हैं तथा भविष्यत्काल में भी होंगे जो उत्कट वैराग्य नहीं होने पर भी पञ्चसंस्कार पूर्वक विरक्त साधु दीक्षा को प्राप्त करके भी उन संन्यास आश्रमों में निवास करते हुये भी भोग की इच्छा की प्रबलता के कारण पुनः गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते हैं। अविवाहिता, विवाहिता, अथवा विधवा स्त्री को समाज एवं शास्त्र का अनुशासन होने पर भी सभी के विरोध के वावजूद नियम को ताक में रखकर जिस किसी प्रकार विवाह करके गृहस्थी जीवन के सुख को भोगते हुये इस संसार में पापों के समूह को उत्पन्न करते हैं इन दोषों का शमन करने के लिये विरक्त दीक्षा से पूर्व ही आचार्य एवं शिष्य दीक्षा का सम्यक् प्रकार से निर्वाह करने की योग्यता का विवेचन करके ही विरक्ताश्रम को ग्रहण करें तथा आचार्य विरक्ताश्रम

कुत्रचिदपि वेदसम्मते शास्त्रेनावलोक्यते । शास्त्रैः उन्नतेषु आश्रमेषु गमनायानुमतिः प्रदीयते किन्तु उन्नतेभ्य आश्रमेभ्योऽधः प्रत्यावर्तनाय नानु मन्यते । एवं विधा अनेके साधवः पुरा बभूवुः, सम्प्रत्यपि सन्ति भविष्यत् कालेऽपि भविष्यन्ति, ये समुत्कटवैराग्याभावेऽपि विरक्तदीक्षां पञ्चसंस्कार पुरस्सरं समुपलभ्यापि तत्राश्रमेवसन्तोऽपि भोगैषणायाः प्रावल्यात् पुनः गृहस्थाश्रमे प्रविसन्ति, अनूढां विवाहितां विधवां वा यथाकथञ्चित् सत्यपि समाजस्य शास्त्रस्य विरोधे परिणीय, गार्हस्थ्यसुखमनुभवन्तः संसारेप्रत्यवाय समवायंजनयन्ति । तदुपशमनाय, विरक्तदीक्षोपलब्धेः पूर्वमेवाचार्यः शिष्यश्च की दीक्षा प्रदान करें। इस विषय में धर्म शास्त्रों में ये इसप्रकार के आचरण करनेवाले को पतित कहे गये हैं। इसलिये इन दोषों का शास्त्र के अनुसार निरूपण किया जाता है।

विरक्त श्रीवैष्णव संन्यासी का कर्तव्य है कि एक रात्रि पर्यन्त गाँव में परिभ्रमण करे अथवा चातुर्मास्यादि किसी परिस्थिति विशेष के कारण दीर्घकाल तक भी रहे किन्तु अन्धा, जड़, बहिरा, उन्मत्त, तथा गूँगा के समान ग्राम में निवास करे। अच्छा श्रीवैष्णव संन्यासी अपनी अवस्था, अपना आचार-विचार, व्रताचरण तथा शील सदाचार आदि गाँव नाम एवं गोत्र शाखा आदि देश वंश एवं शास्त्र ज्ञान कुल खानदान आदि का लोक में प्रचार नहीं करे।

यदि श्रीवैष्णव संन्यासी प्रचार करता है तो अपने कुलशील आदि के प्रचार करने से श्रीवैष्णव संन्यासी के सञ्चित पुण्य की हानी होती है इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं। अपने अत्यन्त रहस्यपूर्ण धर्म पर अवलम्बित अज्ञात आचार-विचार वाला रहता हुआ विद्वान् संन्यासी परमज्ञानी होते हुये भी श्रीवैष्णव संन्यास धर्म को दूषित नहीं करता हुआ अपना धर्माचरण करे। इसप्रकार श्रीवैष्णव संन्यासियों के स्थिति के विषय में प्रतिपादन करते हुये स्मृतिकार अत्रि कहे हैं।

किसी अन्य विद्वान् का भी कथन है कि व्याकरण मीमांसा आदि पदवाक्य शास्त्र में तत्पर रहनेवाला पुरुष का भी मोक्ष नहीं होता है तथा जनसमुदाय के मानस को आकर्षित करनेवाला पुरुष का भी मोक्ष नहीं होता है भोजन, आच्छादन आदि कार्यकलाप में तत्पर रहनेवाला पुरुष का एवं रमणीय आकर्षक आवास-निवास में अभिरत पुरुष का मोक्ष नहीं होता है। अध्यात्म विद्या में पूर्ण समर्पित मानस वाला

दीक्षायाः सम्यङ्निर्बहणयोग्यतां विविच्य एव गृह्णीयुः दद्युश्चेति । अत्र विषये धर्मशास्त्रेषु एते एवमाचरणकारिणः पतिता समाख्याताः तस्मात् तद्दोषाणां यथाशास्त्रं निरूपणं क्रियते→

ग्रामैकरात्रं विहरेत् दीर्घमासीत वा क्वचित् ।
अन्धवज्जडवच्चापि बधिरोन्मत्तमूकवत् ॥

वयोवृत्तं व्रतं शीलं ख्यापयेन्नैव सद्यतिः ।
नामगोत्रादिचरणं देशं वंशं श्रुतं कुलम् ॥

प्रख्यापनाद् यतेर्हानिः पुण्यस्य स्यान्नसंशयः ।
गूढधर्माश्रितो विद्वान् अज्ञातचरितेस्थितः ॥

अमूढो मूढरूपेण चरेद्धर्ममदूषयन् ॥ इति अत्रिः यतीनां स्थितिविषये एवमाह।
न शब्दशास्त्राभिरतस्य मोक्षो न लोकचित्तग्रहणेरतस्य ।
न भोजनाच्छादनतत्परस्य न चैव रम्यावसथप्रियस्य ॥१॥

पुरुष यदि अहिंसक एकान्त स्थान पर निवास करने का प्रेमी सदाचारी एवं अपने व्रत में दृढ रहनेवाला आँख, कान, मुँह, जिह्वा आदि इन्द्रियों को अपने विषय से खींचकर परमात्मा में लगाने वाला महापुरुष का ही मोक्ष होता है । इसलिये श्रीवैष्णव संन्यासी को चाहिये कि अपने अभिमत मार्ग से अन्य विषय का अध्ययन नहीं करे लोक रञ्जन की कामना से व्याख्यान नहीं करे न ही मनोरंजक बातें सुने । किसी तरह पूर्व वर्णित गुणों से परिपूर्ण यदि श्रीवैष्णव संन्यासी हैं तो वह वास्तविक में श्रीवैष्णव संन्यासी हैं अन्यथा नहीं । जो पुरुष किसी भी कारण से श्रीवैष्णव संन्यास दीक्षा को प्राप्त करके अपने संन्यासाश्रमोचित धर्म में सुस्थिर नहीं रहता है उसे वहाँ का राजा चाण्डाल के नाम से उसे चिह्नित कर दे तथा अपने राज्य से उस दुराचारी व्यक्ति को निर्वासित कर दे ।

लाभ के निमित्त अथवा लोक सम्मान की कामना से श्रीवैष्णव संन्यासी पुरुष यदि व्याख्यान करते हैं अथवा धन कमाने के लिये शिष्यों का संग्रह करते हैं तो इसप्रकार के तथा अन्य प्रकार से भी निन्दित तपस्वियों का विभिन्न प्रकार का प्रपञ्च पूर्ण आचरण होता है । ध्यान शौच (पवित्राचरण) भिक्षा, और सदैव एकान्त स्थान पर निवास करने की आदत ये सभी भिक्षु के अनुरूप चार प्रकार के कर्त्तव्य हैं ।

अध्यात्मविद्यारतमानसस्य मोक्षो ध्रुवो नित्यमहिंसकस्य ।
एकान्तशीलस्य दृढव्रतस्य पञ्चेन्द्रियप्रीतिनिवर्तकस्य ॥२॥
नाध्येतव्यं न वक्तव्यं न श्रोतव्यं कथञ्चन ।
एतैः पूर्वं सुनिष्पनो यतिर्भवति नान्यथा ॥
पारिव्राज्यं गृहीत्वा तु यः स्वधर्मे न तिष्ठति ।
श्वपचेनाङ्कयित्वा तु राजा राज्यात् प्रवासयेत् ॥
लाभपूजानिमित्तं हि व्याख्यानं शिष्यसंग्रहः ।
एते चान्ये च बहवः प्रपञ्चाः कुतपस्विनाम् ॥

श्रीवैष्णव संन्यासी का कोई पाँचवाँ कर्त्तव्य नहीं है। इसप्रकार श्रीसम्प्रदाय के आचार्य प्रवर श्रीवशिष्ठ मुनि का अभिप्राय है।

इस विषय में शातातप स्मृति में भी विस्तार पूर्वक कहा गया है कि जो व्यक्ति नैष्ठिक श्रीवैष्णव संन्यास धर्म में आरूढ हो चुका है वह यदि अपने धर्म से पतित होता है तो उसका प्रायश्चित्त संसार में कहीं नहीं देखता हूँ जिससे वह स्वयं की हत्या करने वाला ब्राह्मण श्रीवैष्णव संन्यासी विशुद्ध हो सके।

जो व्यक्ति विरक्त संन्यास दीक्षा को ग्रहण करके पुनः गृहस्थ धर्म को स्वीकार करता है वह साठ हजार वर्षों तक विष्ठा में कृमि बनकर निवास करता है। और वह अपने झूठ मूठ वचन के कारण जला हुआ वह पुरुष अन्धतामिस्त्र नामक नरक में डुब जाता है तथा भयंकर शून्य भवन में भयावह चूहा बनकर निवास करता है। और वह जल्दी ही गर्भ में निवासकर बारह जन्मों तक कुत्ता बनता है तथा बीस वर्षों तक भास पक्षी बनकर रहता है। नौ वर्षों तक शूकर रहता है तथा इसके वाद विना फूल फलवाला काँटों के समूह से ढका हुआ वृक्ष में जन्म लेता है। वृक्ष जाति में जन्म लेकर भी वह दावाग्नि से जलकर जंगल में स्थाणु (अधकटा वृक्ष) बन जाता है। तत्पश्चात् एक सौ बारह वर्ष पर्यन्त अचेतन स्थिति में रहता है और इसके पश्चात् १००० वर्ष पर्यन्त ब्रह्म राक्षस होता है।

भूख तथा प्यास से व्याकुल होकर खून पानेवाला राक्षस योनि को क्रमशः प्राप्त करता है एवं पूर्ण रूपसे अपने वंश का संहार करने के पश्चात् इस योनि से मोक्ष को प्राप्त करता है। जो श्रीवैष्णव संन्यास धर्म को गिरानेवाला हो तथा श्रीवैष्णव

ध्यानं शौचं तथा भिक्षानित्यमेकान्तशीलता ।
भिक्षोश्चत्वारिकर्मणि पञ्चमं नोपपद्यते ॥

इति श्रीसम्प्रदायाचार्यप्रवरस्य वशिष्ठस्याभिमतम् ॥

अस्मिन् विषये शातातपस्मृतौ विस्तरेणाह →

आरूढो नैष्ठिकं धर्मं यस्तु प्रच्यवते द्विजः ।
प्रायश्चित्तं न पश्यामि येन शुध्येत् स आत्महा ॥

पारिव्राज्यं गृहात्वा तु यो गृहस्थोभवेन्नरः ।
षष्ठिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥

मिथ्यावचनदग्धोऽसौ सोन्धेतमसिमज्जति ।
शून्यागारेषु घोरेषु भवत्यारवु सुदारुणः ॥

सोऽचिराज्जायते गर्भे श्वा स्याद् द्वादश जन्मसु ।
भासो विंशतिवर्षाणि नव वर्षाणि शूकरः ॥

संन्यास में पतित व्यक्ति को दीक्षित करनेवाला हो एवं श्रीवैष्णव संन्यास दीक्षा प्राप्त करने में विघ्न पैदा करनेवाला हो ये तीनों ही प्रकार के व्यक्ति पतित कहे गये हैं। विन्दुला नामके संन्यास के स्वरूप में निवास करनेवाले चाण्डालों का गण है उनके वंशों में वे पतित श्रीवैष्णव संन्यासी सन्तान बनकर उन चाण्डालों के साथ निवास करे।

इस विषय में हारीत स्मृति में भी कहा गया है जो शास्त्रीय नियमानुसार बुद्धि पूर्वक श्रीवैष्णव संन्यास ग्रहण करने के पश्चात् पुनः गृहस्थाश्रमी हो जाता है वही वेद शास्त्र के सभी धर्मों से बहिष्कृत आरूढ पतित कहा जाता है। आरूढ पतित शब्द का शाब्दिक अर्थ है कि उच्चतम आश्रम में प्रवेश करके पुनः निम्नतम आश्रम में प्रवेश करना। आरूढ पतित व्यक्ति अपने दश पूर्वजों एवं दश परवर्ती पुरुषों को नष्ट-भ्रष्ट करदेता है उन्हीं बीस पुरुषों का वह श्रीवैष्णव ब्राह्मण उद्धार करेगा यदि अपनी समता धर्म में व्यवस्थित है। इसलिये सभी तरह के प्रयत्नों के द्वारा श्रीवैष्णव संन्यासी त्रिदण्ड को धारण करे। श्रीवैष्णव संन्यास धर्म का विधिवत् पालन करने के कारण वह व्यक्ति इस संसार में पुनः जन्म ग्रहण नहीं करता है। संसार के सभी आश्रमों में तो त्रिदण्डधारी श्रीवैष्णव संन्यासी सर्वोत्तम आश्रमी है। वही व्यक्ति सन्मार्ग का अवलम्बन करनेवाले पुरुषों के द्वारा प्रणाम करने योग्य होगा।

अपुष्पो विफलोवृक्षो जायते कण्टकावृतः ।
ततो दावाग्निना दग्धः स्थाणुर्भवति कानने ॥
ततो वर्षशतान्यष्टौ द्वे च तिष्ठत्यचेतनः ।
पूर्णवर्षसहस्त्रे तु जायते ब्रह्मराक्षसः ॥
क्षुत्पिवासा परिश्रान्तः क्रव्यादोरुधिराशनः ।
क्रमेण लभते मोक्षं कुलस्योत्सादनेन च ॥
न्यासं सम्पातयेद् यस्तु पतितः सन्यसेच्चयः ।
सन्यासविघ्नकर्ता च त्रयस्ते पतिताः स्मृताः ॥
विन्दुला नाम चाण्डाला परिव्राजकरूपिणः ।
तेषां जातान्यपत्यानि चाण्डालैः सहवासयेत् ॥
विषयेऽस्मिन् हारीतस्मृतावप्युक्तम्→
विधिना बुद्धिपूर्वेण यः संन्यस्य गृहीभवेत् ।
स एवारूढपतितः सर्वधर्मवहिष्कृतः ॥

त्रिदण्ड स्वरूप को धारण करनेवाला श्रीवैष्णव ब्राह्मण साक्षात् नारायण स्वरूप वाला ही है । जो व्यक्ति उस त्रिदण्डधारी व्यक्ति की पूजा करता है उसने साक्षात् भगवान् की भक्ति पूर्वक पूजा किया ऐसा माना गया है । ब्रह्मतारक षडक्षर श्रीराममहामन्त्र के द्वारा सदैव नारायण स्वरूप से विष्णु की भावना से विष्णु स्वरूपधारी वह त्रिदण्डी श्रीवैष्णव संन्यासी प्रणाम करने योग्य है । पराशरजी भी कहे हैं वे दोनों ही पुरुष निश्चित रूपसे सूर्य मण्डल का भेदनकर मुक्तिधाम में पहुँचते हैं जो योग युक्त श्रीवैष्णव संन्यासी हैं तथा सामने-सामने युद्ध करता हुआ युद्धभूमि में मारा गया है । श्रीवैष्णव संन्यास दीक्षा को ग्रहण किये हुये द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) को देखकर भगवान् दिवाकर अपने स्थान से विचलित हो जाते हैं कि यह पुरुष मेरा मण्डल का भेदनकर परब्रह्म को प्राप्त करेगा ।

कात्यायन स्मृतिकार भी कहते हैं कि काम क्रोध आदि दोषों को श्रीवैष्णव संन्यासाश्रमी पुरुष यावज्जीवन परित्याग करे । इसप्रकार व्यवहार करता हुआ वह श्रीवैष्णव संन्यासी पुरुष सदैव ब्रह्म को प्राप्त करता है । शुक्रस्मृति में भी कहा गया है कि आसक्ति से रहित पुरुष क्रोध पर विजय प्राप्त करनेवाला, हल्का भोजन

आरूढपतितो हन्याद् दशपूर्वान् दशापरान् ।
तान्नेव तारयेद्विप्रो यदि साम्ये व्यवस्थितः ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन त्रिदण्डं धारयेद् यतिः ।
नेह भूयः स जायते यतिधर्मस्य पालनात् ।
सर्वेषां ह्याश्रमाणां तु त्रिदण्डी ह्युत्तमाश्रमी ॥
स एवैभिर्नमस्यः स्यात् भक्त्या सन्मार्गवर्तिभिः ।
त्रिदण्डरूपधृग् विप्रः साक्षान्नारायणात्मकः ।
यस्तं पूजयते भक्त्या विष्णुस्तेन प्रपूजितः ॥

करनेवाला, इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करनेवाला पुरुष अपने बुद्धि के दरवाजों को बन्दकर मन को परमात्मा के ध्यान में लगावे। और दत्तात्रेय स्मृतिकार भी कहते है कि संन्यासोचित चिह्न बाँस के दण्ड को धारण करके जो अविवेक पूर्ण बुद्धिवाला पुरुष उस त्रिदण्ड का परित्याग करता है वह घोर नरक में जाता है जो अतिशय तीव्र संकटों के कारण अत्यन्त भयंकर है। स्मृतिकार देवल भी कहते हैं कि जिस पुरुष के लिये शत्रु और मित्र दोनों ही समान हैं तथा किसी प्रकार का परिग्रह नहीं है ब्रह्मचारी है एवं मङ्गल जनक व्यवहार में प्राणियों को शिक्षा देता है रत्न, धन, धान्य, कामादि, विषयों का उपभोग आदि के सम्पर्कों में नहीं रहता है तथा अहंकार, माया, मोह, हर्ष, विरोध, विस्मय, विवाद, उद्वेग तथा तर्जना आदि को छोडकर अपने श्रीवैष्णव संन्यास धर्म में सुस्थिर रहे यही यतिधर्म है। और यह विषय श्रीवशिष्ठ संहिता में ब्राह्मण धर्म निरूपण में विस्तार पूर्वक कहा गया है कि षडक्षर ब्रह्मतारक श्रीराममन्त्र और तपस्या के द्वारा भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के उपासना में तत्पर काषाय वस्त्र को धारण करनेवाले त्रिदण्ड सहित श्रीवैष्णव संन्यासाश्रमी काष्ठ विर्मित कमण्डलु आदि पात्रों से सुशोभित श्रीसीतारामजी का स्मरण करनेवाले तथा पुण्यजनक तीर्थों में विचरण करनेवाले दम्भ और पाखण्ड आदि से विमुक्त श्रीवैष्णव संन्यासी लोग होते हैं।

किन्तु यदि कोई विधिवत् श्रीवैष्णव संन्यास दीक्षा को ग्रहण करने के पश्चात् पुनः गृहस्थ धर्म में प्रवेश करलेते हैं तो उनका आरूढ पतन हो जाता है। इस संसार में आरूढ पतन का किसी भी प्रकार का प्रायश्चित्त तथा उद्धार का उपाय सम्भव नहीं है। इस संसार में जो अपने अधिकार से भ्रष्ट हो गया है लोक निन्दित है एवं आदर सम्मान से रहित है इस स्थिति में संसार में जीवित रहता है और मरजाने के पश्चात्

षडक्षरेण मन्त्रेण नित्यं नारायणात्मना ।
नमस्यो विष्णुभावेन विष्णुरूपीत्रिदण्डधृक् ॥

पाराशरश्चाह-

द्वाविमौ पुरुषावेतौ भित्वा वै सूर्यमण्डलम् ।
परिव्राड्योगयुक्तश्च रणेचाभिमुखोहतः ॥
संन्यस्तं हि द्विजं दृष्ट्वा स्थानाच्चलति भास्करः ।
एष मे मण्डलं भित्वा परंब्रह्माधिगच्छति ॥

कात्यायनश्चाह-

कामक्रोधादिकान् दोषान्वर्जयेद् यावदायुषम् ।
एवं संवर्तयन् नित्यं ब्रह्मसम्पद्यते यतिः ॥

उशनाचाह-

मुक्तसङ्गो जितक्रोधो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ।
पिधाय बुद्धिद्वाराणि मनोध्याने निवेशयेत् ।

दत्तात्रेयश्चाह-

आदाय वैष्णवं लिङ्गं यस्तु त्यजति मूढधीः ।
स याति नरकं घोरं तीव्रसङ्कटदारुणम् ॥

आरूढ पतित श्रीवैष्णव संन्यासी महान् घोर नरक में जाता है ।

गृहस्थाश्रम से अतिरिक्त तीनों ही आश्रमों में ब्रह्मचर्य व्रत का सदैव परिपालन करना चाहिये । ब्रह्मचर्य व्रत परिपालन के अभाव में उस श्रीवैष्णव संन्यासी का संन्यासाश्रम के परम उन्नत स्थान से आरूढ पतन हो जाता है । और आरूढ पतित व्यक्ति समस्त आश्रम धर्मों से बहिष्कृत हो जाता है उसको किसी भी आश्रम धर्म के पालन का अधिकार नहीं है एवं धर्मात्मा पुरुषों के द्वारा तथा राजाओं के द्वारा इसप्रकार के आरूढ पतित व्यक्तियों को अपने अधिकार से बहिष्कृत करदिया जाना चाहिये ।

श्रीसम्प्रदायाचार्य श्रीआनन्दभाष्यकारजी ने इन उपरोक्त विषयों को अपने श्रीवैष्णव मताब्जभास्कर ग्रन्थ में निम्नरूप से व्यक्त किया है→मनु आदि समस्त स्मृति शास्त्रों में निषेध किया गया है, अतः कभी एवं किसी भी अवस्था में श्रीवैष्णवीय विरक्त दीक्षा से दिक्षीत श्रीवैष्णव संन्यासी स्त्री का ग्रहण न करें अर्थात् विवाह न

देवलश्चाह-तुल्यारिमित्रो निष्परिग्रहो ब्रह्मचारी माङ्गल्यव्यवहारे जीवशिक्षा रत्नधनधान्यविषयोपभोगसम्पर्केषु दर्पमायामोहहर्षविरोधविस्मय विवादत्रासतर्जनादिवर्जनमिति धतिधर्मः ।

उत्कञ्चाश्रमधर्मनिरूपणे श्रीवशिष्ठसंहितायाम् →

रामममन्त्रतपोभ्याञ्च रामाराधनतत्पराः ।
सहदण्डत्रयेणान्त्या काषायम्बरधारकाः ॥
सीतारामौ स्मरन्तश्च काष्ठादिपात्रशालिनः ।
भ्रमतः पुण्यतीर्थेषु सर्वथा दम्भवर्जिताः ॥
संन्यासिनो गृहस्थत्वे त्वारूढपतनं भवेत् ।
आरूढपतनस्यात्र प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥
इह भ्रष्टाधिकारो हि गर्हितो मानवर्जितः ।
मृतो हि नरकं गच्छत्यारूढपतितो यतिः ॥
ब्रह्मचर्य व्रतं रक्ष्यं गृहस्थान्याश्रमत्रये ।
तदभावे हि तत् स्थानान्नारूढपतनं भवेत् ॥
भ्रष्टाश्चाश्रमधर्मेभ्य आरूढपतिताश्च ये ।
स्वाधिकाराद् बहिष्कार्या नृपैश्च धार्मिकैश्च तैः ॥

तथा चाहुः श्रीआनन्दभाष्यकारचरणाः-

न स्त्रियं परिगृह्णीयाद् विरक्तो वैष्णवः क्वचित् ।
मन्वादिस्मृतिशास्त्रेषु तन्निषेधस्य शासनात् ॥

करे। यदि वह विवाह करलेता है तो आरूढ पतित कहलाता है। आरूढ पतितों के लिये धर्म शास्त्रों में प्रायश्चित्त का विधान नहीं है। ऐसे नैष्ठीक श्रीवैष्णव संन्यास धर्म में दिक्षित होकर पतित हो जाय उसे आत्म घाती कहा गया है। ऐसों को मठ के अध्यक्ष अर्थात् आचार्यत्व एवं अन्यों को दीक्षा देने सम्बन्धि कार्यों से प्रयत्न पूर्वक बहिष्कार करदेना चाहिये। ऐसे आरूढ पतितों को ब्रह्मविद्या से भी श्रीसम्प्रदाय के ७वें आचार्य श्रीव्यासजी ने बहिष्कार का आदेश दिया है। अतः शिष्टजन आरूढ पतितों को यज्ञादि शुभ कार्यों में यजन याजन आदि के लिये नहीं लेते हैं। इसलिये विरक्त श्रीवैष्णव को आरूढ पतित व्यक्ति को श्रीवैष्णवाराधन सम्बन्धि सत्कर्म में

विवाहे तु कृते स स्यादारूढपतितो ध्रुवम् ।
आरूढपतितस्यार्थे प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥
प्रच्युतो नैष्ठिकाद् धर्मादात्महापि प्रकीर्तितः ।
मठाध्यक्षत्वदीक्षादौ वहिष्कार्यः स यत्नतः ॥
व्यासेन ब्रह्मविद्यातो वहिष्कारोऽस्य सूचितः ।
शिष्टा यज्ञादिकार्य्येषु वर्जयन्ति तथा विधम् ॥

उपयोग नहीं करना चाहिये। क्योंकि ऐसे आरूढ पतितों का सन्सर्ग भी पाप कारक होता है।

इसीप्रकार अग्निपुराण में-मैं ऐसे आत्मघाती अर्थात् आरूढ पतित के लिये प्रायश्चित्त नहीं देखता हूँ जिससे की प्रायश्चित्त से वह शुद्ध हो। इसीप्रकार श्रीवैष्णवधर्म पीयूष में आचार्य श्री ने कहा है-परदाराभीगमन नहीं करना चाहिये, श्रीवैष्णव संन्यासी को। क्योंकि यह परधर्म होने से भय जनक है। विरक्त श्रीवैष्णव संन्यास ग्रहण करने के वाद कभी भी शादिकर गृहस्थ धर्म को स्वीकारना नहीं चाहिये। क्योंकि ऐसे आरूढ पतित रूप महापाप का शास्त्रों में प्रायश्चित्त का विधान नहीं है।

इसप्रकार इन आरूढपतित व्यक्तियों के लिये शाश्त्रों के समूह में जो भी वचन कहे गये हैं उनका सारगर्भित अर्थ यह है कि क्षणिक वैराग्य उत्पन्न होने पर किसी भी व्यक्ति को कभी भी विरक्त दीक्षा नहीं लेनी चाहिये। अपना स्वरूप, सामर्थ्य, परिस्थिति, और वैराग्य इन सभी बातों को अच्छी तरह से विचार करके तत्पश्चात् विरक्त दीक्षा प्राप्त करने के लिये अच्छे गुणों से परिपूर्ण शास्त्रीय विधानानुसार परम्परागत दीक्षा-शिक्षा प्राप्त सदाचार परायण कुलीन श्रीवैष्णव ब्राह्मण आचार्य का अन्वेषण करे। आचार्य भी पहले शिष्य की परीक्षा करके मुमुक्षु को विरक्त साधु पुरुषों की सेवा में नियुक्त करे। शिष्य की दोष शून्यता का परीक्षण करलेने के पश्चात् सवसे पहले सामान्य दीक्षा के द्वारा शिष्य को अनुगृहीत किया जाना चाहिये। षडक्षर ब्रह्मतारक श्रीराममहामन्त्र का जप करने में अधिक से अधिक समय बिताया जाना चाहिये यह निर्देश देकर शिष्य के मनोभाव तथा योग्यता को समय-समय पर अच्छी तरह देखें। कथावार्त्ता आदि कालक्षेप के समय में समय-समय पर श्रवण और मनन के लिये निर्देश देवे। तत्पश्चात् शिष्य के स्वरूप योग्यता समय-समय पर रहस्य रूपमें परीक्षित करे। इसके वाद शिष्य का मनोभाव निर्दुष्ट परीक्षित हो जाने पर और उसके

विरक्तैः वैष्णवैस्तस्मादारूढपतितो न हि ।
व्यवहारेषु योक्तव्यः तत्संसर्गोऽपि पापकृत् ॥

तथा चाग्निपुराणे-
प्रायश्चितं न पश्यामि येन शुद्ध्येत् स आत्महा" तथैव श्रीवैष्णव धर्मपीयूषे-
परदारा न गन्तव्याः परधर्मो भयावहः ।
कदाचिदपि नो कुर्याद् विरक्तो हि गृहस्थताम् ।
यतस्तस्याश्च शास्त्रेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥

इत्थमेतेषां शास्त्रविषयेषु यानि वचनानि सन्ति तेषामयं निर्गलितार्थो यत्-क्षणिकवैराग्ये समुत्पन्ने विरक्तदीक्षा कदापि न गृहीतव्या । स्वात्मस्वरूपं सामर्थ्यं परिस्थितिं वैराग्यं च सम्यग् विचार्य ततो विरक्तदीक्षा ग्रहणाय सदाचार्यस्यान्वेषणं कुर्यात् । आचार्योऽपि प्रथमं शिष्यंपरीक्ष्य विरक्तसाधुजन सेवायां नियोजयेत् । दोषराहित्ये परीक्षिते, प्रथमं सामान्यया दीक्षया शिष्योऽनुग्राह्यः । षडक्षरब्रह्मतारकस्य मन्त्रस्य च जपे अधिकाधिकः कालो-यापयितव्य इति निर्दिश्य शिष्यस्य मनोभावं योग्यतां च सम्यगवलोकयेत् । कालक्षेपसमये तं समये समये श्रवणाय मननाय च निर्दिशेत् । ततस्तस्य स्वरूपयोग्यता काले काले रहस्यरूपेण परीक्षेत् । तदनन्तरं निर्दुष्टे सिद्धे परीक्षिते च परमवैराग्ये, तस्य हठाधिकं विलोक्य पुनः परीक्षेत् । कामक्रोधलोभमोहादिषु अन्तःशत्रुषु विनष्टेषु विरक्तदीक्षया सम्यगनु गृह्णीयात् । अन्यथा देवधनस्य सम्प्रदायगतदोषस्य च सम्भवे आचार्योऽपि कथञ्चिद् दोषभाजनतां न गच्छेदिति सम्यग् विचार्य एवं विरक्त श्रीवैष्ण-

परम वैराग्य को जानलेने पर शिष्य के अधिक आग्रह को देखकर पुनः परीक्षण करे। काम क्रोध, लोभ, मोह आदि अन्तः शत्रुओं को विनष्ट हो जाने पर विरक्त दीक्षा द्वारा सम्यक् प्रकार से शिष्य को अनुगृहीत करे । ऐसा नहीं करने पर दैवी सम्पत्ति का और सम्प्रदाय में होनेवाला दोष का प्रादुर्भाव होने पर उपदेश देनेवाला आचार्य भी किसी तरह दोष पात्रता को नहीं प्राप्त करे इसलिये सम्यक् प्रकार से विचार करके शास्त्र सम्मत विरक्त श्रीवैष्णव दीक्षा का एवं श्रीवैष्णवीय संन्यास दीक्षा का प्रदान

वदीक्षायाः संन्यासस्य च प्रदानमुचितम् ॥२८॥

इति आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यस्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्यस्य कृतौ श्रीवैष्णवसंन्याससमीमांसायां पञ्चसंस्कारपूर्वकं गृहीत दीक्षानां विरक्तश्रीवैष्णवानां विवाहादिनिषेधाभिधानं प्रकरणं सम्पन्नमिति शम् ।

☬ त्रिदण्डतत्त्वविवेकः ☬

श्रीवैष्णवानां संन्यासदीक्षायाः संस्कारविधिनिरूपणप्रस्तावे मैत्रायणी श्रुतिनिर्दिष्ट यत्-"इन्द्रस्य वज्रोऽसीति" त्रीन् वैणवान् दण्डान् दक्षिणे पाणौ

करना समुचित है ॥२८॥

इसप्रकार पश्चिमाम्नाय जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यपीठाधीश श्रीरामानन्दवेदान्त पीठाधीश जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी की कृति श्रीवैष्णव संन्याससमीमांसा में विरक्त श्रीवैष्णवों का विवाहादि निषेध नामक प्रकरण परिपूर्ण हुआ ।

卐 श्रीरामः शरणं मम 卐

☬ त्रिदण्ड तत्त्व का विवेचन ☬

श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णवों का संन्यास दीक्षा संस्कार की विधि का प्रतिपादन प्रकरण में मैत्रायणी श्रुति का निर्देश है कि "इन्द्रस्य वज्रोऽसि" इत्यादि मन्त्र के द्वारा बाँस की काष्ठ से बना हुआ तीन दण्डों को मोक्षाभिलाषी श्रीवैष्णव संन्यासी दाहिना हाथ में धारण करे। यहां पर इस विषय में विचार किया जाता है कि त्रिदण्ड धारण श्रीवैष्णव संन्यासियों के लिये कोई चिह्न विशेष हैं अथवा असाधारण धर्म है या त्रिदण्ड का तीनों दण्ड किसी रहस्य बना हुआ तत्व विशेष का प्रकाशन करते हैं। इस तरह के साधुओं में विभिन्न विचिकित्सा का अभ्युदय की सम्भावना करके त्रिदण्ड तत्व का विवेचन प्रारम्भ करते हैं। ऐसा विश्लेषण शुरु किये जाने पर वृद्धदक्ष स्मृति में देखा जाता है कि कायिक, वाचिक तथा मानसिक दण्ड स्वरूप तीनों दण्ड हैं, जैसा कि स्मृतिकार कहते हैं-वाग्दण्ड और मनोदण्ड तथा कर्म दण्ड ये तीन होते हैं। इन तीनों दण्डों को तात्विक रूपसे धारण करनेवाला संन्यासी वस्तुतः संन्यासी है। केवल बाँस का बना हुआ दण्ड धारण करने से संन्यासी "संन्यासी" नहीं होता। मौन व्रत का संयोग वाग्दण्ड कहा जाता है। अर्थात् यदि मौन धारण करेंगे तो अपने से किसी को कष्ट पहुँचने का अवसर नहीं होगा। जो पहले कायिक दण्ड कहे हैं

धारयेत् । अत्र विचार्यते यत् त्रिदण्डधारणं श्रीवैष्णवयतीनां चिह्नविशेषः लक्षणम् आहोस्वित् त्रयोदण्डाः, रहस्यभूतं तत्त्वविशेषं द्योतयन्तीति विवेचने प्रारब्धे कायिक वाचिक मानसिकाः त्रयोदण्डाः इति वृद्धदक्षस्मृतौ अवलोक्यते । तदाह वृद्धदक्षः-

वाग्दण्डोऽथ मनोदण्डः कर्मदण्डस्तथापरः ।
एतैर्दण्डैस्तु दण्डीस्यान्नतु वैणवधारणात् ॥
वाग्दण्डो मौनसंयोगः कर्मदण्डस्त्वहिंसनम् ।
मानसः स तु दण्डः स्यात्प्राणायामस्य धारणम् ॥

वही कर्मदण्ड दूसरा दण्ड हैं । अर्थात् इस शरीर के द्वारा किसी भी तरह किसी भी प्राणि की प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष हिंसा नहीं करना कर्मदण्ड कहा जाता है । यथा समय यथा सामर्थ्य ब्रह्म साक्षात्कार हेतु प्राणायाम करते रहना मानसिक दण्ड हैं । इस प्राणायाम रूपी मानस दण्ड को धारण करने से समग्र जगत् श्रीवैष्णव संन्यासी पुरुष को प्रभु के स्वरूप में दृष्टिगोचर होगा तो किसी से विरोध की सम्भावना ही नहीं होगी । अथवा उसी प्रकरण में कहा है कि स्वयं में गार्हपत्याग्नि आहवनीयाग्नि तथा दक्षिणाग्नि आरोपितकर श्रीवैष्णव संन्यास दीक्षा ग्रहण करें । इस स्मृतिकार के द्वारा कहा गया सिद्धान्त को प्रकाशित करता हुआ श्रीवैष्णव संन्यासी गार्हपत्याग्नि दक्षिणाग्नि तथा आहवनीयाग्नि भेद से अग्नित्रय स्वरूप त्रिदण्ड है, इस बात को त्रिदण्ड अभिव्यक्त करता है । अथवा ब्रह्मा, विष्णु, महेश स्वरूप बाँस का बना हुआ त्रिदण्ड श्रीवैष्णव संन्यासियों के द्वारा धारण किया जाता है । इस अभिप्राय को पूर्व में त्रिदण्ड संस्कार प्रसंग में विवेचन किया है । वह जैसे कि त्रिदण्ड के अग्र भाग को ब्रह्मा के स्वरूप में सम्यक् प्रकार से स्मरण करें । द्वितीय भाग को पुरुषात्मा के स्वरूप में । तृतीय भाग को विश्वात्मा के स्वरूप में । चतुर्थ भाग को निवृत्ति पुरुष के रूप में एवं पञ्चम भाग को सर्वात्मा के स्वरूप में श्रीवैष्णव संन्यासी विशेष रूपसे चिन्तन करें । सम्पूर्ण त्रिदण्ड को विष्णु के स्वरूप में संन्यासी संस्मरण करें। तथा त्रिदण्ड नामक विष्णु रूप को हर परिस्थिति में श्रीवैष्णव संन्यासी धारण करें। ऐसा हारीत स्मृतिकार कहते हैं ।

अथवा ज्ञानदण्ड, आत्मदण्ड और मनोदण्ड ये तीनों दण्ड कहे जाते हैं । इस विषय में शौनक स्मृतिकार विशेष रूपमें कहते हैं कि ज्ञानदण्ड छोटा होता है । एवं

अथवा आत्मन्यग्नीन् समारोप्य संन्यसेत् इति स्मृतिकृदुक्तं सिद्धान्तं प्रकाशयन् यतिः गार्हपत्याग्नि दक्षिणाग्नि आहवनीयाग्नि भेदेन अग्नित्रय स्वरूपं त्रिदण्डं सूचयति ।

अथवा ब्रह्मविष्णुशिवस्वरूपं वैणवं त्रिदण्डं यतिभिर्धार्यते । तदुक्तम् त्रिदण्डसंस्कारप्रकरणे-

त्रिदण्डस्याग्रभागन्तु संस्मरेत्परमेष्ठिनं ।
द्वितीयं पुरुषात्मानं विश्वात्मानं तु मध्यमम् ॥

आत्मदण्ड आकार में मध्यम मान का होता है । तथा विष्णु दण्ड अर्थात् मनोदण्ड आकार में लम्बा होता है ऐसे त्रिदण्डों को श्रीवैष्णव संन्यासी धारण करें ।

लेकिन श्रीसम्प्रदाय में गुरु ज्ञान परम्परा से यह जाना जाता है कि ब्रह्मसूत्र, गीता और उपनिषद् इन प्रस्थानत्रय को आधार बनाकर त्रिदण्ड है । इस वस्तु को प्रकाशित करने के लिये ब्रह्मसूत्र गीता एवं उपनिषद् त्रिदण्ड से परिलक्षित होते हैं अथवा ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद और पृथिवी, आकाश, पाताल इन तीनों लोकों को त्रिदण्ड लक्षित करता है । और इसीप्रकार लोकैषणा वित्तैषणा तथा पुत्रैषणा इन तीनों एषणाओं को मुझसे परित्याग करदिया गया है यह आशय प्रकाशित करने के लिये श्रीवैष्णव संन्यासी के द्वारा त्रिदण्ड धारण किया जाता है अथवा श्रीवैष्णव संन्यासी के द्वारा ब्रह्म जीव एवं माया स्वरूप तीनों तत्त्व भूत; भविष्यद् एवं वर्तमान काल इन तीनों में सत्यता तथा अध्यासवाद, प्रतिबिम्बवाद तथा मायावाद का निरसन स्वरूप, शेष-शेषी भावात्मक त्रिदण्ड धारण किया जाता है यह ज्ञात होता है । इसप्रकार पूर्व में प्रतिपादित किये गये तत्वो को त्रिदण्ड के द्वारा प्रकाशित किया जाता है यह श्रीसम्प्रदाय-श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के परम्परा से प्राप्त त्रिदण्ड तत्त्व ज्ञान है । इसी अभिप्राय को हमारे अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामप्रपन्नाचार्यजी शिक्षा दीक्षा गुरु श्रीमान् योगिराजजी के द्वारा कहा गया है कि श्रीवैष्णव संन्यासी मन वचन एवं कायिक दण्ड स्वरूप त्रिदण्ड की भावना करे । सत्व रज और तमो गुण से उद्रेक अवस्था को प्राप्त सत्वस्वरूप गुणातीत त्रिदण्ड की भावना करे । चित्-अचित् एवं ब्रह्म रूप तीन तत्वों के स्वरूप में श्रीवैष्णव संन्यासी त्रिदण्ड की भावना करें । माया, अध्यास एवं प्रतिबिम्बवाद इन तीनों वाद का निराकरण स्वरूप त्रिदण्ड की श्रीवैष्णव संन्यासी भावना करें । एवं ब्रह्म, विष्णु, शिव

तुर्यं निवृत्तिपुरुषं सर्वात्मानन्तु पञ्चमम् ।
त्रिदण्डं समुदायेन विष्णुरूपं स्मरेद्यतिः ॥

हारीतश्चाह-

विष्णुरूपं त्रिदण्डाख्यं सर्वथा धारयेद्यतिः । अथवा ज्ञानदण्डः आत्मदण्डः मनोदण्डश्चेति दण्डत्रयमुच्यते । अत्र विषये शौनकः प्राह-

ज्ञानदण्डो भवेद्ध्रस्व आत्मदण्डस्तु मध्यमः ।
विष्णुदण्डस्तु दीर्घःस्याद्त्रिदण्डं धारयेद् यतिः ॥

श्रीसम्प्रदाय परम्परया तु इदं ज्ञायते यत् प्रस्थानत्रयमाधृत्य धृतोऽयं दण्डः इति द्योतनाय ब्रह्मसूत्रं गीता उपनिषदश्च दण्डत्रयेण लक्ष्यन्ते । अथवा ऋक्सामयजूंषि लोकत्रयञ्च त्रिदण्डं लक्षयति । तथा च लोकैषणां वित्तैषणां पुत्रैषणाञ्च मया श्रीवैष्णव संन्यासिना परित्यक्तमिति त्रिदण्डं धार्यते । अथवा तत्त्व स्वरूप त्रिदण्ड की संन्यासीं भावना करें । तथा तीनों प्रकार की अग्नि तीनों लोक तीनों वेद गायत्री सावित्री आदि तीनों देवियाँ तथा प्रस्थानत्रय के तीनों तत्व स्वरूप में त्रिदण्ड को श्रीवैष्णव संन्यासीगण चिन्तन करें । उनका इस अंश में विशेष आग्रह रहता था कि प्राणायाम ध्यान एवं जप यथा शक्ति निरन्तर पुनः-पुनः करते रहने पर विरक्त श्रीवैष्णव पुरुषों का पाप समुदाय अहर्निश जलता रहता है । जिस प्रकार लकडी के ढेर में आग का संयोग हो जाने पर काष्ठ निरन्तर जलता रहता है । उसी प्रकार प्राणायाम जप एवं ध्यान के द्वारा समस्त पाप जलते हैं । इस विषय में विरक्त श्रीवैष्णव संन्यासी किसी भी प्रकार कभी भी प्रमाद नहीं करें । सदैव सर्वेश्वर श्रीरामजी ब्रह्म के चिन्तन में रहें । इसप्रकार त्रिदण्ड की भावना सदैव करें । आत्मज्ञानानुरागी सम्यक् प्रकार से शास्त्रीय विधान परिपालक एवं पाखण्ड से रहित होकर श्रीवैष्णव संन्यासी संसार में विचरण करे यह त्रिदण्ड उनको समझाता है । दुर्जनों के मुख से निकले हुए अपने सामने आये हुए वाणिरूपी वाणों को आनन्द पूर्वक झेलता हुआ बुद्धि तथा भावना से पूर्ण प्रसन्न रहता हुआ श्रीवैष्णव संन्यासी कभी क्रोध नहीं करता है । इसप्रकार का तितिक्षाशील अभीष्ट एवं अनिष्ट प्राणियों पर विपत्ति एवं अभ्युदय आदि सभी अवस्थाओं में पूर्ण शान्त ज्ञान बल एवं ऐश्वर्य से संसार के साथ कठोरता रहित मृदुव्यवहारशील श्रीवैष्णव संन्यासी हो इस बात को

श्रीवैष्णवसंन्यासिभिः चिदचिदीस्वरात्मकं भूतभविष्यद्वर्त्तमानेति त्रिकाल सत्यम् मायावाद अध्यासवाद प्रतिबिम्बवाद निरासात्मकं शेषशेषिभावात्मकं त्रिदण्डं धार्यते इति ज्ञायते । एवं पूर्वनिरूपितानि तत्त्वानि त्रिभिः दण्डैः प्रकाश्यन्ते इति श्रीसम्प्रदायपरम्परा प्राप्तं सम्प्रदायादागतं त्रिदण्डतत्त्वं विद्यते । तदुक्तमस्मद्गुरुणानन्तविभूतिविभूषितेन श्रीमता योगिराजेन →

मनोवाक्कायदण्डाख्यं त्रिदण्डं भावयेद् यतिः ।
सत्वोद्रेकं गुणातीतं त्रिदण्डं भावयेद् यतिः ।
एषणात्रयशून्याख्यं त्रिदण्डं भावयेद् यतिः ।
चिदचिज्जीवतत्त्वाख्यं त्रिदण्डं भावयेद् यतिः ।
वादत्रयनिरासाख्यं त्रिदण्डं भावयेद् यतिः ।
ब्रह्मविष्णुशिवं तत्त्वं त्रिदण्डं भावयेद् यतिः ।
अग्नित्रयं तथा लोकान् वेदान्तेभ्यस्तथैव च ।
प्रस्थानत्रयतत्त्वाख्यं त्रिदण्डं भावयेद् यतिः ॥
प्राणायामैश्च ध्यानैश्च जपैश्च सततं कृतैः
दह्यन्ते सर्वपापानि पावकेनेन्धनं यथा ।
कदाचिदपि संन्यासी न प्रमाद्यत कर्हिचित् ।
ब्रह्मध्यानपरो योगी त्रिदण्डं भावयेत् सदा ॥

आत्मरतिः, संविधानशीलः दम्भवर्जितश्च यतिस्यादिति त्रिदण्डं यतीन् बोधयति । दुर्जनमुक्तान् वाग्वाणान् समापतितान् सानन्दं सहमानः बुद्ध्या भावनया च संहृष्टो यतिः कदाचिदपि न कुप्यति, एवं विधः तितिक्षाशीलो, इष्टानिष्टेषु भूतेषु व्यसनाभ्युदयादिसर्वास्ववस्थासु उपशान्तः, ज्ञानबलैश्वर्यै लोकपारुष्य विरहितो यतिस्यादिति त्रिदण्डमुपशिक्षयति ।

त्रिदण्ड अपनी श्लक्षणता आदि गुणों से शिक्षा देता है । विरक्त श्रीवैष्णव संन्यासी सांसारिक क्लेशों को देखकर मृत्यु का अभिनन्दन नहीं करे तथा भोग लिप्सा से जीवन का भी अभिनन्दन नहीं करे। केवल समय की ही प्रतिक्षा करता रहे एवं त्रिदण्ड से चिन्तनशील रहे । अपने सुख सुविधा के लिये आग नहीं जलाये तथा अपने मात्र रहने के लिये पीठ-मठ नहीं बनाये एवं जो सदैव श्रीराम स्वरूप ब्रह्म का चिन्तन

नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम् ।
कालमेव प्रतीक्षेत इति दण्डेन भावयेत् ॥
अनग्निरनिकेतोयो रामब्रह्मविचिन्तकः ।
स वै त्रिदण्डिनां श्रेष्ठो इति शास्त्रेषु निश्चितम् ॥२९॥

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यपीठाधीशस्य जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यस्य कृतौ श्रीवैष्णवसंन्याससमीमांसायां त्रिदण्डतत्व विवेचनात्मकः प्रकरणः परिपूर्णः ।

卐 श्रीरामः शरणं मम 卐

☬ यतिसंस्कारविधिः ☬

दुर्वृत्तो वा सुवृत्तो वा मूर्खः पण्डित एव वा ।
काषायमात्रवेषेण यतिः पूज्यो युधिष्ठिरः ॥

करता है वही त्रिदण्डधारियों में श्रेष्ठ है यह शास्त्रों का निश्चय है ॥२९॥

इसप्रकार श्रीपश्चिमाम्नाय जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यपीठाधीश जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी की कृति श्रीवैष्णव संन्यासमीमांसा में त्रिदण्ड तत्व नामक प्रकरण सम्पूर्ण हुआ ।

☬ श्रीरामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये ☬

☬ श्रीवैष्णवसंन्यासियों का अन्तिम संस्कार विधान ☬

महाभारत में कहा है कि हे युधिष्ठिर दुराचारी हो या सदाचारी, मूर्ख हो अथवा विद्वान् ही हो किन्तु काषाय वेश धारण करने मात्र से ही श्रीवैष्णव संन्यासी समाज के सभी वर्गों के लिये पूजनीय है। चारों वेदों को जाननेवाला जो ब्राह्मण है अथवा सोमयाजी या सैकडों यज्ञ करनेवाला ब्राह्मण है उन सवके अपेक्षा भी अधिक पूजनीय श्रीवैष्णव संन्यासी है । इन दोनों में तिल और मेरु के समान महान् अन्तर है । जिसप्रकार दिवाकर सूर्य एवं खद्योत इन दोनों में अन्तर है उसी तरह विरक्त श्रीवैष्णव एवं गृहस्थ में महान् अन्तर विद्वानों के द्वारा देखा गया है । जो व्यक्ति श्रीवैष्णव संन्यासी को देखकर अपना आसन शय्या आदि को छोडकर उनके सत्कार के लिये खडा नहीं हो जाता है वह व्यक्ति अविवेकी होकर मरने के पश्चात् तिर्यक् योनि में जन्म ग्रहण करता है ।

चतुर्वेदोऽपि यो विप्रः सोमयाजीशतक्रतुः ।
तस्मादपि यतिः श्रेष्ठः तिलमेरुवदन्तरम् ॥
सूर्यखद्योतयोर्यद्वन्मेरुसर्षपयोरपि ।
अन्तरं हि महद् दृष्टं तथा भिक्षुगृहस्थयोः ॥
आसनं शयनं वापि यतिं दृष्ट्वा त्यजेन्न यः ।
समूढात्मा मृतस्तस्मात्तिर्यग् योनिषु जायते ॥

इसप्रकार के समाज के लिये सभी के द्वारा पूजनीय गुण समुदाय से अलंकृत सर्वोत्तम आश्रम में निवास करनेवाले श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णव सिद्धान्त के अनुयायी परम विरक्त संन्यासियों के परमधाम श्रीसाकेतलोक में प्रस्थान करलेने पर अर्थात् देह त्याग के वाद किस विधि से अन्तिम संस्कार करना चाहिये यह विचार करना परम आवश्यक प्रतीत होता है यदि ऐसा नहीं हो तो मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना की स्थिति हो जायगी । श्रीवैष्णव संन्यासियों के अन्तिम संस्कार के विषय में वृद्ध याज्ञवल्क्य स्मृतिकार कहते हैं कि श्रीवैष्णव संन्यासी के शरीर त्याग करलेने के पश्चात् ब्राह्मण गृहस्थ उनके शरीर का संस्कार करे । अग्नि को जलाकर माला आदि के द्वारा श्रीवैष्णव संन्यासी के भौतिक शरीर को अलंकृत करके शरीर को शिक्य पर चढाकर प्रज्वालित अग्नि के साथ में गाँव से बाहर ले जाकर प्रशंसनीय माङ्गलिक मन्त्रों को वाद्यादि ध्वनि के साथ उच्चारण करके गाँव से पूर्व दिशा वा उत्तर दिशा में पवित्र देश में मृत शरीर को रखे । व्याहृति मन्त्रों के साथ श्रीवैष्णव संन्यासी के दण्ड के माप के अनुसार जमीन को खेदकर उस स्थान को सात व्याहृति मन्त्रों का उच्चारण करते हुये अभिषेक करे । तत्पश्चात् यज्ञ में उपयोग करने योग्य काष्ठों से सुन्दर चित्ता बनावे । सावित्री मन्त्र से मृत देह को प्रक्षालितकर चित्ता पर स्थापित करे ।

'विष्णोर्हव्यं रक्षस्व०' इस मन्त्र से रखकर मुख में जल पवित्रक रखे । पवित्रं ते० इत्यादि मन्त्र द्वारा मृत शरीर के दाहिना हाथ में दण्ड रखे । इदं विष्णुर्विचक्रमे० इस मन्त्र को पढकर मृत संन्यासी के बायाँ हाथ में शिख्य रखे अथवा यदस्य पारे रजसः इत्यादि के द्वारा शिक्य रखे । सावित्री मन्त्र के द्वारा उदर पर भिक्षापात्र रखे एवं जननेन्द्रिय के स्थान पर कमण्डलु रखे । भूमिर्भूमिमगात्० इस मन्त्र को पढकर आग से श्रीवैष्णव संन्यासी के शरीर का अन्तिम संस्कार करे तत्पश्चात् उसके श्राद्धादि का कोई विधान नहीं है । जो भी श्रीवैष्णव संन्यासी के शव यात्रा में अनुगमन करते

एवं विधगुणगणपरिमण्डितस्य सर्वश्रेष्ठाश्रमस्थस्य श्रीसम्प्रदायीय श्रीरामानन्दीय सिद्धान्तानुयायिनः परमविरक्तस्य श्रीवैष्णवसंन्यासिनः परमधामनि श्रीसाकेतलोके सम्परेते (देहत्यागेकृते) केन विधिना अन्तिमः संस्कारः कर्तव्यः, इति विवेकः परमावश्यकं प्रतीयते, अन्यथा मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना इति चरितार्था स्यात् श्रीवैष्णवीयविरक्तदीक्षादीक्षितयतीनामन्तिम संस्कारविषये वृद्धयाज्ञवल्क्यः प्राह-

अथ विप्रो गृहस्थस्तु यतिसंस्कारमाचरेत् ।
अग्निमुत्पाद्य माल्याद्यैरलंकृत्यास्य देहिकम् ॥

है अथवा शरीर का वहन करते हैं अथवा दाह संस्कार करते हैं उन सभी का शरीर स्नान मात्र से ही परम पवित्र हो जाता है उसके लिये क्षौर अथवा किसी प्रकार के कर्म करने की अपेक्षा नहीं है। शरीर त्यागी श्रीवैष्णव संन्यासी के संन्यास ग्रहण करने से पूर्व के जो पुत्र पौत्रादि सगा सम्बन्धी हैं उनके भी स्नान मात्र से ही सद्यः पवित्रता हो जाती है । इस विषय में श्रीबोधायन स्मृतिकार कहते हैं कि-

श्रीवैष्णव संन्यासियों के प्रेत संस्कार विधि को विस्तार के साथ कहता हूँ→ शान्त श्रीवैष्णव संन्यासी के शरीर का गृहस्थ स्नान करके पवित्र होकर अन्तिम संस्कार करे। सहस्रशीर्षा पुरुषः० आदि सोलह ऋचाओं वाला पुरुषसूक्त के द्वारा श्रीवैष्णव संन्यासी के शरीर का स्नान संस्कार सम्यक् प्रकार से करे। तत्पश्चात् शिक्य पर शरीर को रखकर गन्ध पुष्प माला आदि से अलंकृत करके गाजा बाजा आदि को बजाकर नृत्य गीतादि का आचरण करे। नदी के तट पर, पहाड के पास, गोशाला में, पीपल वृक्ष के पास, अथवा पलाश वृक्ष की छाया में पवित्र स्थान पर शान्त परिव्राजक के शरीर को रखकर श्रीवैष्णव संन्यासी के दण्ड की लम्बाई के प्रमाण के अनुसार देवयजन भूमि को भूः स्वाहा आदि मन्त्र से खोदकर, सात व्याहृति मन्त्रों के द्वारा अर्थात् ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐस्वः, ॐमहः, ॐजनः, ॐतपः, ॐसत्यम् इस मन्त्र से भूमि को सम्यक् प्रकार से सिञ्चितकर येनादेवा ज्योतिषोर्ध्वादायन...इत्यादि मन्त्र के द्वारा परिव्राजक शरीर को उसके ऊपर रखकर "विष्णोर्हव्यं रक्षस्व" इस मन्त्र से उस शरीर को कूर्मासन में सुस्थिर करके, "पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते"...इस मन्त्र को पढकर परिव्राजक के मुख भाग में जल पवित्री स्थापित कर "इदं विष्णुर्विचक्रमे"...इस मन्त्र से श्रीवैष्णव संन्यासी के दाहिना हाथ में त्रिदण्ड धारण

आरोप्यशिक्यं तच्चाग्निंनीत्वा ग्रामात् ततो बहिः ।
प्रशस्तै मङ्गलैरुक्तं वाद्यादिध्वनिभिस्तथा ॥
दिशं प्राचीमुदीचीं वा न्यस्य देशे शुचौ मृतम् ।
खात्वा व्याहृतिभिर्भूमिदण्डायाम प्रमाणकम् ॥
अथ प्रोक्ष्य तु तं देशं व्याहृतिभिश्च सप्तभिः ।
याज्ञिकैर्दारुभिस्तत्र चितां कृत्वा शुभैस्तथा ॥
देहं प्रक्षाल्य सावित्र्या चितायां तं विनिक्षिपेत् ।
विष्णोर्हव्यमिति न्यस्य मुखे जलपवित्रकम् ॥

करा के तत्पश्चात् "यदस्य पारे रजसः"...इत्यादि मन्त्र को पढकर उनके हाथ में शिक्य स्थापित करे। तत्पश्चात् श्रीवैष्णव संन्यासी के उदर भाग में "ॐ भूः ॐ भुवः आदि सात व्याहृति मन्त्रों को पढकर भिक्षापात्र को संस्थापित करे दोनों भौंहो के मध्यभाग में "सहस्रशीर्षा"...आदि सोलह ऋचाओं को पढकर अभिमन्त्रित करे, तत्पश्चात् "ब्रह्मजज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्"...। "भूमिर्भूमिमगात् माता"...इन दोनों मन्त्रों को पढकर श्रीवैष्णव संन्यासी पुरुष के जननेन्द्रिय के गुह्य स्थान पर कमण्डलु को संस्थापित करे। "हंसः शुचिषद् वसुरन्तरिक्षसद्धो"...ऋत बृहत् पर्यन्त मन्त्र को पढकर श्रीवैष्णव संन्यासी के हृदय प्रदेश को स्पर्श करके, "सहस्रशीर्षा पुरुषः"...आदि सोलह शुक्ल यजुर्वेद के ऋचाओं को श्रीवैष्णव संन्यासी पुरुष के देह के भौंहो के मध्यभाग को अभिमन्त्रित कर तत्पश्चात् परिव्राजक पुरुष के शरीर के मुख भाग को अन्तिम संस्कार करने वाला पुरुष अपने अभिमुख सुस्थिर करके, दश होताओं के द्वारा श्रीवैष्णव संन्यासी पुरुष के शान्त देह को अभिपूजित करे। दश होताओं के द्वारा उपस्थान करने की जो प्रक्रिया बतलायी गयी है, उसमें होताओं का विवरण निम्न लिखित प्रकार से कहा गया है। ब्राह्मण सर्व प्रथम होता है। वह यज्ञ स्वरूप है, वह मुझे प्रजा पशुगण पुष्टि समृद्धि तथा कीर्ति आदि प्रदान करे, और मेरा यज्ञ परिपूर्ण हो।

अग्नि द्वितीय होता है, वह अग्नि मुझ यजमान का भरण पोषण करनेवाला है। वह अग्निदेव मुझे सन्तान परम्परा पशु समुदाय, पोषण के समस्त साधन प्रकार, एवं यश प्रदान करे और मेरा धारण पोषण करनेवाला होवे। दश होताओं में पृथिवी तृतीय होता है, वह पृथिवी प्राणी मात्र के प्रकृष्ट रूपसे स्थिति का आधार है। वह

पवित्रं ते इति न्यस्य दण्डं दक्षिणहस्तके ।
इदं विष्णुरितिन्यस्य शिक्यं सव्यकरे यतेः ॥

यदस्यपारेरजसः शिक्यमित्यादिनैव च ।
सावित्र्याचोदरे पात्रं गुह्यस्थाने कमण्लुम् ॥

भूमिर्भूमिमगान्मन्त्रमुक्ताऽथाप्युपतिष्ठते ।
त्रिपञ्चभिरहोरात्रैः षड्भिरित्यपरे जगुः ॥

मुझ यजमान को प्रजा पशु पुष्टि एवं कीर्ति प्रदान करे और इस संसार में मेरी प्रतिष्ठा हो । और इस प्रक्रिया में अन्तरिक्ष चतुर्थ होता है वह अन्तरिक्ष समस्त प्राणी मात्र को अपने आयतन में प्रवेश करानेवाला हैं, अन्तरिक्ष में सव कुछ समाहित हो जाता है । वह मुझ यजमान को प्रजा समूह पशुगण पुष्टि एवं कीर्ति प्रदान करे और मेरे लिये अवकाश प्रदान करनेवाला हो । इस यज्ञ का वायु पाँचवाँ होता है, वह वायु समस्त जडचेतन का प्राण स्वरूप है वह वायुदेव मुझ यजमान को सन्तान परम्परा पशुगण एवं पुष्टि तथा यश प्रदान करें और मेरे प्राण बल परिपूर्ण हों । चन्द्रमा छठा होता है, वे चन्द्रमा हेमन्त शिशिर वसन्त आदि छः ऋतुओं की संरचना करते हैं । वे मुझ यजमान को प्रजा पशुगण पुष्टि एवं कीर्ति प्रदान करें और समस्त ऋतुगण मुझ यजमान के लिये सदैव मङ्गलमय एवं सर्वविध आनन्दकारी हों । अन्न सातवाँ होता है, वह अन्न समस्त प्राणों को भी अनुप्राणित करनेवाला है । वह अन्न मुझ यजमान को प्रजा पशु पुष्टि एवं यश प्रदान करता रहे । और मुझ यजमान के लिये प्राणों का भी जो प्राण स्वरूप में विद्यमान अन्न है वह सर्वदा अक्षुण्ण मात्रा में उपलब्ध हो । आकाश अष्टम होता है, वह अदमनीय है, आकाश मुझ यजमान को अदमनीय बनावे, वह मुझे प्रजा पशु पुष्टि और यश प्रदान करे, और मैं यजमान किसी के लिये भी धर्षनीय नहीं बनूँ । और आदित्य नवम होता है, अत्यन्त प्रभावशाली आदित्य हैं, अत्यन्त प्रभावशाली भगवान् आदित्य मुझे प्रजा पशु पुष्टि तथा यश प्रदान करें । और मैं यजमान तेजस्वी बनूँ । प्रजापति दशम होता है, प्रजापति ही जो कुछ दृश्य जगत् है, सभी कुछ है । वह प्रजापति मुझे प्रजा पुष्टि एवं यश प्रदान करें । अग्नि होता इत्यादि अनुवाक के द्वारा यति को सम्यक् स्पर्श करके तथा स्तुति करके, चावल के भूसा से शान्त शरीर को प्रज्चलित कर दे ।

ईशावास्य उपनिषद् में शरीरान्त के सम्बन्ध में कहा गया है→यह आत्मा परम

अग्निना च दहेत्तेन नास्ति कर्मोदकादिकम् ।
गच्छन्तमनुगच्छन्ति वहन्ति च दहन्ति च ॥
स्नानमात्रेणशुद्धाः स्युरश्वमेधफलं च ते ।
तस्य ये बान्धवास्तेषां सद्यः शौचं विधीयते ॥

श्रीबोधायनश्चाह-

यतीनां प्रेतसंस्कारविधिं वक्ष्याम्यशेषतः ।
स्नात्वा गृहस्थः शुद्धात्मा यतिसंस्कारमाचरेत् ॥
पौरुषेणैव सूक्तेन यतेः स्नानं समाचरेत् ।
शिक्ये शरीरमारोप्य गन्धमाल्यैरलंकृतम् ॥

पुरुष श्रीरामचन्द्रजी के संकल्पानुसार, अपने ज्ञान एवं कर्म के अनुसार देव मनुष्यादि योनियों में वायु के समान गतिशील है, इसलिये वायु स्वरूप आत्मा अनिल का अर्थ निलय विहीन होता है, जीवात्मा स्वरूप एवं धर्म से आत्मा निलय विहीन है, अथवा अनिल पवन उसके समान जीवात्मा भी कहीं भी देह में स्थिर नहीं होता है। एवं अमृत स्वरूप "अयमात्मा अपहत पाप्मा विरजो विमृत्युः" इस श्रुति के अनुसार अमर है। इसतरह के गुणों से परिपूर्ण नित्य आत्मा का भौतिक शरीर भस्मान्त है। अन्य श्रुतियों में 'भस्मान्ता वा विडन्तावा' ऐसा भी कहा गया है। व्याघ्र आदि जन्तुओं के द्वारा पृथ्वी पर तथा जल आदि में ग्राह आदि के द्वारा भक्षित होने पर शरीर का विष्ठा रूपमें परिणाम देखा गया है। पर यह पूतात्मा विरक्त श्रीवैष्णव संन्यासी के लिये उचित नहीं वेद विरुद्ध होने से अतः दाहसंस्कार ही करना चाहिये जल प्रवाह या खात नहीं यहाँ इदम् शब्द से दृश्य शरीर का कथन किया गया है। पुत्रादि के द्वारा शरीर का अग्नि संस्कार करने पर भस्म रूप में चरम परिणाम होता है। इसलिये श्रुति भस्मान्तं शरीरम् कहती है। ॐ शब्द से प्रणव वाच्य है। परमात्मा प्रणव स्वरूप में जीवात्मा के द्वारा उपासनीय है। कहीं 'अहंक्रतुरहं यज्ञः' आदि के द्वारा सर्वेश्वर श्रीराम क्रतु शब्द से वाच्य हैं अर्थात् उस परमात्मा का स्मरण करो एवं जन्म जन्मान्तर में किये गये अपने कर्त्तव्य का स्मरण करो। इसतरह शरीर का भस्मान्त प्रतिपादन करने के कारण अग्नि संस्कार अभिप्रेत है। सामान्य रूपसे विवेचन करने पर प्रतीत होता है कि मृत्यु शब्द का पर्यायवाची पराशु प्राप्त पञ्चत्व परेत, प्रेत, संस्थित, मृत, एवं प्रमीत ये मृत्यु पर्यायवाची शब्द तीनों लिङ्गों में प्रयुक्त होते हैं। इनमें प्राप्त पञ्चत्व का जिसने पंञ्चत्व को प्राप्त कर लिया है इस व्युत्पत्ति

घोषयित्वा तु वाद्यादीन् नृत्यगेयानि कारयेत् । नदीतीरे पर्वतसमीपे गोष्ठे अश्वत्थसमीपे पलाशच्छायायां वा शुद्धे देशे परिव्राजकं निधाय तस्य दण्डायामप्रमाणं देवयजनम् "भूः स्वाहा, भुवः स्वाहा सुवः स्वाहा, भुर्भूवः सुवः स्वाहा" इति खात्वा सप्तव्याहृतिभिर्देवयजनम् सम्प्रोक्ष्य कूर्मासनम् "येन देवा ज्योतिषोर्ध्वादायन् येनादित्या वसवो येन रुद्राः येनाङ्गिरसो महिमानमानशुस्तेनैव तु यजमानः स्वस्ति' इति निधाय तस्योपरि परिव्राजकम्

के द्वारा ज्ञात होता है कि पृथ्वी जल तेज वायु एवं आकाश का मिश्रित स्वरूप यह पाञ्च भौतिक शरीर है। आत्मा के इस पाञ्च भौतिक शरीर से निकल जाने पर पाँचों महाभूत के पाँचों तत्त्व पृथ्वी जल आदि में विलीन हो जाते हैं। शरीर में आत्मा के रहने पर ही महाभूतों की स्व स्वरूप में स्थिति होती है। वैज्ञानिकों का यह निश्चित सिद्धान्त है कि संसार में जो भी तत्त्व विद्यमान हैं उनकी कभी कमी नहीं होती है एवं वृद्धि भी नहीं होती है। उन्हीं तत्त्वों में से किसी आधार में क्षीणता होती है तो दूसरे में सम्बद्र्धन हो जाता है किन्तु नया तत्त्व का प्रादुर्भाव नहीं होता है सभी ही प्राणियों का सरीर से प्राण वायु निकल जाने पर पाँचों तत्त्वों का मिलन स्वरूप पञ्चत्व की प्राप्ति होती है। शरीर धारियों के शरीर वस्तुतः कृमि, विष्ठा एवं भस्म रूपमें चरम परिणति प्राप्त करते हैं। जैसे कि किसी के शरीर का यदि संस्कार नहीं होता है तो उसके शरीर को जलचर आकाशचारी चील्ह आदि तथा कुत्ता, सियार, बाघ आदि श्वापद खा लेते हैं तव विष्ठा रूपमें शरीर की चरम परिणति होती है। यदि किसी के शरीर को गड्ढा खोदकर उसमें डालकर मिट्टी से भर दिया जाता है तो कृमि स्वरूप में उसका अन्त होता है और आग से जला देने पर भस्म रूपमें अवसान होता है लेकिन सभी जगह पार्थिव तत्त्वों का पृथिवी में विलय, वायवीय का वायु में, जलीय का जल में, तैजस् का तेज में और आकाशीय तत्त्व का आकाश में अन्त होता है। इस विषय में किसी का मतभेद नहीं है।

किन्तु साधु पुरुषों के शरीर शान्त हो जाने पर समाज में तीन प्रकार की व्यवस्था देखी जाती है कोई पुरुष शान्त शरीर को जल समाधि करता है अन्य व्यक्ति साधु पुरुष के शान्त शरीर को जमीन खोदकर उस खात में शरीर को डालकर मिट्टी आदि से भर देते हैं। लेकिन अन्य स्थानों पर जिसके सगा सम्बन्धी भाई, भतीजा, पुत्र पौत्रादि होते हैं वे सम्मान पूर्वक चिता में स्थापित करके काष्ठ आदि के द्वारा शरीर को जलाकर भस्मसात् करदेते हैं। जिसका जो सम्प्रदाय परम्परा से आया हुआ

"विष्णो हव्यं रक्षस्व" इति संस्थाप्य पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः । अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते श्रितास उद्वहन्तस्तत्समासते । इति मुखेजलपवित्रं निधा "इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधेपदम् समूढमस्य पाᳫंसुरे स्वाहा इति दक्षिणे हस्ते दण्डं दत्वा "यदस्य पारे रजसः शुक्रं ज्योतिरजायत । तन्नः पर्षदतिद्विषः अग्नेवैश्वानरः स्वाहा" । इति शिक्यं दत्वा

पारम्परिक व्यवहार दीर्घकाल से चलरहा है उस पारम्परिक व्यवहार को परित्याग करने के लिये अथवा इस विषय पर शास्त्रीय दृष्टि से तात्विक रूपमें विचार करने के लिये इच्छा नहीं करता है। लेकिन भारत वर्ष में हमारे वैदिक धर्म का अनुशरण करनेवाले विविध सम्प्रदाय के लोगों के लिये वेद शास्त्र के द्वारा विहित अत्यन्त पवित्रतम तथा अतिशय श्रेष्ठ व्यवस्था है। इस विषय में किसी भी प्रतिभा सम्पन्न विद्वानों का मतभेद अथवा पक्षद्वयात्मक सन्देह नहीं है। संसार में जिस किसी देश में अथवा धर्मों में धर्म शास्त्रों के द्वारा जो कोई भी व्यवस्थायें होती हैं वे व्यवस्थायें देश, काल, तथा पात्र पर आधारित होती है जैसे ध्रुवीय प्रदेशादि में वर्फ के अतिरिक्त दूसरा कोई भी साधन नहीं होता है इसलिये वहाँ पर शरीर का संस्कार करने के लिये वर्फ में ही शान्त शरीर का खनन को छोडकर दूसरा कोई उपाय नहीं होता है अत एव उस वर्फीला प्रदेश में शरीर को वर्फ में दवा देना ही धर्म है। जहाँ समुद्र से घिरा हुआ प्रदेश होता है वहाँ समुद्री द्वीपों में लकडी का अभाव होने के कारण जल समाधि से अतिरिक्त दूसरा कोई भी उपाय नहीं है। इसलिये वहाँ पर निवास करनेवाले लोगों के शरीर को जल समाधि करना ही धर्म होता है। लेकिन इस भारत वर्ष में जल समाधि, निखनन एवं अग्नि संस्कार ये तीनों ही प्रकार के शरीर का अन्तिम संस्कार सम्भव है। साधन समुदाय भी पर्याप्त मात्रा में होते हैं।

अतः यहाँ पर अन्तिम संस्कार के सम्बन्ध में यह विचार किया जाता है कि जहाँ पर दीर्घकाल पर्यन्त दिनरात वर्षा होती रहती है प्रदेश का सारा भू भाग जल से आप्लावित होता है। और जलाने का साधन का सर्वथा अभाव होता है वहाँ पर देशकाल जनित कठिनाई उत्पन्न होने के कारण अग्नि के द्वारा शान्त शरीर का संस्कार होना सम्भव नहीं है।

यदि ऐसी स्थिति हो तो शान्त शरीर को निखनन एवं जल समाधि में किसी प्रकार का दोष नहीं है दूसरे स्थानों पर तो धर्म शास्त्रीय व्यवस्था का अनुशरण करना

सप्तव्याहृतिभिः पात्रमुदरे दत्वा पुरुषसूक्तं भ्रुवोः, "ब्रह्मजज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचोत्वेन आवः स बुद्ध्न्या उपमा अस्या विष्टां शतश्च योनिमशतश्च व्विवः ॥ भूमिर्भूमिमगान्माता मातरमप्यागत । भूयास्मपवित्रैः पशुभिर्यो नौ द्वेष्टि स भिद्यताम् । इति गुह्यस्थाने कमण्डलुंन्यस्य "हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् । नृसद्वर सदृतसद्व्योमजा

ही चाहिये इस विषय में और अधिक मनुस्मृतिकार कहते हैं जिसप्रकार काष्ठ लोष्ठ आदि महत्त्वहीन वस्तुओं को मानव उपेक्षा दृष्टि से जमीन पर फेंककर चलेजाते हैं उसी प्रकार मृत शरीर को छोडकर उदासीन बन्धु बान्धव सगा सम्बन्धी चले जाते हैं किन्तु उस आत्मा का सगे सम्बन्धियों को छोडकर चले जाने पर भी धर्म अनुशरण करता है। दो वर्षों से कम अवस्था के मृत शरीर को बन्धु बान्धव गाँव से बाहर ले जाकर शरीर को अलंकृत करके पवित्र भूमि में गाड़ देते हैं। अस्थि सञ्चयन आदि कर्मों को छोडकर अन्य सभी कर्म करते हैं उसका अग्नि संस्कार नहीं करना चाहिये तथा श्राद्धादि क्रियायें भी नहीं करना चाहिये। जैसे जंगल में काष्ठ को निर्मोह होकर छोड देते हैं उसी प्रकार निर्मोह होकर छोडकर त्रिरात्राशौच मानना चाहिये। जिसका तीन वर्ष पूरा नहीं हुआ है ऐसे शरीर के अन्तिम संस्कार में बन्धु-बान्धवों के द्वारा पिण्डदानादि क्रियायें नहीं करनी चाहिये अथवा जिसके दाँत निकल आये हैं अथवा नामकरण हो गया है उसके श्राद्धादि क्रियायें करनी चाहिये। मनुस्मृतिकार के जंगल में काष्ठ के समान छोड़कर इस वचन के स्थान पर याज्ञवल्क्य स्मृतिकार कहते है कि दो वर्ष से कम अवस्था के शव को जमीन खोदकर गाड़ देने की व्यवस्था करते हैं ।

और ब्रह्मपुराण में भी कहा गया है कि पतित व्यक्तियों का दाह संस्कार भी नहीं होता है अन्त्येष्टि भी नहीं होती है एवं अस्थि सञ्चय भी नहीं होता है। तथा उसके लिये रोना आँसू बहाना पिण्डदान अथवा श्राद्ध आदि क्रियायें भी कहीं पर नहीं की जाती है।

ये उपर्युक्त कर्म पतित लोगों का दाह संस्कारादि अन्तिम क्रियायें विशेष प्रकार के मोहजाल में पड़कर जो व्यक्ति करता है वह कण्ठोदक क्रिया आदि करने के पश्चात् तप्तकृच्छ्र से विशुद्ध होता है ।

शास्त्रों में दूसरे स्थानों पर देखा जाता है कि ज्ञाननिष्ठ संन्यासियों के शरीर के लिये अन्तिम संस्कार के समय नमक के साथ जमीन के अन्दर समाधि लगाने का विधान किया जाता है। इसे जमीन के अन्दर गाड़ने के पश्चात् कथञ्चिद्दैव संयोगात्

गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् ॥ इति हृदय प्रदेशं स्पृष्ट्वा संजप्य सहस्त्रशीर्षापुरुषः इति मन्त्रेण पुरुषसूक्तेन भ्रुवोर्मध्ये जपित्वा पश्चात् परिव्राजकमभिमुखीकृत्य दशहोतृभिरुपस्थानं कुर्यात् । ब्राह्मण एक होता । स यज्ञः । मे ददातु प्रजां पशून् पुष्टिं यशः । यज्ञश्च मे भूयात् । अग्निर्द्विहोता । स भर्ता । स म ददातु प्राजां पशून् पुष्टिं यशः । भर्त्ता च मे भूयात् । पृथिवी त्रिहोता । स प्रतिष्ठा । स मे ददातु प्रजां पशून् पुष्टिं यशः । प्रतिष्ठा च मे भूयात् । अन्तरिक्षं चतुर्होता स विष्टां स मे ददातु प्रजां पशून् पुष्टिं यशः ।
यदि कुत्ता सियार आदि मांसभोजी जानवरों के द्वारा ऊपर उखाड़कर लाया जाता है तो उस प्रदेश में अनावृष्टि आदि उत्पाद जनक दोष उत्पन्न हो जाते हैं इसलिये सन्यस्त पुरुष के शान्त शरीर का संस्कार करने के लिये जो अधिकारी है उस अधिकारी पुरुष के द्वारा शरीर का दाह संस्कार ही किया जाना चाहिये । क्योंकि चिता की आग में शान्त शरीर को जलाने का वेद एवं धर्मशास्त्र में विधान किया गया है भस्म रूपमें शरीर की अन्तिम परिणति होती है इस कथन के कारण भी दाह संस्कार में शव के शरीर के तत्त्वों का अपने-अपने कारणों में विलय हो जाता है और धर्म का भी अनुपालन होता है । इन विशेष तत्त्वों का विवेचन कर श्रीसम्प्रदायीय-श्रीरामानन्दीय सिद्धान्तानुयायी श्रीवैष्णवों का यही सिद्धान्त है । इसलिये विकृत परिणाम द्वारा जमीन में गाड़ना अथवा जल प्रवाह से अपेक्षाकृत परिणाम अग्नि संस्कार का औचित्य सभी विवेकी पुरुषों के द्वारा मानना चाहिये । श्रीवैष्णव संन्यासी पुरुष के शरीर का दाह कर देने के पश्चात् तत्काल ही पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश के तत्त्वों का साक्षात् अपने-अपने कारणों में विलय होता है एवं शान्त शरीर का अनादर भी नहीं होता है । जमीन में खोदकर गाड़ने से शरीर का विकार उत्पन्न होने पर उसमें दुर्गन्धि आदि उत्पन्न हो जाते हैं । तथा कुत्ते श्रृगाल आदि मांसभोजी प्राणियों के द्वारा मुर्दा को उखाड़ देने पर शरीर का अनादर भी होता है । जल समाधि देने पर तो जल में शान्त शरीर के सड़ने से अनेक प्रकार के प्रदूषण उत्पन्न होते हैं । यदि कहीं पर सम्प्रदाय परम्परागत या लोक व्यवहार इसप्रकार का है कि जल समाधि और जमीन में गाड़ना परम्परागत व्यवहार है इसलिये यह सदाचार है ऐसा कहें तो वह ठीक नहीं क्योंकि वेद और धर्मशास्त्र से अविरुद्ध यदि परम्परागत या लोकव्यवहार हो तभी उस व्यवहार का सदाचार के रूपमें परिगणन किया जाता है । क्योंकि शास्त्रों का यह

विष्टाश्च मे भूयात् । वायुः पञ्चहोता । स प्राणः । स मे ददातु प्रजां पशून् पुष्टिं यशः । प्राणश्चमे भूयात् । चन्द्रमाः षड्ढोता । स ऋतून् कल्पयति । स मे ददातु प्रजां पशून् पुष्टिं यशः । ऋतवश्च मे कल्पन्ताम् । अन्नं सप्तहोता । स प्राणश्च प्राणः स मे ददातु प्रजां पशून् पुष्टिं यशः । प्राणस्य च मे प्राणे भूयात् । द्यौरष्टहोता । सोऽनाधृष्यः । स मे ददातु प्रजां पशून् पुष्टिं यशः । अनाधृष्यश्च भूयासम् । आदित्यो नव होता । स तेजस्वी । स मे ददातु पशून् पुष्टिं यशः । तेजस्वी च भूयासम् । प्रजापतिर्दशहोता । स इदं सर्वम् । स मे ददातु प्रजां पशून् पुष्टिं यशः । सर्वं च मे भूयात् स्वाहा इति च । अग्निर्होता इत्यनुवाकेन च यतिं स्पृष्ट्वा उपस्थाय तुषाग्निना दहेत्→

ईशावास्योपनिषदि उक्तम्-

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तं शरीरम्

ॐक्रतो स्मर कृतं स्मर क्रतो स्मर कृतं स्मर ॥

सामान्यतः विवेचने कृते प्रतीयते यत्

परासु प्राप्तपञ्चत्वपरेतप्रेतसंस्थिताः मृतप्रमीतौ त्रिष्वेते-इति मृत्युपर्यायवाचकाः शब्दा विद्यन्ते ।

एषु प्राप्तपञ्चत्वमित्यस्य प्राप्तम् पञ्चत्वं येनेति व्युत्पत्त्या ज्ञायते यत् पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशात्मकम् पाञ्चभौतिकमिदं शरीरम् आत्मनि शरीरान्निर्गते पञ्चभूतानि पञ्चसु क्रमेण विलीयन्ते । आत्मनि स्थिते एव तेषां स्थितिर्भवति ।

उद्घोष है कि धर्म तत्त्व को जानने की इच्छा करनेवाले विवेकी पुरुषों के लिये सबसे बड़ा प्रमाण वेद है । इस कथन के अनुसार जिस व्यक्ति का जो धर्म है उसके जिस धर्म का वेद और शास्त्र के द्वारा विधान किया गया है उसका संस्कार वेदशास्त्र के अनुकूल ही किया जाना चाहिये । वेदशास्त्र के विधान का उल्लंघन कर विपरीत संस्कार नहीं किया जाना चाहिये । "भस्मान्तं शरीरम्" इस वेद वचन के द्वारा शरीर का अन्तिम परिणाम भस्मरूप में विधान किया गया है । इसलिये शान्त विरक्त श्रीवैष्णव संन्यासी के शरीर का अग्नि संस्कार द्वारा अग्निदाह करना ही परम कल्याणकारी विधान है । और यही वेद का एवं जगदाचार्य परमपूजनीय आनन्दभाष्यकार श्रीमान् रामानन्दाचार्यजी का सिद्धान्त है । यह विषय ऋग्वेद के दशम मण्डल में विस्तार के साथ कहा गया है जो वेद मन्त्र

वैज्ञानिकानामयं निश्चितः सिद्धान्तो विद्यते यत् संसारे यानि तत्वानि वर्तन्ते, तेषां जगति अन्यूनानधिका स्थितिर्भवति। कस्मिंश्चिदाधारे क्षीयते इतरत्रवर्धते, किन्तु इतरस्य प्रादुर्भावो न भवति। सर्वेषामेव प्राणिनां शरीरात् प्राणवायौ निर्गते पञ्चत्वस्यावाप्तिर्जायते। कृमिविड् भस्मान्तानि शरीरिणां शरीराणि भवन्ति। यथा कस्यचित् शरीरस्य संस्कारको न भवति चेत् तस्य शरीरं जलचरा नभचराः श्वापदा वा खादन्ति तदा विष्ठारूपेणावसानम्। खाते निक्षिप्य मृत्तिकयापूरिते कृमिरूपेणावसानम्। अग्निनादग्धे भस्मरूपेणावसानम्। परं सर्वत्र पार्थिवस्य तत्त्वस्य पृथिव्यां लयो वायव्यस्य वायौ, जलीयस्य जले तैजसः तेजसि, आकाशीयस्य चाकाशे विलयो भवति, इत्यत्र न कश्चिद् भेदः। किन्तु साधुषु शरीरत्यागेषु समाजे त्रिविधा व्यवस्था दृश्यते।

कश्चित् मृतं शरीरं जलसमाधिं करोति। अपरः भूमिं खनित्वा तत्र शरीरं निक्षिप्य मृत्तिकादिभिः पूरयति। किन्तु अन्यत्र यस्य बान्धावाः भवन्ति ते ससत्कारं चितायां स्थापयित्वा काष्ठादिभिः शरीरं भस्मसात्कुर्वन्ति। यस्य यो पारम्परिकः व्यवहारः प्रचलति तं व्यवहारं परित्यक्तुं तात्विकं विचारं वा कर्त्तुं नाभिलषति। किन्तु भारते वर्षे वैदिकधर्मानुयायिनां कृते वेदविहिता व्यवस्था विशुद्धतमा श्रेष्ठा च इत्यत्र नास्ति केषाञ्चित् प्रतिभाजुषां विदुषां विमतिः विप्रतिपत्तिर्वा। जगति यस्मिन्कस्मिन् देशे धर्मेषु वा धर्मशास्त्रीयाः याः काश्चन व्यवस्थाः भवन्ति ताः देशकालपात्राश्रिताः एव। यथा ध्रुवप्रदेशादिषु हिमातिरिक्तं किमपि साधनं न भवति अतः तत्र शरीरसंस्काराय हिमे निखननातिरिक्तन्नास्ति कश्चन उपायः। अतः तत्र स एव धर्मः। सामुद्रिकेषु द्वीपेषु काष्ठाभावे जलसमाध्यतिरिक्तं उपायान्तरो न भवति अतस्तत्रत्यो जलस

"मैनमग्नेय विदहोमाभिशोचो" से लेकर "बहैनं सुकृतामुलोकम्" पर्यन्त विस्तार पूर्वक शान्त देह के अन्तिम संस्कार के सम्बन्ध में अग्नि संस्कार करने का वैदिक विधान होने में प्रमाण है। इसलिये जो अग्न्याधान नहीं करनेवाला पुरुष है उस संन्यासाश्रमी पुरुष के शरीर के शान्त हो जाने पर ब्राह्मण पुरुष उसके विद्यमान कलेवर को अग्नि से दाह संस्कार करे। तुष अर्थात् चावल का भूसा उसमें आग जलाकर श्रीवैष्णव संन्यासी के शरीर का अन्तिम संस्कार करने के लिये गाँव से बाहर

माधिरेव धर्मः किन्तु भारतेऽस्मिन् वर्षे त्रिविधोऽपि अन्तिमः संस्कारः शरीरस्य सम्भवति । साधनान्यपि पर्याप्तानि भवन्ति ।

अत्रेदं विचार्यते यत् यत्र दीर्घकालपर्यन्तमहर्निशं वृष्टिर्भवति । प्रदेशः जलप्लावितः इन्धनस्य च सर्वथा अभावः तत्र देशकालजनितकाठिन्य जननात् अग्निना देहसंस्कारो न भवति चेत् न कश्चिद्दोषः । अन्यत्र तु धर्मशास्त्रीया व्यवस्था स्वीकार्या एव उक्तवान् चात्र मनुः-

मृतं शरीरमुत्सृत्य काष्ठलोष्टसमं क्षितौ ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ॥

ऊनद्विवार्षिकं प्रेतं निदध्युर्बान्धवा बहिः ।
अलंकृत्य शुचौ भूमावस्थिसंचयनादृते ॥

नास्य कार्योऽग्निसंस्कारो न च कार्योदकक्रिया ।
अरण्यो काष्ठवत् त्यक्त्वा त्रपेयुस्त्र्यह मेव च ॥

नात्रिवर्षस्य कर्त्तव्या बान्धवैरुदकक्रिया ।
जातदन्तस्य वा कुर्युर्नाम्नि वापि कृते सति ॥

याज्ञवल्क्यश्चाह-

अरण्ये काष्ठवत् त्यक्त्वा इत्यत्र ऊन द्विवार्षिकं निखनेत् इति व्यवस्थापयति।

ब्रह्मपुराणे चोक्तम्-

पतितानां च दाहस्यान्नान्त्येष्टिर्नास्थिसंचयः ।
नाश्रुपातश्च पिण्डो वा कार्याश्राद्धादिकं क्वचित् ॥

एतानि पतितानान्तु यः करोति विमोहितः ।
कण्ठोदकक्रियाः कृत्वा तप्तकृच्छ्रेन शुद्ध्यति ॥

अन्यत्रावलोक्यते ज्ञाननिष्ठानां संन्यासिनां शरीरस्य कृते लवणेन सह निखननं विधीयते । तत्र निखननोत्तरं कथञ्चिद्दैवात् यदि स्वापदादिभिः उत्खननं भवति तदा तत्र प्रदेशेऽनावृष्ट्यादिकाः दोषाः प्रादुर्भवन्ति । तस्मात् यतः शरीरस्य संस्काराय योऽधिकारी तेन शरीरस्य दाहसंस्कार एव विधेयः ।

उत्तर दिशा या पूर्व दिशा में शरीर को ले जाय । जबतक शरीर भस्मसात् नहीं हो जाय तबतक शान्त संन्यासी के शरीर को तुष की आग से जलावे । निरग्नि श्रीवैष्णव

चितागनौ शवदाहस्य वेदे धर्मशास्त्रे च विधानात् । भस्मान्तं शरीरमित्युक्तेश्च कृते दाहसंस्कारे शवस्य स्व-स्व कारणे विलयो भवति । धर्मस्य चापि अनुपालनं भवति इति श्रीसम्प्रदायीय-श्रीरामानन्दीयानां श्रीवैष्णवानां सिद्धान्तः । तेन विकृतपरिणामद्वारा निखननाज्जलप्रवाहाद्वा अविकृत परिणामस्य अग्निसंस्कारस्य औचित्यं सर्वैरेव स्वीकर्त्तव्यम् । यतः शरीरस्य दाहे कृते साक्षादेव पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशानां तत्त्वानां स्व-स्व कारणेषु विलयो भवति शवस्य च अवमानना अपि न भवति । "इदं परिदृश्यमानं प्रमास्पदतया प्रतीयमानं भोगसाधनीभूतं रमणीयं शरीरं विशरणस्वभावं वपुः कर्माधीनं वपुः भस्मान्तं भस्म अन्तः चरमः परिणामो यस्य तादृशं दाहसंस्कारे सति भस्मरूपं भवतीत्यर्थः" इति भाष्यकारोक्तेश्च भस्मान्त सिद्धान्तमेवादर्तव्यं श्रीसम्प्रदायानुयायिभिः । भूमौ निखनने शरीरस्य विकृतिवशात् दौर्गन्ध्यादिकमुत्पद्यन्ते कुकुरश्रृगालादिभिश्च उत्खनने कृते अनादरः अपि भवति । जलसमाधौ तु जलेदोषाः उत्पद्यन्ते । श्रुतिस्मृतिभ्याम विरुद्धस्यैव पारम्परिकस्य लोकव्यवहारस्य सदाचारत्वेन परिगणनात् "धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः" इत्युक्तेश्च । यस्य यो धर्मः धर्मशास्त्रेण वेदेनचाभिहितः तस्य संस्कारः तथैव विधेयः । वेदेन भस्मान्तस्य शरीरस्य विधानात् शान्तस्य यतिदेहस्य अग्निदाहः एव परमश्रेयस्करः । अयमेव च वेदस्य जगदाचार्यस्य श्रीरामानन्दाचार्यस्य सिद्धान्तः । अक्तञ्च ऋग्वेदे दशमेमण्डले-

मैनमग्नेविदहोमाभिशोचोमास्यत्वचं चिक्षिपोमाशरीरम् । यदाश्रृतं कृणवोजातवेदोऽथेमेनं प्रहिणुतात्पितृभ्यः श्रृतं यदा करसि जातवेदोऽथेमेनं परिदत्तात्पितृभ्यः । यदा गच्छत्यसुनीति मेतामथा देवानां वशनीर्भवति ॥ सूर्यचक्षुर्गच्छतु वातमात्मां द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा । अयो वा गच्छ

संन्यासी के शरीर का दाह संस्कार करना चाहिये एवं उसके पुत्रादि श्राद्ध पिण्डोदक आदि क्रिया करे । इन धर्मशास्त्रीय वचनों का एवं प्रमाणों का अनुरोध करके श्रीवैष्णणव संन्यासियों के तथा पञ्चसंस्कार सम्पन्न श्रीरामानन्दीय सभी विरक्त सन्तों के शरीर का अग्नि संस्कार ही करना चाहिये । तत्पश्चात् जैसा कि श्रीसम्प्रदाय में परम्प-

यदि तत्र ते हिममोषधीषु प्रतितिष्ठा शरीरैः अजोभागस्तपसा तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः । यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकम् ॥ ऋग्वेद-१० मण्डल । तस्मात्-

निरग्नीनां दहेद्विप्रः संस्थितानां कलेवरम् ।
तुषाग्निमात्रमुत्पाद्य संस्कारार्थं यतेर्हरेत् ।
तुषाग्निना दहेद्देहं यावद्भस्मी भविष्यति ।
दहनं तस्य कर्त्तव्यं श्राद्धं पिण्डोदकक्रियाः ।

इत्यादिप्रमाणान्यनुरुद्ध्य यतीनां देहस्य अग्निसंस्कारः एवकर्त्तव्यः । पञ्चसंस्कारपूर्वकगृहीतविरक्तदीक्षाणां समेषां श्रीरामानन्दीय-श्रीवैष्णवानामग्निसंस्कार एव कर्तव्य इतिविवेकः । तदुत्तरं यथा श्रीसम्प्रदायं साधुभिः श्रीसाकेतोत्सवं कर्त्तव्यम् ॥३०॥

इति आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यस्य कृतौ श्रीवैष्णवसंन्यासमीमांसायां यतिसंस्कारविधिनामकः प्रकरणः परिपूर्णम् । शुभं भूयात् ।

☫ पञ्चमाश्रमनिषेधः ☫

मनुना अभिहितम्-मनुस्मृतेः द्वितीयाध्याये→

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम् ।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥

रागत व्यवहार है तदनुसार विरक्त श्रीवैष्णव संन्यासियों के हेतु श्रीसाकेत यात्रोत्सव विधान करना चाहिये ॥३०॥

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यपीठाधीश आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी की कृति श्रीवैष्णवसंन्यास मीमांसा में यतिसंस्कार विधि नामक प्रकरण परिपूर्ण हुआ ।

卐 श्रीरामः शरणं मम 卐

☫ पञ्चम आश्रम का निषेध ☫

मनुस्मृति के दूसरे अध्याय में धर्मशास्त्र का स्वरूप के द्वारा सुस्पष्ट रूपसे कहा गया है संसार में सभी धर्मों का मूल आधार वेद है तथा वेद के जाननेवाले विद्वानों का

य: कश्चित् कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्तितः ।
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः ॥
वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥

याज्ञवल्क्येन चोक्तम्-

विहितस्याननुष्ठानात् निन्दितस्य च सेवनात् ।
अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां नरः पतनमृच्छति ॥

वेदानुकूल विवेचनात्मक संस्मरण स्वरूप धर्मशास्त्र है तदनुरूप वेदज्ञों का आचरण एवं महापुरुषों का आचरण तथा वेदानुयायी पुरुषों का आत्म संतोष ये सभी धर्म का मूल है। जो कोई किसी भी व्यक्ति का धर्म मनुस्मृतिकार मनु के द्वारा प्रतिपादन किया गया है वे सभी धर्म वेद में कहे गये हैं। क्योंकि वेद समस्त ज्ञानों से परिपूर्ण है। वेद, धर्मशास्त्र महापुरुषों का सदाचार एवं स्वयं अपना हित ये चार प्रकार के धर्म के लक्षण साक्षात् कहे गये हैं। धर्मशास्त्रकार याज्ञवल्क्य के द्वारा भी कहा गया है कि जो वेदशास्त्र के द्वारा विधान किया गया है उसकी अनुपालना नहीं करने से और जिसका वेद के द्वारा निषेध किया गया है उसका सेवन करने से तथा अपने इन्द्रियों का नियमन नहीं करने से मानव आत्म पतन को प्राप्त करता है। अतः मानवों को वेद, धर्मशास्त्र, पुराण आदि वेदानुप्राणित शास्त्रों के अनुरूप आचरण करना चाहिये।

वेद में ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास इन आश्रमों के भेद से चार आश्रम निरूपित किये गये हैं। जिसप्रकार संन्यासाश्रम में दीक्षा ग्रहण के प्रसङ्ग में जिस दिन वैराग्य हो जाय उसी दिन परिव्रज्या दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये। परम वैराग्य होने पर ब्रह्मचर्याश्रम से ही अथवा गृहस्थाश्रम से अथवा वानप्रस्थाश्रम से जिस प्रकार की उत्कटवैराग्योत्तर इच्छा हो उसी प्रकार प्रव्रज्या ग्रहण करनी चाहिये। प्रव्रज्या शब्द संन्यास का पर्याय वाचक है। जैसे कि परिव्राट् संन्यासी को कहते हैं। इस शब्द की व्युत्पत्ति में पुत्र पौत्रादि सगा सम्बन्धी एवं धन धान्य सभी को छोड़कर आश्रमान्तर में चला जाता है उसको परिव्राट् कहते हैं। जैसे कि यस्य चानादरे इस पाणिनीय सूत्र के उदाहरण में रुदतां रुदत्सु वा प्राव्राजीत् यह उदाहरण देकर इसका अर्थ श्रीभट्टोजिदीक्षित के द्वारा संघटित किया गया है कि रोते हुये पुत्र पौत्रादि की उपेक्षाकर परित्याग करके संन्यास ग्रहण कर लिया। धर्मशास्त्रों में भी चार आश्रम कहे गये हैं। ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, और

वेदे ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, संन्यासाश्रम भेदेन चत्वारः आश्रमाः प्रतिपादिताः । यथा प्रव्रज्याग्रहणप्रकरणे यदहरेव विरजेत् तदहरेव परिव्रजेत् । ब्रह्मचर्याद्वा गृहाद्वा वनाद्वा यथा कामं प्रव्रजेत् । प्रव्रज्याशब्दः संन्यासपर्यायः । यथा परिव्राडित्यस्य व्युत्पत्तौ परित्यज्य पुत्र-पौत्रादिकं व्रजति इति परिव्राट् । यथा यस्य चानादरे इति सूत्रस्योदाहरणे रुदतां रुदत्सु प्राव्राजीत् तस्य च अर्थः भट्टोजिदीक्षितेन कृतः रुदन्तं पुत्रपौत्रादिकं परित्यज्य सन्यस्तवानित्यर्थः । स्मृतिष्वपि चत्वारः आश्रमाः प्रोक्ताः ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ संन्यासभेदात् ।

"शास्त्रमेव मतं प्राज्ञैर्धर्मतत्त्वप्रकाशकम् ।
चत्वार आश्रमास्तत्र वैष्णवानां महात्मनाम् ।
संन्यासो वानप्रस्थश्च गार्हस्थ्यं ब्रह्मचर्यकम्"

इति च श्रीवशिष्ठसंहितायामाश्रमधर्मनिरूपणे ।

सन्यस्त उसीप्रकार वेद भी ऋग्यजुस्साम अथर्व भेद से चार प्रकार के हैं और उन-उन वेदों का अलग-अलग लक्षण भी है जैसे कि जिस वेद में अधिकतम ऋचाओं का प्रयोग हैं उसे ऋग्वेद कहते हैं जिसमें अधिकतम गद्यभाग हैं उसे यजुर्वेद कहते हैं जिसमें गीत का भाग अधिक है उसे सामवेद कहते हैं तथा जिसमें उपर्युक्त तीनों ही मिलेजुले हैं उसे अथर्ववेद कहते हैं। वेदों से समर्थित आश्रमों में निवास करनेवाले प्राणियों के जिस किसी आश्रम में उत्कट वैराग्य का प्रादुर्भाव हो जाता है उसी आश्रम से उत्कट वैराग्य प्राप्त पुरुष संन्यास दीक्षा को ग्रहणकर लेता है। अर्थात् संन्यास दीक्षा धारण करने में सर्वप्रथम उत्कट वैराग्य होना अत्यालश्यक है। परम वैराग्य के अभाव में संन्यास दीक्षा ही नहीं हो सकती है। और जिसने संन्यास दीक्षा को प्राप्त कर ली है उस संन्यास ग्रहण संस्कार से सुसंस्कृत पुरुष का आश्रम संन्यासाश्रम कहा जाता है। संन्यासी शब्द का पर्याय वाचक शब्द भिक्षुक शब्द भी है। भिक्षु का अर्थ परम विरक्त संन्यासी पुरुष अर्थ है क्योंकि अमरकोष में संन्यासी शब्द के पर्यायवाचक शब्द लिखते हुये भिक्षु परिव्राट् कर्मन्दी, पाराशर्य और मस्करी ये सभी शब्द लिखे हैं अतः ये पाँच संन्यास के पर्यायवाचक शब्द हैं। उस संन्यासाश्रम में प्रवेश की दीक्षा प्राप्ति से पहले तीव्र वैराग्य की मुख्य कारणता है। क्योंकि परम वैराग्य की अस्थिरता होने पर महान् दोष एवं

तथैव वेदाः अपि चत्वारः ऋग्यजुसामाथर्वभेदात् । अस्ति च तेषां पृथग्लक्षणम् । वेदानुमतेष्वाश्रमेषु वसतां प्राणिनां यस्मिन्कस्मिन्नप्याश्रमे उत्कटवैराग्यस्योदयो भवति तस्मादेवाश्रमात् जातवैराग्यः पुरुषः परिव्रज्यां गृह्णाति । प्राप्तपारिव्रज्यस्य पुरुषस्य आश्रमः संन्यासाश्रमः इत्युच्यते । भिक्षुरपि संन्यासी शब्दस्यैव पर्यायः । "भिक्षुं परिव्राट् कर्मन्दी पाराशर्यपि मस्करी" इति अमरकोषे तस्य संन्यासिना पञ्चपर्यायाः उक्ताः । तत्र संन्यासदीक्षायां तीव्रवैराग्यस्य मुख्या कारणता अस्थिरवैराग्यस्य आश्रमान्तर प्रवेशे आरूढ़पतनात्मको दोषः भवति । तेन स पतितः उच्यते इति पूर्वं सविस्तरं प्रतिपादितम् । वेदस्य ऋक् सामयजुषा विभाजने कृते त्रयीनाम विद्वद्भिरुच्यते । किन्तु इतिहासपुराणानि पञ्चमोवेद उच्यते । इति कथनेन नहि इतिहासादीनां वचनेनैव वेदत्वमायाति, किन्तु वेदानुमतत्वेन तत्तुल्यमहत्व प्रत्यवाय शास्त्रों में कहा गया है । क्योंकि वैराग्य से विचलित होकर यदि किसी कारणवश व्यक्ति का अन्य आश्रम में प्रवेश होता है तो वह व्यक्ति आरूढ़ पतित कहा जाता है। अर्थात् सर्वोन्नत आश्रम में प्रवेशकर गिरा हुआ व्यक्ति जाना जाता है। आरूढ़ पतन एक महान् दोष है इसलिये वह पतित कहा जाता है यह विषय पहले ही विस्तार के साथ प्रतिपादन किया जा चुका है।

वेद का ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के रूपमें विभाजन किये जाने पर तत्त्व ज्ञानी विद्वानों के द्वारा त्रयी यह नामकरण किया गया। किन्तु इतिहास (श्रीमद्वाल्मीकि रामायण तथा महाभारत) एवं अठारह पुराणों को पञ्चम वेद के रूपमें कहा गया है कि इतिहास, पुराण पाँचवाँ वेद है । इस पञ्चम वेदत्व प्रतिपादन के द्वारा वास्तविक में इतिहास पुराण आदि पाँचवाँ वेद ही है यह सिद्ध नहीं होता है लेकिन वेद के सिद्धान्तों से समर्थित होने के कारण जैसा धार्मिक व्यवस्था के लिये वेद का महत्व लोक व्यवहार एवं शास्त्रों में है उसी प्रकार इतिहास पुराण का भी अत्यन्त महत्वशाली होना सिद्ध होता है। उसीप्रकार नाट्य शास्त्राचार्य भरत मुनि के द्वारा विरचित नाट्य शास्त्र में कहा गया कि नाट्य शास्त्र पाँचवाँ वेद है । इस वस्तु को उदाहरण प्रत्युदाहरण देकर विस्तार पूर्वक प्रतिपादन किया गया कि संगीत सामवेद से लिया तो अमुक वस्तु यजुर्वेद से लिया तो इसतरह नाट्य शास्त्र का ग्रन्थकार ने वेदत्व प्रतिपादन किया। किन्तु ग्रन्थकार के कहने

शालिता एव, तथैव भरतमुनेः नाट्यशास्त्रेनाद्यं पञ्चमं वेद इति सविस्तरं प्रतिपादितम् तेन नाट्यशास्त्रस्य वेदत्वं न साधितम्भवति, किन्तु गौणी शुद्धाभेदेनालङ्कारशास्त्रे द्विधालक्षणा भवति । यथा 'सादृश्येतर सम्बन्धाशुद्धास्तां सकला अपि । सादृश्यात्तुमता गौण्यस्तेन षोडशभेदिता' इति वत् यथा राजकुमारेषु तत्सदृशेष्वन्येषु गच्छत्सु अमी राजकुमाराः गच्छन्ति, इत्थं तत्सादृश्यात् तस्य आरोपो विधीयते । एवमेव 'नाट्यं पञ्चमं वेदः' इत्युक्ते वेदवत् सर्वलोकोपकारकमिति प्रतीयते । पाञ्चरात्रागम श्रीव-

मात्र से उसमें वेदत्व सिद्ध नहीं हो जाता है किन्तु वेद सदृशत्व तो सिद्ध ही होता है जैसे की अलंकार शास्त्र में लक्षणावृत्ति का स्वरूप प्रतिपादन करने के पश्चात् गौणी शुद्धा भेद से लक्षणा दो तरह की होती है यह कहा गया। सादृश्य सम्बन्ध को छोड़कर कार्यकारण भाव, बोद्ध्य बाधक भाव, जन्य जनक भाव आदि सम्बन्ध शुद्धा लक्षणा शब्द से कहे गये। किन्तु जहाँ पर सादृश्य सम्बन्ध होता है उसे गौणी लक्षणा कहते हैं और शुद्धा गौणी भेद से भेद करने पर लक्षणा के सोलह भेद होते हैं। यह जैसे औपचारिक प्रयोग होता है उसी प्रकार इतिहास अथवा नाट्यशास्त्र पाँचवाँ वेद है यह गौणी लक्षणा का प्रयोग है।

जैसे कि राजकुमार एवं राजकुमार के समान अन्य कुमारों को राजकुमार के साथ जाने पर ये सभी राजकुमार जा रहे हैं इसप्रकार का राजकुमार के सादृश्य होने के कारण व्यवहार में वाक्य का प्रयोग किया जाता है। यहाँ पर इन कुमारों में परस्पर सादृश्य सम्बन्ध होने के कारण राजकुमारत्व नहीं होने पर भी राजकुमारत्व का आरोप होता है इसलिये अराजकुमार में भी राजकुमार का व्यवहार होता है। इसीप्रकार प्रकृत में नाट्यशास्त्र पञ्चम वेद है, यह अवेदत्व होने पर भी वेद के समान लोक रञ्जन के माध्यम से हितकारी होने के कारण सादृश्य सम्बन्ध से वेदत्व व्यवहार होता है। किन्तु पञ्चमत्व तो सिद्ध नहीं होता है।

श्रीभरद्वाज मुनि के द्वारा वशिष्ठ संहिता में श्रीवशिष्ठ मुनि के प्रति प्रश्न किया जाता है। श्रीवैष्णवों के कितने आश्रम होते हैं-ऐसी जानने की इच्छा भारद्वाज मुनि के द्वारा अभिव्यक्त किये जाने पर महर्षि श्रीवशिष्ठजी के द्वारा कहा जाता है कि-

स्वभाव से ही शास्त्र तत्त्व का मनन करनेवाले श्रीवैष्णवों के लिये तत्वज्ञानी विद्वान् पुरुषों के द्वारा, धार्मिक रहस्यभूत तत्वों का प्रकाशन करनेवाला तत्व शास्त्र ही है

शिष्ठसंहितायां भारद्वाजेन श्रीवशिष्ठं प्रति श्रीवैष्णवाश्रमभेदजिज्ञासा यामभिव्यक्तायां श्रीवशिष्ठेन महर्षिणाभिहितम् यत् प्राज्ञैर्धर्मतत्वप्रकाशकम् शास्त्रमेव मतम् मननशीलानां श्रीवैष्णवानां कृते-

चत्वार आश्रमास्तत्र वैष्णवानां महात्मनाम् ।

संन्यासो वानप्रस्थश्च गार्हस्थ्यं ब्रह्मचर्यकम्,

इति वचनेन चतुर्णामेवाश्रमाणां संख्याप्रतिपादिता । तत्र सात्विकं भक्ष्यं भुञ्जानो ब्रह्मचारीद्विजो गुरुसेवापरायणो द्वादशाब्दं गुरुकुलेवसन् ब्रह्मचर्यं पालयेत् ।

आयुषश्च द्वितीयार्धं कृतदारो गृहीभवेत् ।

आयुषश्च द्वितीयार्धेऽवशिष्टे वानप्रस्थता ।

चतुर्थांशेऽवशिष्टे तु प्रव्रज्याभिहितायुषः ।

यदाचोत्कटवैराग्यं प्रव्रज्येयं श्रुतौ तदा ॥

ऐसा स्वीकार किया गया है। अतः श्रीवैष्णवों के लिये शास्त्रों में चार प्रकार के आश्रम श्रीवैष्णव महापुरुषों के लिये प्रतिपादन किये गये हैं। संन्यासाश्रम, वानप्रस्थाश्रम, गृहस्थाश्रम और ब्रह्मचर्याश्रम ये चार आश्रम हैं। इस महर्षि श्रीवशिष्ठजी के वचन द्वारा चार प्रकार के ही आश्रम की संख्या वतायी गयी है। अर्थात् पाँचवाँ आश्रम नहीं बताया गया है। उन आश्रमों में जिस आश्रम में सत्व गुणानुरूप आहार विहार का उपभोग करते हुए ब्रह्मचारी ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य द्विज़ अपने आचार्य गुरु की सेवा समर्पित भाव से करता हुआ बारह वर्ष पर्यन्त गुरुकुल में निवास करता हुआ ब्रह्मचर्य व्रत का परिपालन करता है, वह ब्रह्मचर्याश्रम है। "शतायुर्वै पुरुषः" एक सौ वर्ष मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन होता है। इस नियम को आधार मानकर आयुष्य के द्वितीय भाग अर्थात् २५ वर्ष की अवस्था के पश्चात् पचास वर्ष की अवस्था पर्यन्त के आयुष्य भाग में अपने वर्णाश्रमानुकूल कन्या के साथ विवाह करके गृहस्थाश्रमी होवे। आयुष्य के द्वितीय भाग के वाद तृतीय भाग अर्थात् ५० वर्ष के आयुष्य के वाद ७५ पचहत्तर वर्ष की अवस्था पर्यन्त वानप्रस्थ आश्रम में विताना चाहिये। आयुष्य का चतुर्थांश अवशिष्ट रहजाने पर जव उत्कट वैराग्य उत्पन्न हो जाय तव संन्यासाश्रम की दीक्षा ग्रहण करना चाहिये इसप्रकार वेद में प्रतिपादन किया है। यहाँ श्रुति से तात्पर्य है कि "वेद प्रणिहितो धर्मः,

तत्र गुरौ ब्रह्मणि मन्त्रे च श्रद्धालवः सत्याहिंसापरायणाः ब्रह्मचर्यपराः श्रीसीतारामप्रपन्नाः पञ्चसंस्कारसंस्कृताः परोपकारिणः संन्यासिनो भवन्ति । ब्रह्मचर्यव्रतं रक्ष्यं गृहस्थान्याश्रमत्रये । एतेन चत्वार एव आश्रमा श्रीसम्प्रदायस्य पञ्चमाचार्यब्रह्मर्षि श्रीवशिष्ठस्याप्यभिमत इति ।

विषयेऽस्मिन् कैश्चित् महानुभावैः साटोपं प्रतिपाद्यते यत् "विरक्तः श्रीवैष्णवाश्रमः पञ्चमः आश्रमः" इति । आश्रमेऽस्मिन् सर्वे भगवत् प्रपन्नत्वात् सर्वे अच्युतगोत्रिणो भवन्ति, वर्णाश्रमाचारविहीनाश्च । वचनं चेमं नारदपाञ्चरात्रोक्तेन कथनेन प्रमापयन्ति, तद्यथा-

अधर्मस्तद्विपर्ययः" वेद द्वारा विहित कार्यकलाप धर्म है, वेद विरुद्ध कार्यकलाप अधर्म है । उस संन्यासाश्रम में निवास करता हुआ मन्त्रोपदेष्टा गुरु, परब्रह्म परमात्मा सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी एवं ब्रह्मतारक षडक्षर श्रीराम मन्त्र इन तीनों के प्रति समान रूपसे परम श्रद्धा सम्पन्न होता हुआ, सत्य एवं अहिंसा परायण रहकर ब्रह्मचर्य व्रत परिपालन तत्पर श्रीसीतारामजी का शरणागत तापपुण्ड्र नाम मन्त्र माला स्वरूप पञ्चसंस्कार से सुसंस्कृत परोपकार व्रत परायण श्रीवैष्णव संन्यासी समुदाय होते हैं । क्योंकि शास्त्रों में कहा गया है कि गृहस्थाश्रम को छोड़कर अन्य सभी तीनों आश्रमों में ब्रह्मचर्य व्रत परिपालन धर्मका संरक्षण अवश्य करना चाहिये । इन वस्तुओं का प्रतिपादन करने से सिद्ध होता है कि चार आश्रम महर्षि श्रीवशिष्ठजी को भी स्वीकार है । अर्थात् इसके अतिरिक्त आश्रम उनको अभीष्ट नहीं है ।

इस विषय में किन्हीं महाशयों द्वारा वडे विस्तार एवं आरोप पूर्वक प्रतिपादन किया जाता है कि "विरक्त श्रीवैष्णव का आश्रम पाँचवाँ आश्रम है । यह पञ्चम आश्रम है अतः सभी वैष्णवगण भागवत कहे जाते हैं क्योंकि भगवत् प्रपन्न होते हैं । इसलिये ये सभी अच्युत गोत्रवाले होते हैं । और इनका कोई भी वर्ण अथवा आश्रम का आचार विचार नहीं होता है । और इस वात को नारद पञ्चरात्र के वचनों से प्रमाणित करते हैं । वह जैसे कि-ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ और संन्यास ये चार प्रकार के आश्रम होते हैं । मुझ परमात्मा का विशेष रूपसे आलम्बन करना यह पाँचवाँ आश्रम है । कहीं क्षेपक में पाँचवाँ वैष्णवाश्रम है ऐसा भी पाठ उपलब्ध होता है यह किसी ने अपने शास्त्र विरुद्ध लक्ष्य सिद्ध करने हेतु प्रक्षेप किया है स्पष्ट ही है । ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र तथा ब्रह्मचर्य गार्हस्थ्य वानप्रस्थ और संन्यास इन वर्णाश्रमों का

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ।
चत्वारो ह्याश्रमा एते पञ्चमो मद्व्यपाश्रयः ॥
(पञ्चमो वैष्णवाश्रमः इत्यपि पाठोऽस्तीति)
प्रायिकोऽयं पाठभेदप्रदर्शनं स्वलक्ष्यसाधनमात्र परकत्वात्-
वर्णाश्रमाभिमानेन श्रुतिदासो भवेन्नरः ।
वर्णाश्रमविहीनाश्च तिष्ठन्ति श्रुति मूर्धनि ॥
तत्र च स्कन्दपुराणोक्तं दत्तात्रेयं प्रति पिङ्गलनागवचनमुदाहरन्ति→
किञ्चित् पृच्छामि भो स्वामिन् त्वं मम क्षन्तुमर्हसि ।
कोऽयं तवाश्रमः केन गुरुणा कथितः पुरा ॥

अभिमान होने से व्यक्ति वेद के अधीन होने के कारण वेद का दास मानव हो जाता है। जो व्यक्ति वर्णाश्रम से विहीन है अर्थात् वर्णाश्रम का बन्धन जिसे नहीं है वह वेद के माथे पर चढकर रहता है। और इसमें स्कन्दपुराण में कहा गया दत्तात्रेय के प्रति पिङ्गल नाग का कथन उदाहरण स्वरूप में प्रस्तुत करते हैं-

हे स्वामिन् मैं आपसे कुछ प्रश्न करता हूँ मेरे प्रश्न करने की धृष्टता को आप क्षमा कर सकते हैं। प्रश्न मेरा यह है कि-आपका यह कौन सा आश्रम है, इस आश्रम का किस के द्वारा उपदेश किया गया है। इस आश्रम के उपदेष्टा गुरु कौन हैं। और वस्त्र विहीन यह युवती आपके गोद में वैठी हुई है तथा आप भी दिगम्बर अवस्था में विद्यमान हैं। यह मार्ग किसके द्वारा बताया गया है यदि आप राज्य आदि की कामना से विहीन हैं तो वेद, शास्त्र औंर पुराणों में प्रसिद्ध ये चार ही आश्रम सुने गये हैं शास्त्रों में उन चार आश्रमों के अतिरिक्त कोई अन्य आश्रम नहीं है ऐसा वेद शास्त्र के विद्वानों के मुख से सुना गया है। दत्तात्रेय उत्तर देते हैं-

हे मुनि पुङ्गव आपका पूर्वोक्त कथन सत्य ही है जो आपके द्वारा चार प्रकार के आश्रम बतलाये गये हैं उन आश्रमों से अतिरिक्त ही यह मेरा पाँचवाँ आश्रम है। यह जड़चेतनात्मक सम्पूर्ण दृष्टिगोचर होता हुआ संसार अपने स्वरूप से अभिन्न रूपमें जो देखता है जो अतिकल्प के द्वारा समस्त जगत को आत्म स्वरूप में अवलोकन करता है उस ज्ञानी पुरुष के लिये यह पञ्चम आश्रम है। जो क्रोध, लोभ, मोह आदि आन्तरिक बन्धनों को काटकर समस्त चराचर जगत के प्राणियों के बीच में सम्यक् प्रकार से रहता

दिगम्बरेयं युवती तवाङ्के त्वं दिगम्बरः ।
मार्गकेनोपदिष्टोऽयं यदि राज्यादलालसः ॥
वेदशास्त्रपुराणेषु श्रुताश्चत्वार एव ते ।
आश्रमस्त्वपरोनान्यः तेभ्यः कश्चिन्मया श्रुतः ॥

卐 दत्तात्रेय उवाच 卐

सत्यमेतन्मुनिश्रेष्ठ ये चत्वारस्त्वयोदिताः ।
आश्रमास्तेभ्य एवायं पञ्चमोहि ममाश्रमः ।
अभिन्नमात्मना रूपं जगदेतत् चराचरम् ।
अतिकल्पेन यः पश्येत् तस्यायं पञ्चमाश्रमः ।
यः क्रोधादीनि च च्छित्वा सर्वभूतेषु संस्थितः ।
वैराग्याश्रितचेताश्च तस्यायं पञ्चमाश्रमः ।
आश्रमेषु चतुर्ष्वेवमस्ति चैतन्मुने मम ।
श्रीमदग्रदासकृत अष्टयामे चोक्तम्-
वैष्णवः पञ्चमोवर्णः वैष्णवः पञ्चमाश्रमः ।
वर्णानामाश्रमाणां च श्रेष्ठः श्रीवैष्णवाश्रमः ॥

हुआ परम वैराग्य के अधीन जिसका अन्तःकरण है अर्थात् जिसका अन्तःकरण उत्कट वैराग्य से अत्यधिक प्रभावित है उस महापुरुष के लिये यह पञ्चम आश्रम है। पूर्व वर्णित चार आश्रमों में जो कुछ है उनसे अतिरिक्त ही यह मेरा आश्रम है।

श्रीमान् अग्रदासजी के द्वारा विरचित अष्टयाम में भी यह कहा गया है कि चार वर्णों के अतिरिक्त वैष्णव यह पाँचवाँ वर्ण है। और चार आश्रमों के अतिरिक्त वैष्णव पाँचवाँ आश्रम है जो समस्त वर्ण एवं समस्त आश्रमों से श्रीवैष्णवाश्रम अतिशय श्रेष्ठ है।

यह श्लोक निश्चय ही किसी श्रीसम्प्रदाय द्वेषी से प्रक्षिप्त है क्योंकि यह श्रीसम्प्रदाय वैदिक है इस सम्प्रदाय के एक द्वाराचार्य वेद विरुद्ध कैसे लिख सकते हैं। स्मृतियाँ सदाचार एवं आचार्य कृति वेद के अविरोध होने पर ही मान्य होते हैं यह सर्व मान्य सिद्धान्त है अतः यह श्लोक प्रक्षिप्त है। इसके विषय में विशेष विचार पुनः कहीं करुंगा। अन्य कितने लोग तो विरक्त वैष्णवों के द्वारा वर्णाश्रम धर्मका परित्याग करदेना चाहिये कहते हैं एवं प्रमाण के रूपमें यह प्रस्तुत करते हैं-देवता,

श्लोकोऽयं प्रक्षिप्तः प्रतिभाति यतः श्रीसम्प्रदायो वैदिकसम्प्रदायः वेदे च पञ्चमाश्रमगन्धाभावात् स्मृतिशास्त्राणां वेदाविरुद्धत्वे एव प्रामाण्यमिति सर्वतन्त्रसिद्धान्तः । तथैव विरक्तवैष्णवैः वर्णाश्रमधर्माणां त्यागः कर्तव्यः देवर्षि भूताप्तनृणांपितृणां न किंकरो नायमृणी च राजन् । सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कृत्यम् ॥ एवमादिभिः प्रमाणाभासैः आश्रमाणां
ऋषि, भूत, आप्तजन, मनुष्य एवं पितरों का श्रीवैष्णव सेवक नहीं होता है। हे राजन् ? इन पूर्वोक्त देवता आदि का वैष्णव ऋणी भी नहीं होता है । जो पूर्ण रूपसे सर्वतोभावेन समस्त शरणागत के संरक्षक एवं आश्रय हैं उनके पास संसार के समस्त कृत्यों का परित्याग करके जो शरणागत हो गया है वह पुरुष केवल भगवान् मुकुन्द का सेवक है अन्य सिकी का सेवक नहीं । इत्यादि जो प्रमाण जैसे प्रतीत होते हैं किन्तु प्रमाण नहीं है ऐसे प्रमाणाभासों के द्वारा पञ्चम आश्रम की सिद्धि को प्रमाणित करने का असफल प्रयास करते हैं। यह प्रयास प्रशंसनीय प्रयास नहीं है केवल एक हठ मात्र है । यह प्रयास तो जैसे कोई गणेश की रचना करने का प्रयास करता हुआ बन्दर की रचना कर वैठे इस कहावत का अनुरोध करके उलटा ही फल को उत्पन्न कर देगा कि पञ्चम आश्रम को प्रमाणों के द्वारा सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। क्योंकि वर्णाश्रम विहीन को भारत वर्ष में चाण्डाल कहा जाता है। वे वेद बाह्य प्रमाणों को प्रस्तुतकर युक्ति के द्वारा पञ्चम आश्रम को वर्णाश्रम बहिर्भूत कह रहे हैं।

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा कहा गया है कि "जो अज्ञानी पुरुषगण ऊपर से मनोहर प्रवीत होनेवाली किन्तु भीतर से सार विहीन इस पुष्पित वाणी को बोलते हैं एवं यह वेदका कथन है इसके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं इसप्रकार से जो प्रतिपादन करनेवाले हैं वे केवल अपनी अभिलाषाओं की पूर्ति करने में तत्पर हैं। स्वर्ग आदि लोकों के प्राप्ति कामुक हैं। जन्म कर्म आदि के फल को प्रदान करनेवाली भिन्न-भिन्न क्रियाओं से परिपूर्ण भोग ऐश्वर्य एवं गति आदि के प्रति आसक्त हैं ऐसे भोग ऐश्वर्य आदि के प्रति आसक्त मानवों के जिनकी चेतना शक्ति भोग आदि की लोलुपता के कारण आकर्षित हो चुकी है उनकी समाधि अवस्था में एक तत्त्व निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती है। अर्थात् विविध प्रकार के भोग लालसाओं में भटकते रहते हैं। इस गीता के कथन का अनुशरण कर जो वस्तु अभीष्ट नहीं है उस वस्तु को सिद्ध हो जाना यह परिणाम हो

पञ्चमत्वं प्रमापयितुं प्रयतन्ते, तन्न प्रशंसनीयतामेति संरम्भः । प्रयासोऽयं-विनायकं प्रकुर्वाणो रचयामासवानरम् । इति आभाणकमनुरुद्ध्यविपरीत फलमेव जनयिष्यति । गीतायामभिहितं भगवता श्रीकृष्णेन-

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः ।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ॥

जायेगा अर्थात् अपना वड़पन सिद्ध करने के लिये चार आश्रमों के ऊपर वेद के शिर पर पाँचवाँ आश्रम है यह सिद्ध करना चाहते हैं किन्तु यह वर्णाश्रम धर्म विरुद्ध है, अवैदिक है अतः लोक ग्राह्य नहीं है यह बात सिद्ध हो जायेगी क्योंकि हम वैदिक धर्मानुयायी भारतीय लोग वेद को परम प्रमाण मानते हैं तथा वेद से अनुमत शास्त्रों को प्रमाण रूप में स्वीकार करनेवाले हैं और श्रीसम्प्रदायीय-श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णव सिद्धान्त वैदिक सिद्धान्त है। वेद के विपरीत सिद्धान्त का प्रतिपादन करनेवाला गौतम बुद्ध के स्वरूप में अवतार धारण किये हुये अर्थात् पृथ्वी पर अवतीर्ण नारायण भी वैदिक सिद्धान्त का अनुव्रजन करनेवाले भारत वर्ष में निवास करनेवाले जन समुदाय के समक्ष अपने सिद्धान्त का समाज के द्वारा अनादर का विषय बनाया गया यह प्रत्यक्ष रूपसे गौत्तम बुद्ध अवलोकन किये। इससे सिद्ध होता है कि वेदशास्त्र के विपरीत एक नया पाँचवाँ आश्रम का सिद्धान्त का अवैदिकत्व सिद्ध हो जाने पर यह श्रीसम्प्रदायीय-श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णव सिद्धान्त भी अवैदिक हों जायेगा। इस श्रीवैष्णव धर्म को वेद विरुद्ध हो जाने पर सरलता पूर्वक यह बात सामने आती है कि यह समाज के आदर का विषय नहीं रहेगा । इसलिये यह पञ्चम आश्रम सिद्ध करने का हठ रखना या स्थापित करने का प्रयास करना हर प्रकार से अनुचित है।

कहा जाता है कि "इतिहास और पुराण पाँचवाँ वेद है" यह कथन तो शूद्रादि का जो वेदाध्ययन के अधिकारी नहीं हैं उनको वेदाध्ययन करने से जो फल उत्पन्न होता है उस फल की उपलब्धि करने के लिये इतिहास पुराणों का निर्माण किये जाने के कारण दोनों के फल में समानता होने से अर्थात् जो फल वेदाध्ययन करने से उपलब्ध होता है वही फल इतिहास पुराणादि के अध्ययन करने से भी उपलब्ध होता है इसतरह गौणी लक्षणा के द्वारा ही वेदत्व कथन है न कि इतिहास पुराण में साक्षात् वेदत्व है। इसीप्रकार यदि विलक्षणता प्रतिपादन करने की इच्छा से पञ्चमत्व का सिद्ध करने का प्रयास हो तो समस्त प्राणी मात्र का प्रपत्ति शरणागति का अधिकार अन्य विरक्त आश्रमों की अपेक्षा

कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् ।
क्रिया विशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥
भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिकाबुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥

इत्यनुसृत्य अनभिमतसाधनफलकः स्यात् । यतोहि वेदानुमत शास्त्रप्रमाणकाः वयम् वैदिकश्च श्रीसम्प्रदाय-श्रीरामानन्दीयश्रीवैष्णव सिद्धान्तः । वेदविरुद्धसिद्धान्तप्रतिपादकः गौतमबुद्धरूपेण भूमावतीर्ण नारायणोऽपि वैदिकसिद्धान्तानुयायिनां भारतवर्षीयाणां जनतानां समक्षे स्वसिद्धान्तमवमाननाविषयीभूतं प्रत्यक्षमवलोकितवान् । तेन वेदशास्त्र विरुद्धस्य पञ्चमाश्रमसिद्धान्तस्य अवैदिकत्वे सिद्धे श्रीसम्प्रदायीयश्रीवैष्णव श्रीवैष्णवाश्रम में विस्तार से है अर्थात् श्रीवैष्णव धर्म के अनुपालन करने का सभी को अधिकार है इस विषय में किसी को मतभेद नहीं है। क्योंकि स्त्री शूद्र से लेकर चाण्डाल पर्यन्त विशुद्ध अन्तःकरण वाले प्राणी सभी साकेतनायक श्रीरामचन्द्रजी के कैङ्कर्य के अधिकारी हैं किन्तु श्रीवैष्णवाश्रम पञ्चमाश्रम है यह कथन तो सर्वथा अनुचित ही है। वेदों में और धर्मशास्त्रों में ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास इन चार ही आश्रमों का प्रतिपादन किये जाने का कारण इनकी संख्या चार ही है पाँच कथमपि नहीं।

प्रमाण का प्रतिपादन करने में वक्ता स्वयं ही पञ्चम आश्रम को वेद तथा धर्मशास्त्र के विरुद्ध कहते हैं और सभी आश्रमों के अपेक्षा श्रेष्ठ प्रतिपादन करना चाहते हैं यह तो वदतोव्याघात है। अर्थात् अपने ही कथन से साध्य का खण्डन हो जाता है। कहीं पर वेद वचन का स्वीकार करना एवं दूसरे जगह पर स्वीकार नहीं करना ऐसे किसी नियम से शून्य व्यवस्था होने पर अर्धजरतीयत्व अर्थात् आधी वृद्धा आधी युवती वृद्धात्व एवं युवतीत्व यौवन एक आधार में होना जैसे सम्भव नहीं होता है वही दोष हो जायेगा। कोई भी भारतीय जनता वेद विरुद्ध आश्रम में निवास करते हैं और वैदिक सिद्धान्त का अनुपालन भी करते हैं ऐसा देखा नहीं जाता है। भगवान् विष्णु वैदिक देवता हैं अर्थात् वेद के द्वारा विष्णुत्व का प्रतिपादन होता है और वेदशास्त्रानुयायियों का विष्णु देव हैं। यही विषय प्रबोधरत्न माला में कहा गया है-

जगदाचार्य श्रीरामानन्दाचार्यजी के द्वारा विधि पूर्वक सम्मानित वेदों द्वारा

धर्मस्यापि च अवैदिकत्वे वेदविरुद्धत्वं सुरामेवापतिष्यति। तस्मात् संरम्भोऽयं सर्वथा अनुचितः एव वेदविरुद्धत्वात् "इतिहासपुराणञ्च पञ्चमोवेद उच्यते" इत्यत्र तु शूद्रादीनां वेदाध्ययनानधिकारिणां वेदाध्ययनजनितफलतुल्य फलावाप्तये तेषां विरचनात् फलसादृश्यात् गौणीलक्षणयैवाभिधानम् न तु साक्षाद्वेदत्वम्। एवमेव वैलक्षण्यबोधनाय सन्तु नाम पञ्चमत्वम्। सर्वेषां प्रपत्तेरधिकाराच्च इतरविरक्ताश्रमापेक्षया श्रीवैष्णवाश्रमे प्रपञ्चता अस्तीत्यत्र न कस्यचिद्विमतिः। यतो हि स्त्रीसूद्रचाण्डालान्ताः शुद्धात्मानः सर्वे श्रीरामकैङ्कर्याधिकारिणः "सर्वे प्रपत्तेरधिकारिणः सदा शक्ता अशक्ता पदयोर्जगत्प्रभोः। अपेक्षते तत्र कुलं बलं च नो न चापि कालो न च शुद्धतापि वै" इत्यानन्दभाष्यकारचरणोक्तेः। किन्तु पञ्चमः आश्रमः इति कथनन्तु सर्वथा अनुचितमेव। वेदेषु धर्मशास्त्रेषु च चतुर्णामेवाश्रमाणां निरूपणात्। प्रमाणप्रतिपादने स्वयमेव वक्ता वेदशास्त्रविरुद्धं पञ्चममाश्रमं कथयति। इति तु वदतो व्याघात एव। कुत्रचिद्वेदवचनस्वीकारः अन्यत्र चास्वीकारः इति नियमरहितायां व्यवस्थायां सत्यामर्धजरतीयन्यायदोषपातात्। नहि केचिद्वेदविरुद्धे आश्रमे निवसन्ति वैदिकसिद्धान्तामनुपालनं च विदधाति। श्रीविष्णुः वैदिकः देवः वेदानुयायिनाञ्च देवः। तदुक्तं प्रबोधरत्नमालायाम्-

प्रशंसित परम मङ्गलकारी श्रीसम्प्रदाय में विरक्तदीक्षा दीक्षितों के हेतु काषाय वस्त्र परिधान की ही व्यवस्था है एवं श्वेत वस्त्र पहनने का भी नियम है एवं अत्यन्त भव्य शिखा सूत्र से युक्त परिलक्षित यह सम्प्रदाय है। लक्ष्मी को आकर्षित करनेवाला श्री तिलक से अलंकृत प्रशंसनीय यज्ञोपवीत से युक्त है। इस श्रीवैष्णव धर्म में अत्यन्त श्रेष्ठ त्रिदण्ड सहित चतुर्थ आश्रम-संन्यासाश्रम माननीय है।

हमलोग वेद को प्रमाण माननेवाले हैं प्रस्थानत्रय पर आनन्दभाष्य के द्वारा अलंकरण करके ही श्रीरामानन्दाचार्यजी के स्वरूप में साक्षात् श्रीरामजी इस भारत धरा पर अवतार लेकर श्रीसम्प्रदाय को परिष्कृत किये। और सभी प्रकार से सुरक्षित किये। इसलिये आनन्दभाष्यकारजी से अपने दिव्य ग्रन्थों में प्रतिपादित ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास भेद से चार ही आश्रम हैं और श्रीवैष्णव संन्यासी चतुर्थाश्रम में निवास करनेवाले ही हैं न कि पञ्चम आश्रम में। जैसे खरगोश का सींग वाँझ

रामानन्दसुमानिते श्रुतिनुते श्रीसम्प्रदाये शुभे
काषायोऽस्ति पटः सितोऽपि विहितो भव्यः शिखासंयुतः ।
श्रीलश्रीतिलकेनभूषिततमोयज्ञोपवीत स्तुतः
संन्यासोऽस्ति वरस्त्रिदण्डसहितो मान्यश्चतुर्थाश्रमः ॥

वेदप्रामाणकाः वयम्, प्रस्थानत्रयम् आनन्दभाष्येण समलंकृत्य एव श्रीरामानन्दस्वरूपेण साक्षात् श्रीरामः अवतीर्य श्रीसम्प्रदायं परिष्कृतवान् परिपालितवाँश्च । तस्मात् ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, संन्यासभेदेन चत्वारः एव आश्रमाः श्रीवैष्णवसंन्यासिनश्च चतुर्थाश्रमवासिनः एव न तु पञ्चमाश्रमवासिनः । शसश्रृङ्गबन्ध्यापुत्रकुर्मक्षीरादिवत् पञ्चमाश्रमस्य स्वीकारः सर्वथा अनुचित एव । श्रीवैष्णवानामच्युतगोत्रोभवतीत्यनेन श्रीरामकिंकराः श्रीवैष्णवाः भगवतः अनन्यसेवकाः इत्येव प्रतिपाद्यते सविधिविरक्तदीक्षादीक्षितानां न तु ते वेदशास्त्रबहिर्भूताः । इत्यलंभागवतस्व रूपाणां मान्यानां कटाक्षनिरूपेणेतिशम् ॥३१॥

इति श्रीपश्चिमाम्नाय श्रृङ्गपुरस्थ जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यपीठाधी शस्य जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेस्वरानन्दाचार्यस्य कृतौ श्रीवैष्णव संन्यासमीमांसायां पञ्चमाश्रमनिषेधनात्मकः प्रकरणः परिपूर्णम् ।

卐 श्रीरामः शरणं मम 卐

का पुत्र, कछुआ का दूध शब्द से भले ही हो लेकिन व्यावहारिक जगत में नहीं होता है ये सव असम्भव है उसीप्रकार पञ्चम आश्रम का स्वीकार भी सर्वथा असम्भव एवं अनुचित ही है । श्रीवैष्णवों का अच्युत गोत्र होता है इससे भगवान् श्रीरामजी के श्रीवैष्णव अनन्य सेवक हैं यही सिद्ध होता है । अच्युत गोत्र कहने से श्रीराम किंकरत्व ही प्रतिपाद्य है न कि वेदशास्त्र बहिर्भूतत्व इतना कहना ही पर्याप्त है भागवत स्वरूप आदरणीय लोगों के प्रति अधिक कटाक्ष करना ठीक नहीं ॥३१॥

इसप्रकार आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी की कृति श्रीवैष्णवसंन्यासमीमांसा में पञ्चमाश्रम निषेध नामक प्रकरण परिपूर्ण हुआ ।

卐 श्रीरामः शरणं मम 卐

॥ अथ यतीनां सदाचारः ॥

दृष्ट्या पूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम् ।
सत्यपूतां वदेद्वाणीं मनः पूतं समाचरेत् ॥१॥

अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कश्चन ।
न चैनं देहमासाद्य वैरं कुर्वीत केनचित् ॥२॥

क्रुध्यन्तं न प्रतिक्रुध्येत् आक्रुष्टं कुशलं वदेत् ।
सप्तद्वारावकीर्णाञ्च न वाचमन्यथा वदेत् ॥

अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः ।
आत्मनैव सहायेन सुखार्थं विचरेद्दिवा ॥

न चोत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्राङ्गविद्यया ।
नानुशासनवादाभ्यां भिक्षां लिप्सेत कर्हिचित् ॥

卐 श्रीवैष्णव संन्यासियों का सदाचार 卐

मार्ग के आगे देखकर दृष्टि से पवित्रकर चरण विन्यास करे अर्थात् आगे कदम बढावे। वस्त्र से छानने के कारण पवित्रकर जल को पीये सत्य से पवित्र वाणी का उच्चारण करे अर्थात् असत्य भाषण न करे। एवं अपने मन से अच्छा बुरा का विचार करने के पश्चात् सम्यक् प्रकार से आचरण करे। यदि कोई अनुचित बोले अथवा वढ़चढ़कर बोले तो संन्यासी पुरुष उसकी प्रतिक्रिया नहीं करे अपितु उसे सहन करे। किसी भी व्यक्ति का कोई भी संन्यासी पुरुष अवमानना नहीं करे। इस शरीर को धारण करके किसी भी प्राणी के साथ शत्रुता नहीं करे अर्थात् किसी का भी विरोध नहीं करे क्रोध करते हुये पुरुष के ऊपर प्रतिक्रिया के रूपमें प्रतिक्रोध नहीं करे। यदि कोई आक्रोश अभिव्यक्त किया हो तो दक्षता पूर्वक उसे अनुकूल वचन कहे। सात द्वारों में विखरी हुई वाणी को उलटी-पलटी नहीं बोले अर्थात् मिथ्या भाषण नहीं करे। आत्मज्ञानानुरागी होकर उदासीन निरामिष भोजी बनकर निवास करे। केवल स्वयं के ही सहयोग से आत्म सुख की कामना से दिन में भ्रमण करे अर्थात् संन्यासी पुरुष रात्रि में भ्रमण नहीं करे। विरक्त पुरुष किसी उत्पाद के कारण अथवा निमित्त विशेष के कारण नक्षत्र विद्या या अङ्ग विद्या के द्वारा उपदेश अथवा वाद विवाद के द्वारा कहीं भी भिक्षा प्राप्ति करने की अभिलाषा नहीं करे। जिस घर में किसी तपस्वी

न तापसैर्ब्राह्मणैर्वा वयोऽभिरपि वा श्वभिः ।
आकीर्णभिक्षुकैर्वान्यैरगारमुपसंव्रजेत् ॥
अभिपूजितलाभांस्तु जुगुप्सेतैव सर्वशः ।
अभिपूजितलाभैस्तु यतिर्मुक्तोऽपि बध्यते ॥
अल्पान्नाभ्यवहारेण रहस्येरासनेन च ।
प्रीयमाणेन विषयैरिन्द्रियाणि निवर्त्तयेत् ॥

के द्वारा भिक्षा की गयी हो अथवा किसी ब्राह्मण द्वारा भिक्षा ग्रहण किया गया हो पक्षियों से अथवा कुत्तों से या भिक्षुकों से यदि याचनीय घर भरा हुआ हो तो उस घर में भिक्षा करने की अभिलाषा से प्रवेश नहीं करे ।

सम्मानित होने के कारण भिक्षा आदि के लाभ की संन्यासी पुरुष सर्वतोभावेन निन्दा करे । अर्थात् सम्मानित होने का लाभ नहीं उठाये । सम्मानित होने के लाभ उठानेवाला संन्यासी मुक्त होने पर भी बन्धन ग्रस्त होता है । थोडा अन्न भोजन करने से और रहस्य स्थान पर निवास करने से सांसारिक भोग्य विषयों से प्रसन्न नहीं होता हुआ विरक्त पुरुष इन्द्रियों के भोग्य विषयों से इन्द्रियों को उदासीन करे अर्थात् विषयों के प्रति अभिलाषुक इन्द्रियों को नहीं होने दे । विरक्त पुरुष इन्द्रियों का नियमन करने से राग और द्वेष का निर्मूलन करने से तथा प्राणियों की अहिंसा से अपने कर्म के प्रति सफलता को प्राप्त करता है । कर्त्तव्य कर्मों के दोष के कारण उत्पन्न होनेवाले मानवों की गतियाँ परलोक में देखी जाती है । एवं कर्त्तव्य दोष के कारण नरक में पतन होता है । तथा यमलोक में यातनायें भोगनी पड़ती है इसलिये विवेकी पुरुष को लोक शास्त्र विरुद्ध कर्त्तव्य किसी भी अवस्था में नहीं करना चाहिये । मनोभिलषित वस्तुओं से वियोग तथा अप्रिय वस्तुओं से सदुपयोग एवं वृद्धावस्था से पराभव, एवं रोगों से उत्पीडन, देह आदि से ऊर्ध्व गमन तथा ऊर्ध्व लोकों से पुनः गर्भ में आगमन अनन्त योनियों में जन्म ये सबकुछ अन्तरात्मा का पतन अधर्म के कारण होता है एवं शरीर धारियों को अधर्म के कारण ही दुःखों का संयोग होता है इसलिये विरक्त ज्ञानी पुरुष को अधर्माचरण से सदैव दूर रहना चाहिये । धर्माचरण के लिये जन्म आनन्द का नित्य संयोग तथा समाधि के द्वारा सूक्ष्म तत्त्व का अवलोकन एवं परमात्मा का साक्षात्कार शरीरों में ही युक्ति अन्वेषण एवं उत्तम मध्यम

इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च ।
अहिंसया च भूतानां कर्मतत्त्वाय कल्पते ॥
अपेक्षते गतीर्नृणां कर्मदोषसमुद्भवाः ।
निरये चैव पतनं यातनाश्च यमक्षये ॥
विप्रयोगं प्रियैश्चैव सुप्रयोगमथाप्रियैः ।
जरया चाभि भवनं व्याधिभिश्चोपपीडनम् ॥

तथा अधम शरीरों में ऊर्ध्वगति का उपायान्वेषण विरक्त महापुरुषों को आवश्यक रूपसे करना चाहिये । इसप्रकार सदाचरण के विषय में मनुस्मृतिकार कहे हैं ।

और विष्णु स्मृति में भी उसी प्रकार विस्तार पूर्वक सदाचार वर्णन किया गया है । इस संसार में मनुष्यों का अक्षय सुखों का संयोग धार्मिक कृत्य के सेवन से ही होता है । इसलिये जो मान एवं अपमान प्रसन्नता एवं उद्वेग को उत्पन्न करनेवाले ये दोनों मानवों के लिये कहे गये हैं अर्थात् सम्मान से जो प्रसन्नता होती है एवं निरादर से जो सामान्य मनुष्य को उद्वेग उत्पन्न होता है ये दोनों ही योगी पुरुषों के लिये विपरीत अर्थवाले हैं । अर्थात् सम्मान से उदासीन रहनेवाला एवं अपमान से प्रसन्न रहनेवाला संन्यासी अपने उद्देश्य में सफल होता है । अर्थात् मान अपमान जो ये दोनों सामान्य मनुष्य के हेतु क्रमशः प्रसन्नता एवं उद्वेगकारी हैं इसके ठीक विपरीत योगी पुरुषों का मान उद्वेगकारी एवं अपमान प्रीतिकारी यदि हो तो ये दोनों सिद्धिकारक होते हैं। जो ये दोनों मान-अपमान हैं वे ही क्रमशः विष और अमृत कहे गये हैं। अर्थात् मान विष है एवं अपमान अमृत है । जिसप्रकार साधारण मनुष्य अपमान करते हैं और निन्दा करते हैं तो उससे अयुक्त होकर अर्थात् मानापमान से प्रभावित न होकर योगी पुरुष यह विचार करता है कि यह अपमान या निन्दा से मेरा स्थान दूषित नहीं होता है इस तरह अनुभव करता है । योगी पुरुष तत्त्वभूत वस्तु का ही संसेवन करे जिससे कि मोक्ष प्राप्त करे । अन्य जो विभिन्न प्रकार की सांसारिक क्रियायें होती हैं वे सव योगियों के सदैव योग में विघ्नकारी होते हैं । जो भी वेदशास्त्र में काम्य कर्म कहे गये हैं । और जो निषिद्ध कर्म कहे गये हैं उन समस्त कर्मों का परित्याग करके नित्यकर्म का सम्यक् प्रकार से परिपालन करे । और इसीप्रकार यम स्मृति में कहा है-

जो यह योगी पुरुष के दाहिनी भुजा को चन्दन से लेपता है और जो वांयी भुजा को काटता है ये दोनों ही कार्य बराबर ही है इस प्रकार योगी पुरुष तत्त्व का

देहादुत्क्रमणं तस्मात् पुनर्गर्भे च संभवम् ।
योनिकूटसहस्रेषु सृतिश्चास्यान्तरात्मनः ॥
अधर्मप्रभवं चैव दुःखयोगं शरीरिणाम् ।
धर्मार्थं प्रभवं चैव सुखसंयोगमक्षयम् ॥
सूक्ष्मतां चान्ववेक्षेत योगेन परमात्मनः ।
देहेषु चैवोपपत्तिमुत्तमेष्वधमेषु च ॥ इति मनुः ॥
तथा च विष्णुस्मृतौ-
मानावमानौ यावेतौ प्रीत्युद्वेगकरौनृणाम् ।
तावेव विपरीतार्थौ योगिनः सिद्धिकारकौ ॥

अवधारण करे। इसीप्रकार प्रिय एवं अप्रिय के विषय में योगी पुरुष की भावना शतत होनी चाहिये। अभिमत वस्तु हो या द्वेष्य वस्तु हो दोनों के प्रति योगी पुरुष को समान व्यवहार करना चाहिये।

साधु पुरुष के प्रति और पापी पुरुष के प्रति जो समान भावना रखते हैं और जो शत्रु के प्रति तथा मित्र के प्रति जो समान भावना रखते हैं। ठण्डी गर्मी तथा सुखदुःख में जिनका समभाव हैं एवं आसक्ति से विशेष रूपसे रहित हैं जो सत्कार पूर्ण व्यवहार को पाकर प्रसन्न नहीं होता है एवं अनादर पूर्ण व्यवहार को पाकर क्रोधित नहीं होता है। जिसके लिये राग और द्वेष दोनों ही समान हैं सभी वस्तुओं से निस्पृह रहनेवाला आकांक्षारहित पुरुष ही वेदशास्त्र का तत्वज्ञानी मुनि कहा जाता है। सुनकर, स्पर्श करके, देखकर, खाकर और सूँघकर जो मनुष्य प्रसन्न नहीं होता है अथवा अप्रसन्न भी नहीं होता है वही पुरुष जितेन्द्रिय कहा जाता है। जिसका हाथ पञ्चल नहीं है अर्थात् किसी का वस्तु लेने के लिये जो आकुल नहीं होता है और जिसका पैर चञ्चल नहीं है अर्थात् लोलुपता के कारण जो इधर-उधर भटकता नहीं है और जिसका आँख चञ्चल नहीं है अर्थात् रूप माधुर्य के कारण जो आकर्षित नहीं होता हो। जिसकी त्वचा चञ्चल न हो अर्थात् स्पर्श जनित सुख का लोभी न हो और नासिका जिसकी चञ्चल न हो अर्थात् सुगन्धि का लोभी नहीं हो एवं वाणी जिसकी चञ्चल न हो अर्थात् शास्त्र सम्मत वचन ही बोले असंगत वचन नहीं बोले ऐसे पुरुष को ही शिष्ट पुरुष कहा जाता है अर्थात् उपर्युक्त गुणों का होना शिष्ट पुरुष

मानावमानौ यावेतौ तावेवाहुर्विषामृते ।
अवमानोऽमृतं तत्र मानस्तु परमं विषम् ॥
यथा चैवावमन्यन्ते जनाः परिवदन्ति च ।
तावयुक्तश्चरेद्योगी स्थलं मम न दुष्यते ॥
सारभूतमुपासीत येन मुक्तिमवाप्नुयात् ।
क्रियाऽन्या बहुधा या तु योगविघ्नकरी सदा ॥
काम्यानि यानि कर्माणि प्रतिषिद्धानि यानि च ।
तानि तानि परित्यज्य नित्यकर्म समाचरेत् ॥

तथा च यमस्मृतौ-
यश्चास्य दक्षिणं बाहु चन्दनेनानुलिप्यति ।
सव्यं वास्य च यस्तक्षेत् समौ ताववधारयेत् ॥

का लक्षण है। पुराणों का सुनना, सुने हुये विषयों का मनन पूर्वक पुनः-पुनः अभ्यास भक्ति पूर्वक प्रतिदिन करे। पुराण सुनने पर मूर्ख पुरुषों को भी भक्ति उत्पन्न हो जाती है अतः अविच्छिन्न भक्ति से युक्त होकर पुराणों का अभ्यास करे। पुराणों का पुनः-पुनः पठन करने से मुनि परब्रह्म परमेश्वर श्रीरामचन्द्रजी में उत्कृष्ट भाव को प्राप्त करता है। शुद्ध अन्न एवं अन्न के प्राप्त होने के स्थान पात्र आदि शुद्ध होने से एवं विशेष प्रकार का स्वाद रहित होने से अन्तः सत्व निर्मल होता है एवं मलिन होने से मलिन होता है। अर्थात् अन्न पवित्र हो एवं अन्न दाता व्यक्ति पवित्र हो। विभिन्न घरों से संञ्चित किया गया हो इस कारण उसमें एक स्वाद नहीं होगा अनेक प्रकार के मिला जुला स्वाद होगा। उस अन्न से अन्तःकरण विशुद्ध होता है दाता अन्न आदि दूषित होने से अन्तःकरण अपवित्र होता है। मांस शोणित का समूह, मेदा, मज्जा, हड्डी आदि का ढेर नख एवं रोम से मिश्रितवसा आदि जिसमें कीचड है। मूत्र एवं विष्ठा से भरा हुआ दूषित गन्धवाला चमडा से बन्धा हुआ यह शरीर वायु से परिपूर्ण जिसका स्थान है। मलका जो आधार है अर्थात् जिसमें कोई भी तत्त्व महत्वपूर्ण नहीं है। ऐसे दीवार में बना हुआ चित्र के समान पानी के बुलबुला के समान नश्वर नित्य आत्मा एवं अनित्य शारीरिक तत्व से मिला हुआ राग द्वेष आदि शारीरिक तत्त्वों का संघात जिसमें एक स्तम्भ है नौ द्वार है तीन खूटे हैं इसप्रकार का यह पाञ्चभौतिक शरीर है वह स्नेह

एवमस्य भवेद्भावो नित्यमेव प्रियाप्रिये ।
इष्टो वा यदि वा द्वेष्यः समः सर्वत्र वर्त्तयेत् ॥
समः साधौ च पापे च शत्रौ मित्रे च वै समः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥
न प्रहृष्यति सन्माने नापमाने च कुप्यति ।
रागद्वेषौ समौ यस्य स मुनिः सर्वनिःस्पृहः ॥
श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च मुक्त्वा घ्रात्वा च योनरः ।
न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः ॥
न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलो भवेत् ।
न च त्वक्चपलो वापि न घ्राणचपलो भवेत् ॥
न च वाक्चपलोवास्यादिति शिष्टस्य लक्षणम् ।
पुराणश्रवणाभ्यासं भक्तितो नित्यमाचरेत् ।

के चारदिवारी से घिरा हुआ है। मन की प्रबलता ही कार्य करता है विशेष प्रकार के भोग्य विषयों से आक्रान्त चेतना से अधिष्ठित वृद्धावस्था और शोक से अत्यधिक प्रभावित रोगों का आयतन विकलता युक्त-रजोगुण से भरा हुआ विनाश स्वभाव वाला और आयाश से भरा हुआ इस शरीर को अर्थात् देहाभिमान को त्याग दे। स्नान, जप, तथा ध्यान, शौच, आहार की लघुता, इन सवको जो पुरुष धारण करता है वही पुरुष मुक्त हो सकता है। अन्य किसी प्रकार से मुक्त नहीं हो सकता। परिव्राजक संसार के सभी प्राणियों को अपनी ओर से अभय दान देकर संन्यासाश्रम की ओर प्रस्थान करता है। और जो मुनि संसार के समस्त प्राणियों को अभय दान देकर आवागमन करता है उस संन्यासी पुरुष को संसार में कभी भी किसी भी प्राणी से भय नहीं है। समस्त प्राणियों के लिये अभय दान देकर जो निवृत्त होता है वह प्राणी मात्र से निर्भीक होकर रहता है।

महाभारत में श्रीवैष्णव संन्यासियों का संसार में सभी के अपेक्षा अधिक पूज्य होने के विषय में कहा गया है कि भगवान् विष्णु पाण्डवों से कहते हैं कि जहाँ पर श्रीवैष्णव संन्यासी पुरुष रहता है मैं वहीं पर रहता हूँ। अतः मुझे परिव्राजक पुरुष समझो। परिव्राजक पुरुष की पूजा करने पर परब्रह्म परमेश्वर मैं श्रीकृष्ण पूजित होता हूँ।

पुराणश्रवणेभक्तिर्मूर्खस्यापि प्रजायते ।
भक्त्या विच्छिन्नया युक्तस्तस्मात्पौराणमभ्यसेत् ।
तदभ्यासात्परंभावमापद्येत दृढं मुनिः ॥
अन्नाच्छुद्धागमाच्छुद्धाद्विशेषरसवर्जितात् ।
निर्मलं जायते सत्वं मलिनं मलिनाद्भवेत् ।
मांसशोणितसंघातं मेदोमज्जास्थिसंचयम् ।
नखरोमसमायुक्तं बसाप्रभृतिकर्दमम् ॥
पूर्णं मूत्रपुरीषाभ्यां दुर्गन्धं चर्मबन्धनम् ।
देहोऽनिलमयंधाम मलाधारमसारकम् ॥
चित्रभित्तिप्रतीकाशमपांफेनोपमं परम् ।
नित्यानित्यसमायुक्तं रागद्वेषसमुच्चयम् ॥
एकस्तभ्भे नवद्वारं त्रिस्थूणं पाञ्चभौतिकम् ।
प्रीतिप्राकारसंयुक्तं मनः प्राबल्यकारकम् ॥
विशेषविषयाक्रान्तं चेतनाधिष्ठितं परम् ।
जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम् ॥

एवं मुझे पूजित होने पर वेदशास्त्र प्रसिद्ध समस्त देवता पूजित हो जाते हैं। इसका अभिप्राय हुआ कि भगवान् विष्णु सर्व देवमय हैं और विरक्त श्रीवैष्णव संन्यासी में विराजमान रहते हैं। अतएव विरक्त श्रीवैष्णवसंन्यासी भी सर्वदेवमय हैं। उनकी पूजा सत्कार सेवा करने पर सभी देवताओं के पूजा, सत्कार सेवा आदि का फल मिलता है। एकवार ही एक श्रीवैष्णव संन्यासी के भोजनकर लेने पर अनन्त कोटि गुणा सत्कर्म का फल मिलता है तो बहुत श्रीवैष्णवों के भोजन करने से कितना फल गिलेगा इसकी कोई सीमा नहीं है। संक्रान्ति के दिन, ग्रहण के दिन तथा व्यतीपात एवं क्षयाह के दिन में श्राद्धकाल समझना चाहिये। वह श्राद्धकाल तब होता है जब गृहस्थ के घर में श्रीवैष्णवसंन्यासी का आगमन होता है। अतः श्रीवैष्णवसंन्यासी पुरुष के अपने घर में आगमन होने पर समस्त पुण्यफलों की प्राप्ति के लिये अवश्य ही पूजा सेवा करनी चाहिये। कोई पुण्य अवसर हो अथवा नहीं हो जिसके घर में श्रीवैष्णवसंन्यासी पुरुष का आगमन होता है उस समय अपने पूर्वजों को उद्देश्य करके अपने पितरों की तृप्ति कामना

रजस्वलमनित्यं च भूतायासमिमं त्यजेत् ।
स्नानं जपं तथा ध्यानं शौचमाहारलाघवम् ॥
य एतत्पञ्चकं कुर्यान्मुक्तो भवति नान्यथा ॥
परिव्राजकः सर्वभूताभयं दत्वाप्रतिष्ठते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा यश्चरते मुनिः ॥
तस्यापि सर्वभूतेभ्यो न भयं जातु विद्यते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा यस्तु निवर्त्तते ॥
यतीनां पूज्यत्वं महाभारते उक्तम्-
यत्र भिक्षुरहं तत्र तं च मां विद्धि पाण्डव ।
पूजिते पूजितोऽहं वै पूजिताः सर्वदेवताः ॥
सकृदेकेन भुक्तेन कोटि कोटि गुणं भवेत् ।
किं पुनर्बहुभिर्भुक्तैस्तेभ्यः संख्या न विद्यते ॥
संक्रान्तौ ग्रहणेचैव व्यतीपाते दिनक्षये ।
श्राद्धकालः सविज्ञेयो भिक्षौ तु गृहमागते ॥

करनेवाले पुरुषों को अवश्य ही भोजनादि प्रदान कर देना चाहिये ।

इस सन्दर्भ में शातातप स्मृतिकार भी कहते हैं कि वटुक पुरुष के उद्देश्य करके दिया हुआ दान समान मात्रा में फलदायी होता है। गृहस्थ पुरुष को दिया गया दान द्विगुण फलदायी होता है एवं वानप्रस्थ आश्रम में निवास करनेवाला पुरुष को दिया गया दान त्रिगुण होता है और संन्यस्त पुरुष को दिया गया दान अनन्त फलदायी होता है।

और कात्यायन स्मृतिकार भी कहते हैं जो सांसारिक सभी प्रकार की आसक्ति का परित्याग करदिये हैं ऐसा श्रीवैष्णवसंन्यासी पुरुष यावज्जीवन काम, क्रोध, लोभ, मोह मान, मद, ईर्ष्या आदि दोषों को यावज्जीव परित्यागकर दे एवं इसप्रकार विरक्त जीवन का नित्य निर्वाह करता हुआ यति परब्रह्म परमेश्वर श्रीरामजी को प्राप्त करता है।

शुक्र स्मृति में भी कहा गया है कि सांसारिक समस्त आसक्तियों का त्याग करनेवाला क्रोध के ऊपर विजय प्राप्त करनेवाला, स्वल्प मात्रा में आहार करनेवाला, समस्त इन्द्रियों को एवं अपने मनको समाधि में लगावे । अर्थात् बुद्धि पूर्वक मनको भगवान् श्रीरामचन्द्रजी में एकाग्र करे ।

काले वा यदि वा काले भिक्षुर्यस्य गतो गृहम् ।
पितृनुद्दिश्यदातव्यं पितृणां तृप्तिमिच्छताम् ।

शातातपश्चाह-
वटौ तु समदत्तं स्याद् गृहस्थे द्विगुणं भवेत् ।
वानप्रस्थे तु त्रिगुणं यतौ दत्तमनन्तकम् ॥

कात्यायनश्चाह-
कामक्रोधादिकान्दोषान्वर्जयेद्यावदायुषम् ।
एवं स वर्त्तयन्नित्यं ब्रह्मसम्पद्यते यतिः ॥

उशनाश्चाह-
मुक्तसङ्गोजितक्रोधो लब्ध्वाहारोजितेन्द्रियः ।
विधायबुद्धिद्वाराणि मनोध्याने निवेशयेत् ॥

व्यासश्चाह-
यत्पूर्वमभिनिर्दिष्टमात्मज्ञानं मया पुरा ।
तत्सर्वं यत्नतोऽभ्यस्येत्सर्वसङ्गविवर्जितः ॥

लोकयात्रां प्रयत्नेन वर्जयेदात्मचिन्तकः ।
नानोपनिषदोयत्नादभ्यस्येन्मुक्तिहेतवे ॥

आपस्तम्बश्चाह-
शून्यागारेषु घोरेषु भवत्याखुः सुदारुणः ।
सोऽचिराज्जायते गर्भेश्वास्याद् द्वादशजन्मसु ॥

और व्यास स्मृतिकार कहते हैं कि मुझसे पूर्वकाल में जो आत्मज्ञान के विषय में विवेचन किया गया है उन सभी का पूर्ण प्रयास के साथ सांसारिक सभी प्रकार के आसक्तियों से शून्य होकर पुनः-पुनः अभ्यास करे। लौकिक व्यवहार का पूर्ण प्रयास के साथ आत्मचिन्तक पुरुष सर्वथा परित्याग करे। विभिन्न प्रकार के उपनिषदों को अपनी मुक्ति की कामना से अभ्यास करता रहे।

आपस्तम्ब स्मृतिकार भी कहते हैं इस भौतिक संसार में जो व्यक्ति मैं संन्यास दीक्षा धारण करूँगा इसप्रकार की पहले प्रतिज्ञा करके पीछे संन्यास दीक्षा धारण नहीं करता है ऐसा मिथ्या वचन से जला हुआ वह व्यक्ति घोर अन्धकार में डूबता है एवं

भासो विंशतिवर्षाणि नववर्षाणि शूकरः ।
अपुष्टोऽप्यफलोवृक्षो जायते कण्टकावृतः ॥
इह पूर्वं प्रतिज्ञाय संन्यासं न करोति यः ।
मिथ्यावचनदग्धोऽसौ सोऽन्धेतमसि मज्जति ॥

लिखितस्मृतौ चोक्तम्-

नानध्यात्मग्रन्थरतिर्नच ज्यौतिषिको भवेत् ।
न व्याधिभूतवैतालांश्चिकित्सेद्धर्मतोऽपि च ॥

मृत्यु के पश्चात् भयावह शून्य घरों में भयंकर चूहा के स्वरूप में जन्म धारण करता है तत्पश्चात् थोड़े ही दिनों के वाद में पुनः मरकर गर्भ में जाता है तथा बारह जन्मों तक कुत्ता की योनि में जन्म लेता है इसके बाद बीस वर्षों तक भासपक्षी होता है। नौ वर्षों तक शूकर योनि में जन्म लेता है। पुनः जिसमें फूल और फल नहीं हो इसप्रकार का कण्टकाकीर्ण वृक्ष के रूप में जन्म लेता है अतः संन्यास दीक्षा धारण करने की प्रतिज्ञा करके अवश्य ही संन्यास दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

और लिखित स्मृति में भी कहा है विरक्त श्रीवैष्णव संन्यासी को अध्यात्म ग्रन्थों से अतिरिक्त ग्रन्थों में अनुरक्त नहीं होना चाहिये। एवं नक्षत्र विद्या ज्ञानी ज्योतिषी भी नहीं बने। एवं रोग, भूत, वैताल, आदि का चिकित्सक भी नहीं बने। अधिक शिष्यों का संग्रह नहीं करे तथा आत्म विद्या का प्रकाशन भी नहीं करे। लोकरञ्जक संस्कार पूर्ण वाणी नहीं बोले एवं बालक तथा गूँगा व्यक्ति के समान आत्मविद्यारत होकर जीवन निर्वाह करे। परिव्राजक वृत्ति धारण करने के पश्चात् सदैव संन्यास धर्म का तीन वर्षों तक पालन करते हुये समाधि निष्ठ होकर जो इसप्रकार सदैव रहता है वह इस शरीर को त्याग करने के पश्चात् मोक्ष को प्राप्त करता है। इसलिये भगवान् के परम पद सभी लोकों का सर्वोत्कृष्ट स्थान साकेतधाम के भगवत्कैङ्कर्य रूप नित्यपार्षदत्व के ऐश्वर्य की कामना करे। भले ही कैवल्यदायक संन्यासाश्रम को प्राप्त करके तीन दिन भी रहे पर आश्रमोचित धर्म पालन करके शरीर त्याग करने पर नित्यपार्षदत्व को प्राप्त करता है।

देवल स्मृति में तो कहा गया है कि जिस सन्यस्त पुरुष के लिये शत्रु और मित्र दोनों ही समान हैं। शास्त्र वर्जित परिग्रहों से जो रहित है जो ब्रह्मचर्य व्रत को

न शिष्यसंग्रहं कुर्यान्न स्वविद्यां प्रकाशयेत् ।
संस्कृतान्न वदेद्वाणीं बालवन्मूकवच्चरेत् ॥

संन्यस्य यतिधर्मांश्च कुर्वाणो वत्सरत्रयम् ।
योगनिष्ठः सदा भूत्वा मोक्षं प्रेत्य स विन्दति ॥

तस्मादैश्वर्यमाकांक्षेत् तद्विष्णोः परमं पदम् ।
कैवल्याश्रममासाद्य चरेद्दिनमपि त्रयम् ॥

देवलस्मृतौ तु अभिहितम्-

तुल्यारिमित्रो निष्परिग्रहो ब्रह्मचारी माङ्गल्यव्यवहारे जीवशिक्षारत्न धनधान्यविषयोपभोगसम्पर्केषु दर्पमायामोहहर्षविरोधविस्मयविवादतर्जनादि वर्जनमिति यतिधर्मः ।

परिपालन करनेवाला है मङ्गलजनक व्यवहार में जीवों को शिक्षा देने के लिये रत्न, धन, धान्य, सांसारिक विषयों का उपभोग से सम्पर्क, अभिमान, माया, मोह, हर्ष, विरोध, आश्चर्य, विवाद, किसी को डराना, धमकाना आदि परिव्रज्या के विरुद्ध कर्त्तव्यों से रहित शास्त्र विहित कर्त्तव्य करना संन्यास धर्म है ।

भोजन और औषधि ये दोनों का सेवन विरक्त श्रीवैष्णव संन्यासी पुरुष सद्गृहस्थ के ही घर में करे । और प्रतिदिन भोजन हेतु भिक्षा करे । उतनी ही मात्रा में भिक्षा करे जिसमें कि कुछ भी शेष नहीं रहे । संन्यासी पुरुष प्रतिदिन भोजन और औषधि को तत्काल के लिये ही ग्रहण करे । संग्रह करने हेतु ग्रहण नहीं करे । यदि मोह ममतावश अपने लिये आहार औषधि आदि को इकट्ठा करके रखता है तो वह नरक गामी होता है। जो मोक्ष मार्ग में प्रवृत्त ऐसे साधु पुरुषों के माध्यम से धर्म सञ्चय हेतु साधनों को संग्रहीत करे । जो निवृत्त पुरुष हैं अर्थात् जिसके मोक्ष आदि की ओर गति नहीं है ऐसे पुरुषों से असावधानीवश भी किसी तरह का धर्म साधन ग्रहण नहीं करना चाहिये । संसार के सभी धर्मों का पूर्ण रूपसे परित्याग करके यतिधर्मों का परिपालन करे । यतिधर्म से जो व्यक्ति पुनः परिभ्रष्ट हो जाता है वह किसी भी धर्मों के फल को प्राप्त नहीं करता है । इसी वस्तु को देवल ने कहा है कि कृष्णपक्ष की चतुर्दशी से लेकर शुक्लपंक्ष की प्रतिपद से पूर्व जो तिथि है उसे ऋतु सन्धि कहते हैं । उस ऋतु सन्धि काल में विरक्त श्रीवैष्णव संन्यासी पुरुष को यदि पञ्चकेशधारी नहीं हो तो क्षौरकर्म कराना चाहिये । और लिखित स्मृतिकार कहते हैं-

आहारमौषधं चैव सद्गृहस्थगृहे यतिः ।
प्रत्यहं चैव भिक्षेत यथा शेषं न तिष्ठति ॥
आहारमौषधं चैव तत्कालार्थं हितं यतिः ।
आत्मार्थं धारयेन्मोहान्नरकं प्रतिपद्यते ॥
आददीत प्रवृत्तेभ्यः साधुभ्यो धर्मसाधनम् ।
नाददीत निवृत्तेभ्यः प्रमादादपि किञ्चन ॥
सर्वधर्मान्परित्यज्य यतिधर्मं समाचरेत् ।
यतिधर्मात्परिभ्रष्टो न धर्मफलमश्नुते ॥

अथ वपनादयः प्रायश्चित्तसहिताः कथ्यन्ते-तदाह देवलः-
ऊर्ध्वं सितचतुर्दश्याः प्रतिपद्यधरातिथिः ।
ऋतुसन्धिः स विज्ञेयो वपनं तत्र कारयेत् ॥

लिखितश्चाह-
ऋतुसन्धिषु सर्वत्र चतुर्मास्यान्तरं विना ।
पौर्णमास्यां शिखाः वर्जं मुण्डयेत शिरो यतिः ॥

सभी ऋतु सन्धि कालों में चातुर्मास्य के पश्चात्, अर्थात् चातुर्मास्य काल को छोड़कर समस्त ऋतु सन्धि में अर्थात् प्रत्येक अमावास्या तिथि को और पूर्ण मासी तिथि को शिखा को छोड़कर श्रीवैष्णव संन्यासी पुरुष को मुण्डन कराना चाहिये । यदि कथञ्चित् व्याधि आदि से ग्रस्त हो अथवा अन्य कोई कारण हो या राजोपद्रव अथवा चोरी आदि का उपद्रव हो तो आनेवाली आगामी जो पौर्णमासी आदि तिथि हो जबतक कृष्णपक्ष की पञ्चमी न हो जाय तबतक शिखा को छोड़कर क्षौर कर्म करा लेना चाहिये ।

मनु स्मृतिकार भी कहते हैं-जो नख केश दाडी मूँछ का मुण्डन करा लिये हैं पात्र दण्ड एवं काषाय वस्त्र को धारण करते हैं । नियमानुसार किसी भी प्राणी को किसी प्रकार की पीड़ा नहीं देते हुये प्रतिदिन विचरण करे । धर्मशास्त्रकार देवल कहते हैं कि-यदि कथञ्चित् असावधानीवश अमावास्या पूर्णिमा आदि पर्व सन्धि में मुण्डन कराते समय शिखा रखकर मुण्डन कराने के नियम का उल्लङ्घनकर शिखा सहित मुण्डन करा ले तो विरक्त श्रीवैष्णव संन्यासी पुरुष प्रमादवश नियम उल्लङ्घन के कारण कृच्छ्र प्राजापत्य

अलभ्ये व्याधिविद्धाभ्यां राजचौराद्युपद्रवे ।
वापर्यत्पौर्णमास्यादि यावत्स्यात्कृष्णपञ्चमी ॥

मनुः-
कृत्तकेशनखश्मश्रुः पात्रीदण्डी कुसुम्भवान् ।
विचरेन्नियतो नित्यं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥

देवलः-
मौण्ड्यं शिखा विकल्पं वा यदि लुम्पेत्प्रमादतः ।
प्राजापत्येन कृच्छ्रेण शुद्ध्यते नात्र संशयः ॥

गालवः-
त्रिस्थानलोमवपनं कृत्वा प्राजापत्यं कृत्वा प्राणायामशतं कुर्यात् ।

त्रिदण्डजलपवित्रसंयोगविषये गालवश्चाह-जलपवित्रादानं बन्धनं च प्रणवेन कुर्यात् । त्रिदण्डजलपवित्रवियोगं न कुर्यात् । प्रमादाद्वियोगकरणे आचम्य प्राणायामत्रयं कृत्वा पुनराचमेत् । स्नानभोजनकाले तु त्रिदण्डवियोगं व्रत करने के पश्चात् ही शुद्ध होता है । अतः श्रीवैष्णव संन्यासी को शिखा छोड़कर ही मुण्डन कराना चाहिये । इसमें सन्देह नहीं । गालव धर्मशास्त्रकार का वचन है कि-कक्ष उपस्थ आदि तीन स्थानों के लोमका वपन (काटते हैं) करते हैं तो यह दूषित कार्य करके प्राजापत्य व्रत करे । तथा प्राजापत्य करके एक सौवार प्राणायाम प्रायश्चित्त रूपमें करे ।

त्रिदण्ड एवं जल पवित्र के विषय में गालव स्मृतिकार कहते हैं कि-जल पवित्र का ग्रहण एवं बन्धन ॐ कार मन्त्र अर्थात् प्रणव का उच्चारण करके करे । त्रिदण्ड एवं जल पवित्र को कभी भी अलग नहीं करे यदि अनवधानता (असावधानीवश) ये त्रिदण्ड और जल पवित्र कथञ्चित् अलग हो जाय तो आचमन करके तीनवार प्राणायाम करके पुनः आचमन करे स्नान-शौच भोजनादि काल में त्रिदण्ड वियोग स्वाभाविक है पर अन्य काल में प्रमादवश वियोग हो जाय तो आचमनकर तीनवार प्राणायामकर पुनः आचमन करे । कमण्डलु एवं जल पवित्र पात्रों का आपस में संघर्ष या खण्डित हो जाय तो उन दोनों का तत्काल परित्यागकर नियमानुसार दूसरा धारण करना चाहिये ।

स्वाभाविकमतस्तन् न दोषभागन्यकालेतु न कुर्यात् । प्रमादात्करणे अप आचम्य प्राणायामत्रयं कृत्वा पुनराचामेत् । कमण्डलुजलपवित्रपात्रसंधर्षणे सद्यस्त्यागो विधीयते । दण्डदूषणे-

दण्डं मन्त्रेण गृह्णीयाज्जप्त्वा पौरुषसूक्तकम् ।
इतरेषां तु राजेन्द्र सद्यस्त्यागो विधीयते ॥
न दण्डेन विना ग्रामे गृहाद् गृहमपि व्रजेत् ।
प्राणायामांस्तथा कुर्यात् वने चाध्वव्यतिक्रमे ॥
यद्यदण्डोगृहं गच्छेद्वनं वा त्विषुमात्रतः ।
नीडं प्रतिनिवर्तेत प्राणायामास्त्रयं ततः ॥

दण्ड को दूषित हो जाने पर-सहस्त्रशीर्षा आदि सोलह ऋचाओं वाला सूक्त पढकर विधिपूर्वक दूसरे दण्डों को मन्त्रोच्चारण पूर्वक धारण करे। अन्य साधनों को दूषित हो जाने पर सद्यः त्यागकर देने का विधान किया गया है। श्रीवैष्णव संन्यासी पुरुष विना दण्ड धारण किये एक घर से दूसरे घर पर्यन्त भी नहीं जाय, तथा वन में मार्ग का विशेष प्रकार का उल्लङ्घन होने पर प्राणायाम का आचरण करे। यदि श्रीवैष्णव संन्यासी पुरुष विना दण्डधारण किये हुए किसी घर में जाय अथवा एक क्षण पर्यन्त भी वन में जाय तो अपने आवास स्थल पर लौटकर आजाय, तत्पश्चात् तीनवार प्राणायाम करे। त्रिदण्ड आसन पात्र आदि का किसी भी कारण से वियोग नहीं होना चाहिये। अर्थात् त्रिदण्ड आदि के विना नहीं रहना चाहिये। यदि इनमें से किसी भी वस्तु का वियोग हो जाय तो इसके सम्बन्ध में प्रायश्चित्त कहते हैं→ विरक्त श्रीवैष्णव संन्यासी पुरुष त्रिदण्ड का वियोग होने पर एक सौ प्राणायाम समाचरण करे।

हे जानकीवल्लभ हे अनन्त हे जगन्निवास हे श्रीराम हे राजेन्द्र आपको भूयो भूयः प्रणाम है। हे प्रभो हे नाथ आप मुझ अनाथ को सदैव सनाथित करें। हे साकार श्रीरामजी दीनों पर दया करनेवाले आप मुझपर दया करें। राजाधिराज के पुत्र परात्पर ब्रह्म स्वरूप स्वच्छ सुप्रसन्न मुखकमल से शोभित शरणागत प्रिय श्यामल मनोहर स्वरूपधारी श्रीरामचन्द्रजी के लिये मेरा सदैव प्रणाम है जो सदैव अभिमत फल प्रदान करते हैं। हे नाथ आपके चरणपादुका का मैं प्रेम पूर्वक पूजन करता हूँ। हे कृपालु

त्रिदण्डासनपात्रादेर्न वियोगः कथञ्चन ।
वियोगात्पतते भिक्षुः प्रायश्चित्तं तदुच्यते ॥

त्रिदण्डस्य वियोगे तु प्राणायामशतं चरेत् ।

श्रीवल्लभानन्त जगन्निवास ? श्रीराम ? राजेन्द्र ? नमोनमस्ते ।
सदा सनाथं कुरुमामनाथं, नाथप्रभोदीनदयालुमूर्त्ते ॥१॥

राजेन्द्रपुत्राय परात्पराय, स्वच्छाय सस्मेरशुभाननाय ।
श्यामाय रामाय सह प्रियाय, नमः सदाभीष्टफलप्रदाय ॥२॥

प्रीत्यार्चनं ते करवाणि पादुकां, प्रदेहि मह्यं कृपया कृपालो ।
सह प्रियस्त्वं हृदये वस प्रभो, मुखे यशो नाम गुणानुवादम् ॥३॥

दयालो जानकीनाथ ? महाराजकुमारक ? ।
अभीष्टं कुरु हे नाथ शरणागतवत्सल ? ॥३२॥

इत्यानन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यस्य कृतौ श्रीवैष्णवसंन्यासमीमांसायां यतीनां सदाचारनामकः प्रकरणः परिपूर्णम् ।

श्रीरामः शरणं मम

आप अपनी चरणपादुका पूजा करने के लिये मुझे प्रदान करें । आप साहचर्य प्रिय हैं अतः मेरे हृदय में निवास करें एवं मेरे मुख से आपका नाम तथा गुण एवं सत् कीर्ति का उच्चारण होता रहे ।

हे परम दयालु श्रीजानकीनायक महाराज श्रीअयोध्याधीश श्रीमान् दशरथ के कुमार हे नाथ मेरी अभीष्ट कामना सफल करें, क्योंकि आप शरणागत के परमानुरागी हो। शरणागतजन आपके अतिप्रिय हैं । अतः मुझ दीन पर आप असीम कृपा करें ॥३२॥

इसप्रकार आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी की कृति श्रीवैष्णव संन्यासमीमांसा में यतियों का सदाचार नामक प्रकरण परिपूर्ण हुआ ।

卐 श्रीरामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये 卐